पार्श्वदास पदावली

●

सम्पादक एवं शोधकर्ता
डॉ० गंगाराम गर्ग एम.ए., पी.एच.डी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राज०)

प्रस्तावना
डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल एम.ए; पी.एच.डी. शास्त्री

प्रकाशक
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगंज टोंक

पार्श्वदास पदावली

सम्पादक एवं शोधकर्ता
डॉ० गंगाराम गर्ग एम.ए., पी.एच.डी
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक (राज०)

प्रस्तावना
डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल एम.ए; पी.एच.डी. शास्त्री

प्रकाशक
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगंज टोंक

मुख्य प्राप्ति-स्थान—

१. साहित्य शोध विभाग,
महावीर भवन,
चौड़ा रास्ता, जयपुर।

२. भारती पुस्तक मन्दिर,
चौबुर्जा, भरतपुर।

३. पवन पुस्तक सदन,
अमीर गंज बाजार,
टोंक।

संस्करण प्रथम

श्रुत पंचमी	१०००	
जेष्ठ शुक्ला ५	संवत् २०२९	मूल्य—दस रुपये
शुक्रवार, १६ मई	१९७२	

मुद्रक :
महेन्द्र प्रिन्टर्स
मनिहारों का रास्ता,
जयपुर।

समर्पण

जैन भक्तिकाव्य धारा के
समस्त ज्ञात-अज्ञात कवियो
को

सादर

आचार्यरत्न श्री १०८ श्री देशभूषणजी महाराज का

शुभाशीर्वाद

डॉ० गंगाराम गर्ग पिछले कई वर्षों से जैन साहित्य के अनुसंधान में रत हैं। कविवर पार्श्वदास तथा उनके साहित्य की खोज इनका महत्वपूर्ण प्रयास है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'पार्श्वदास पदावली' में पार्श्वदास के पदों के पाठ-सम्पादन के अतिरिक्त उनकी काव्य-गरिमा का निरूपण भी शोधपूर्ण ढंग से किया गया है।

दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टोंक ने पार्श्वदास पदावली के प्रकाशन में रुचि प्रदर्शित कर शोधार्थी एवं भक्तजनों का हित किया है।

आशा है, जैन समाज एवं साहित्यानुरागियों द्वारा यह ग्रन्थ अवश्य समादृत होगा।

इत्याशीर्वाद :

—देशभूषण आचार्य
जयपुर

अपनी बात

हिन्दी का मध्ययुगीन भक्ति साहित्य अपनी विपुलता और व्यापकता की दृष्टि से गौरवपूर्ण स्थान रखता है। आराध्य के स्वरूप को प्रमुख मानकर भक्ति काव्य सगुणकाव्य एवं निर्गुणकाव्य में विभाजित किया गया है। इन दोनों काव्य-परम्पराओं के साथ-साथ मध्ययुग में तीसरी काव्य परम्परा और विकसित हुई, वह थी 'जैन भक्ति काव्य परम्परा'। जैन भक्तिकाव्य मन्दाकिनी का प्रवाह रीतिकाल में अधिक वेगमय रहा। जैन कवि अठारहवीं-उन्नीसवीं शताब्दी में शृंगारी कवियों की कविता-कामिनी के उन्मादकारी संसर्ग से बचाकर समाज को भक्ति-सीकरों का पान कराते रहे तथा उसे आत्मोन्नयन की ओर प्रेरित करते रहे। द्यानतराय, भूधरदास, बुधजन आदि ऐसे अनेक कवियों में पार्श्वदास का उल्लेखनीय स्थान है।

कविवर पार्श्वदास विपुल पद साहित्य और कई रचनाओं के प्रणेता होने पर भी हिन्दी साहित्य में अज्ञात रहे हैं। लगभग २५ वर्ष पूर्व जयपुर निवासी पं. श्री प्रकाश शास्त्री ने 'वीरवाणी' में पार्श्वदास की जीवनी का उल्लेख करते हुए उनके श्रेष्ठ कवि होने का संकेत दिया था; तथापि 'पार्श्व विलास' की सम्पूर्ण प्रति के अभाव में विद्वानों और शोधकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट नहीं हो सका। सन् ६८ में जब मैंने टोंक के हस्तलिखित ग्रन्थ-भंडारों को देखना प्रारम्भ किया तो दिगम्बर जैन मन्दिर अमीरगंज, टोंक में यकायक ही 'पार्श्व विलास' की सम्पूर्ण प्रति प्राप्त हो गई। तभी मैंने 'पार्श्वदास-पदावली' के प्रकाशन और कविवर पार्श्वदास के काव्यत्व का अध्ययन करने का निश्चय कर लिया। कुछ समय बाद 'पार्श्व-विलास' की एक और प्रति टोंक के ही तेरापंथी मन्दिर में प्राप्त होगई। मैं उक्त दोनों ही मन्दिरों के प्रबन्धकों श्री पन्नीलाल जी सर्राफ, नाथूलाल जी भांवरा, सौभाग्यमल बिलालपुरिया, और रतनलाल बिलालपुरिया का विशेष आभारी हूँ, जिन्होंने 'पार्श्व-विलास' की पाण्डुलिपियां प्रदान कर 'पार्श्वदास पदावली' के प्रकाशन में अपनी रुचि अभिव्यक्त की। 'पार्श्व-विलास' की तीसरी महत्त्वपूर्ण प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर में पार्श्वदास के वंशज चिरंजीलाल निगोत्या के सौजन्य से पिछली साल प्राप्त हुई थी।

प्रस्तुत रचना में 'पार्श्वदास पदावली' का पाठ-सम्पादन उक्त तीन प्रतियों के आधार पर ही निर्धारित किया गया है। प्राक्कथन के रूप में लिखित दो अध्यायों में से प्रथम अध्याय में पार्श्वदास की जीवनी और काव्यत्व पर प्रकाश डाला गया है। पार्श्वदास के काव्यत्व के विवेचन का आधार उनकी समस्त रचनाएं न होकर केवल 'पदावली' है। दूसरे अध्याय में 'पार्श्वदास पदावली' में स्वीकृत पाठों की भूमिका प्रस्तुत की है।

'पाठालोचन-प्रक्रिया' की व्यावहारिक कठिनाइयों को सुलझाने में राजस्थानी के विश्रुत विद्वान् डॉ हीरालाल माहेश्वरी के ग्रन्थ 'जाम्भो जी, विष्णोई सम्प्रदाय और साहित्य' से बड़ी सहायता मिली है। मैं श्रद्धेय डॉ. साहब का अनुगृहीत हूं।

'पार्श्वदास' सम्बन्धी अनुसंधान में मुझे सर सेठ भागचंद सोनी, श्री रतनलाल छाबड़ा, पं. भंवरलाल पोल्याका, प. गुलाबचन्द जैन, दर्शनाचार्य, पं. कपूरचन्द पापड़ीवाल, पं. भंवरलाल 'न्यायतीर्थ', पं. अनूपचन्द 'न्यायतीर्थ', श्री प्रेमचन्द रांवका, मिलापचन्द बागायतवाले, पं. राजकुमार 'शास्त्री' आदि विद्वानों एवं विद्या-रसिकों से समय-समय पर बड़ी सहायता मिलती रही है; मैं सभी के प्रति कृतज्ञ हूँ। श्रद्धेय डॉ. कस्तूरचंद कासलीवाल ने इस ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखकर महती अनुकम्पा की है।

मैं इस अवसर पर दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टोंक एवं उसके पदाधिकारी श्री नाथूलाल आंडरा, भंवरलाल छामुण्या, मिट्ठनलाल जैन तथा श्री लालचन्द जी जैन के साहित्यानुराग का स्मरण करना नहीं भुला सकता; जिनके उत्साह के कारण इस ग्रन्थ का शीघ्र प्रकाशित होना संभव हो सका है।

मैं निगोत्यान मन्दिर के व्यवस्थापक श्री चिरंजीलाल निगोत्या का विशेष आभारी हूँ; जिनके सौजन्य से कविवर पार्श्वदास के इष्टदेव तीर्थंकर 'पार्श्वनाथ' की प्रतिमा का चित्र प्राप्त हो सका है।

पूज्य गुरुदेव डॉ. सोमनाथ गुप्त के प्रति किन शब्दों में आभार व्यक्त करूं; जिनके निर्देशन और आशीर्वाद का सम्बल पाकर ही मैं कुछ खोज पाने में थोड़ा सा समर्थ हुआ।

परमपूज्य आचार्यरत्न श्री १०८ श्री देशभूषण जी महाराज ने आशीर्वादात्मक सम्मति लिखकर मुझे बड़ा उत्साह और प्रेरणा प्रदान की है। उनके महान् व्यक्तित्व के प्रति कुछ औपचारिकता व्यक्त करना समुचित न होगा।

सम्पादक—

प्रकाशकीय

राजस्थान के अन्य नगरों की भांति टोंक नगर और उसका समीपवर्ती क्षेत्र जैन साहित्य और संस्कृति का प्राचीन स्थान है। इस क्षेत्र के निवाई, टोडारायसिंह, सांखना, भिलाय, दूणी, आंवा, नगर आदि कई स्थान जैन संस्कृति के इतिहास में उल्लेखनीय रहे हैं। सभी स्थानों में प्राचीन शास्त्र भंडार हैं; जिनमें संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी एवं राजस्थानी की अनेक रचनायें संगृहीत । प्राचीनकाल में जिस तत्परता और लग्न के साथ श्रावकों ने जैन साहित्य को संगृहीत किया और आज तक सुरक्षित रखा; आज उसी तत्परता और लग्न के साथ समाज को उसके प्रकाशन की ओर ध्यान देना चाहिए। दिगम्बर जैन समाज, टोंक ने इसी भावना से प्रेरित होकर इस ग्रंथ का प्रकाशन किया है।

जैन संस्कृति के प्राचीन केन्द्र टोंक एवं उसके समीपवर्त्ती क्षेत्र में धार्मिक प्रभावना पिछले ३०-४० वर्षों में अधिक बढ़ी है। ४० वर्ष पहले टोंक नगर के बाहर स्थित किले के मैदान में ३ प्राचीनतम जिन प्रतिमाएं और ढाई फुट ऊंचा एक "सहस्त्रकूट चैत्यालय" भूगर्भ से प्राप्त हुआ था। किले के मैदान में ही २१-९-५३ को भूगर्भ से २६ जिन-प्रतिमायें और प्राप्त हुईं। इनमें १४ मूर्तियां सम्वत् १४७० और तीन मूर्तियां संवत् १५०३ में प्रतिष्ठापित हुई थीं। बादामी, कत्थई, मूंगिया, गेहुआं और श्वेतवर्ण की इन प्रतिमाओं को "किले के मैदान की नसियां" और "अमीरगंज मन्दिर' में विशाल समारोह के साथ विराजमान किया गया; तब से समाज की धार्मिकोत्सव-प्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती रही। टोंक में २१ अक्टूबर १९७० को रात्रि के दो बजकर २५ मिनट पर परम पूज्य आचार्य श्री धर्मसागर जी महाराज के संघस्थ वयोवृद्ध तपस्वी मुनिराज शीतलसागर जी महाराज का समाधि-मरण हुआ। उनकी समाधि-साधना का दर्शन कर सहस्त्रों जैन-अजैन भाईयों ने अपने को धन्य समझा। 'समाज' ने दि० ४ फरवरी ७१ से ८ फरवरी ७१ तक 'पंच कल्याणक प्रतिष्ठा' का उत्सव भी आयोजित किया। इस उत्सव पर 'ज्ञान कल्याणक दिवस' को 'जैन साहित्य सेमीनार' का आयोजन समाज का अनूठा प्रयास था। 'जैन साहित्य सेमीनार' की व्यवस्था में डॉ. गंगाराम गर्ग, श्री भागचन्द एडवोकेट एवं श्री हर्षचन्द्र एडवोकेट का

सराहनीय योगदान रहा। 'पंच--कल्याणक प्रतिष्ठा के उपरान्त धार्मिकोत्सवों के आयोजनों के अतिरिक्त समाज-सेवा और 'साहित्य-प्रकाशन' की ओर निरन्तर ध्यान देने के लक्ष्य भी समाज ने निर्धारित किये।

दिगम्बर जैन समाज अमीरगंज, टोंक की साहित्य-प्रकाशन के प्रति निष्ठा १०५ श्री क्षुल्लक शीतलसागर जी महाराज की प्रेरणा से हुई। उन्हीं की प्रेरणा से समाज ने सर्व प्रथम बाबू कामताप्रसाद जी जैन के प्रकाशित ग्रन्थ "दिगम्बरत्व और दिगम्बर मुनि" को जनवरी, १९७० में पुनः प्रकाशित किया। "पार्श्वदास पदावली" 'समाज' का दूसरा प्रकाशन है।

दिगम्बर जैन समाजों में विविध धार्मिक उत्सवों, पर्वों और 'जागरण' के अवसर पर पद-गायन की परम्परा प्राचीन है किन्तु आजकल यह पद-गायन की परम्परा बहुत कम हो गई है। श्रावकशिरोमणि साहू शान्तिप्रसाद जैन ने "तृतीय वृषभदेव संगीत पुरस्कार समर्पण समारोह" में अपने अध्यक्षीय भाषण में जैन समाज का ध्यान इस कमी की ओर विशेष रूप से आकृष्ट किया था—

"अब से लगभग ४०-५० वर्ष पूर्व भोजगी जैन मन्दिरों में भक्तिरस की गंगा बहाया करते थे। वह परम्परा समय के अनुसार बदल गई। उस भक्ति-गंगा का स्थान भक्तों की पूजन-पाठ की बेसुरी, अव्यवस्थित चीख-पुकार ने लिया, परिणाम-स्वरूप परम्परित मान्यताओं में बँधे लोगों को छोड़कर शेष लोगों में भक्ति की रुझान घट गयी।[1]

'जागरण' के अवसर पर कुछ गीत यदि गाये भी जाते हैं तो वे सिनेमा के गीतों की तर्जों पर बने होते हैं। द्यानतराय, भूधरदास, जगजीवन, बुधजन, पार्श्वदास आदि भक्तों के विशाल पद साहित्य की थोड़ी सी उपेक्षा भी समाज के लिये 'शोभनीय' नहीं है। इस उपेक्षा का प्रमुख कारण जैन भक्तों के समूचे पद साहित्य का प्रकाशित न होना है। सन् १९०८-०९ में जैन ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई ने कुछ कवियों के 'पद संग्रह' एक-एक प्रति के आधार पर प्रकाशित करवा दिये थे; किन्तु आज वर्षों से वे भी अनुपलब्ध हैं। 'पार्श्वदास पदावली' का प्रकाशन इस अभाव को दूर करने का प्रयत्न है। 'पार्श्वदास पदावली' के

---

१. तीर्थंकर। जून। १९७२। १३-१४।

रचयिता कविवर पार्श्वदास ने ४३ राग-रागनियों में सर्वाधिक पद लिखे हैं। इनके पद बहुत समय से जयपुर, सवाई माधोपुर, टोंक, अजमेर आदि स्थानों के श्रावकों में बड़े लोकप्रिय रहे हैं; अन्यत्र भी अवश्य गाये जाते रहे होंगे। हिन्दी साहित्य और जैन भक्तों में 'पार्श्वदास पदावली' सम्मान और लोकप्रियता पा सकी; तो हम अपने प्रयास को सफल मानेंगे।

'पार्श्वदास पदावली' के प्रकाशन में डॉ. गंगाराम गर्ग की प्रेरणा प्रमुख रही है। ७ वर्ष पूर्व डॉ. गर्ग की नियुक्ति राजकीय महाविद्यालय टोंक में हुई; तभी से वह अपनी साहित्यिक रुचि के कारण समाज में घुलमिल गए। समाज की साहित्यिक प्रवृत्ति को जागृत करने में डॉ. गर्ग का जो योग रहा; हम उसके लिए उनके कृतज्ञ हैं।

पुस्तक की प्रस्तावना जैन साहित्य के विश्रुत विद्वान एवं शोधक डॉ॰ कस्तूरचंद कासलीवाल ने लिखी है। हम उनके अनुगृहीत हैं।

इस पुस्तक पर आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज ने अपनी आशीर्वादात्मक सम्मति लिखकर हम पर महती अनुकम्पा की है। दिगम्बर जैन समाज, अमीरगंज टोंक उनका बड़ा आभारी है।

मिट्ठन लाल जैन
मंत्री
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगज, टोंक

नाथूलाल आंडरा
अध्यक्ष
दिगम्बर जैन समाज
अमीरगज, टोंक

विषय-सूची

प्रस्तावना

हिन्दी के विकास के जैन विद्वानों का प्रारम्भ से ही महत्वपूर्ण योगदान रहा है। इस भाषा की प्रारम्भिक शताब्दियों में जैन विद्वानों का ध्यान आकृष्ट करने में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है; जिन्होंने अपनी एक पुस्तक "हिन्दी-काव्य-धारा" में स्वयम्भू को हिन्दी का प्रथम महा-कवि घोषित किया और उसके द्वारा निबद्ध 'पउमचरिउ' को हिन्दी भाषा का प्रथम महाकाव्य। स्वयम्भू ८-९वीं शताब्दि के कवि थे। राहुलजी के पश्चात् आ० हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, डॉ० माताप्रसाद गुप्त, डॉ० सत्येन्द्र एवं डॉ० रामसिंह तोमर जैसे हिन्दी के शीर्षस्थ विद्वानों ने जैन विद्वानों द्वारा निबद्ध हिन्दी साहित्य के महत्व को हिन्दी जगत के समक्ष प्रस्तुत किया और उन्हें साहित्य के इतिहास में समुचित स्थान देने का आग्रह किया। गत कुछ वर्षों में हिन्दी की सैंकड़ों कृतियां प्रकाश में आ चुकी हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची के पांच भाग प्रकाशित हुए हैं; उनमें हजारों हिन्दी रचनाओं का विवरण प्राप्त हुआ है और महाकवि स्वयम्भू पुष्पदन्त, धवल, नयनन्दि, वीर, रइधू जैसे अपभ्रंश कवियों के अतिरिक्त हिन्दी जैन कवियों की हजारों कृतियां सामने आयी हैं। ये कृतियां हिन्दी साहित्य की समृद्धि में चार चांद लगाने वाली हैं। रल्ह-कवि का 'जिणदत्त चरित' (सं० १३५४) तथा सधारु कवि का 'प्रद्युम्न चरित' (सं० १४११) जैसी हिन्दी की प्राचीन रचानाओं के प्रकाश में आने से हिन्दी के क्रमिक विकास को समझने में पूरा योग मिलता है। यहीं नहीं, साहित्य की प्रत्येक विधा में गत कुछ वर्षों में जो अनेक रचनायें मिली हैं; उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है। काव्य चरित, एवं रास, संज्ञक काव्यों के अतिरिक्त फागु, वेलि, गीत, विवाहलो, बारहमासा, विलास आदि कुछ ऐसी विधाएं हैं जो हिन्दी का जनप्रिय स्वरूप सिद्ध करने में सहायक होती हैं।

देहली, आगरा एवं राजस्थान के विभिन्न प्रदेश हिन्दी जैन कवियों के प्रमुख केन्द्र रहे। महाकवि बनारसीदास, कौरपाल, भूधरदास, भगवतीदास जैसे प्रतिभा-

सम्पन्न कवियों ने आगरा नगर को सुशोभित किया। महाकवि बनारसीदास ने 'अर्द्ध-कथानक' लिखकर हिन्दी भाषा को प्रथम जीवन-वृत्त दिया। इसी तरह भूधरदास ने पार्श्व पुराण के रूप में हिन्दी को एक सुन्दर महाकाव्य भेंट किया। राजस्थान के बागड़ प्रदेश ने १५वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी तक हिन्दी की जितनी सेवा की, वह इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों में अंकित रहेगी। इन चार सौ वर्षों में यहां हिन्दी रचनाओं का साम्राज्य रहा और भट्टारकों, साधुओं एवं गृहस्थों ने इस भाषा में अपार साहित्य लिखा। इस प्रदेश में जैन विद्वानों ने हिन्दी के उत्कर्ष के लिए पूर्ण लगन से कार्य किया। ब्रह्म जिनदास, सोमकीर्त्ति, ज्ञानभूषण, बूचराज, यशोधर, शुभचन्द्र, रत्नकीर्त्ति, कुमुदचन्द्र जैसे विद्वानों ने साहित्य की विविध विधाओं में अपार साहित्य लिखा। ब्रह्म जिनदास जैसे अकेले विद्वान् ने ३५ से भी अधिक रास संज्ञक कृतियां लिखकर इस दिशा में एक नया कीर्त्तिमान स्थापित किया।

बागड़ प्रदेश के पश्चात् राजस्थान के हिन्दी के विकास में जिस प्रदेश का सबसे बड़ा योगदान रहा, वह प्रदेश है जयपुर। जयपुर नगर के बसने के पूर्व आमेर इस प्रदेश की राजधानी थी और आमेर एवं सांगानेर साहित्य-निर्माण के प्रमुख केन्द्र सैकड़ों वर्षों तक रहे। आमेर के नेमिचन्द, अजयराज, दीपचन्द, सुरेन्द्रकीर्त्ति, खुशालचन्द, थानसिंह एवं देवेन्द्रकीर्त्ति जैसे विद्वानों ने हिन्दी साहित्य की अपार सेवाएं की। इसी तरह सांगानेर में होनेवाले हिन्दी विद्वानों में जोधराज गोदीका, किशनसिंह, ब्रह्म रायमल्ल जैसे कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इन कवियों के हृदयों में हिन्दी के प्रचार की जो उत्कट भावना थी, उसी के कारण साहित्य-निर्माण का इतना महत्वपूर्ण कार्य हो सका।

जयपुर नगर अपने स्थापना काल से ही साहित्य-निर्माण की पावन भूमि रहा। नगर के प्रारम्भिक १०० वर्षों में यहां जितने विद्वान् हुए, उतने राजस्थान के किसी अन्य प्रदेश में नहीं हो सके। हिन्दी ग्रन्थों के निर्माण की यहां होड़ सी लग गयी। जहां देखो, वहीं पण्डितगण एक के बाद दूसरे ग्रन्थ लिखने लगे। साहित्य-निर्माण में जनता के आग्रह ने और भी विशेष योग दिया तथा उनके प्रचार एवं प्रसार में अपना अपूर्व सहयोग दिया। जैन विद्वानों ने चरित काव्य, कथा काव्य, पुराण एवं सिद्धान्त ग्रंथों की भाषा-वचनिका के अतिरिक्त आध्यात्मिक एवं भक्ति-परक साहित्य भी खूब लिखा। यही कारण है कि संवत १८०० से लेकर १९४० तक यह नगर साहित्य-निर्माण की दृष्टि से भारत का प्रमुख नगर माना जाता

रहा। यही नहीं, विद्वानों की कृतियों को जितना अधिक आदर जनता द्वारा मिला, वह भी एक उल्लेखनीय कहानी है। जैन विद्वानों द्वारा लिखे गए ग्रन्थों का प्रचार देश के प्रमुख नगरों में हो गया और उनकी प्रतिलिपियां करने की व्यवस्था जयपुर में ही नहीं, किन्तु अन्यत्र भी हो गई।

जयपुर के इन विद्वानों में कुछ विद्वान क्रान्तिकारी एवं सुधारक विचारों के थे। कुछ विद्वान प्राचीन परम्पराओं को ही सर्वोत्तम मानकर उनमें कोई भी परिवर्तन नहीं करना चाहते थे। कुछ विद्वान् मध्यस्थ विचार वाले भी थे। ऐसे विद्वान् केवल साहित्य-सेवी थे। समाज-सुधार के बारे में उन्हें विशेष चिन्ता अथवा रुचि नहीं थी। लेकिन वे सभी भक्त कवि थे और अर्हंद् भक्ति में अपना विशेष जीवन लगाते थे। इनमें से कुछ कवियों ने पद एवं कुछ कवियों ने स्तोत्र, स्तुति आदि लिखकर अपनी मनोभावनायें व्यक्त की हैं। सभी विद्वान् राजस्थानी भाषा के विद्वान् थे और उसमें निष्णात थे। कथा, पुराण एवं टीका सभी धारा-प्रवाह लिखते और लिखकर तत्कालीन समाज को स्वाध्याय के लिए प्रेरित करते थे।

जयपुर के इन विद्वानों में महाकवि दौलतराम का नाम सर्वोपरि आता है। ये नगर के प्रथम महाकवि थे। गद्य और पद्य दोनों में ही इन्होंने खूब लिखा है। कवि ने अपने कई ग्रन्थों के माध्यम से आने वाले विद्वानों के लिए शैली-निर्धारण का कार्य किया। इनका जन्म बसवा ग्राम में हुआ। शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् युवावस्था की प्रथम किरण में ही ये आगरे व्यापार के लिए चल दिये। वहीं पर इन्हें महाकवि भूधरदास का समागम मिल गया। कुछ समय पश्चात् वहां के श्रावकों के आग्रह से संवत् १७७७ में इन्होंने पुण्याश्रव-कथाकोष की रचना समाप्त की। इसमें लघु किन्तु उपदेशात्मक एवं धार्मिक कथाओं का संग्रह है। आगरा से ये जयपुर आ गए और तत्कालीन जयपुर नरेश की सेवा में रहने लगे। इनकी विद्वत्ता, वाक्चातुर्य, एवं तर्क शक्ति को देखकर महाराजा ने इन्हें अपना विशेष दूत बनाकर उदयपुर भेजा। वहां जाकर भी ये साहित्य-निर्माण की ओर बढ़ते ही गये और जीवंधर चरित, क्रियाकोष जैसे कुछ पद्यात्मक ग्रन्थों की रचना की। उदयपुर के पश्चात् ये जयपुर आ गये और यहां महापंडित टोडरमल जी के सम्पर्क में आये। जयपुर आने के पश्चात् भी इन्होंने समाज-सुधार की अपेक्षा साहित्य-निर्माण को अधिक महत्व दिया और कुछ ही समय में पद्मपुराण, हरिवंश पुराण, आदि पुराण जैसी कृतियों के माध्यम से सारे देश में एक नयी साहित्यिक चेतना जागृत करने में सफल हुए। जन साधारण

ने इन्हीं के ग्रन्थों को पढ़ने के लिए हिन्दी भाषा का अध्ययन किया। महाराष्ट्र एवं गुजरात जैसे अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में इन ग्रन्थों के स्वाध्याय का प्रचार हो गया, जो उनकी लोकप्रियता का स्पष्ट द्योतक है। पुराण साहित्य के अतिरिक्त इन्होंने विशालकाय 'अध्यात्म बारहखड़ी' एवं 'विवेक विलास' जैसी पद्यात्मक कृतियां भी हिन्दी जगत् को भेंट की। 'विववेक विलास' दोहा-काव्य है, जिसमें ६०० से भी अधिक दोहे हैं।

इसी समय नगर-स्थापना के प्रारम्भिक वर्षों में महापण्डित टोडरमल हुए, जो सामाजिक जाग्रति के प्रमुख विद्वान् थे। वे अत्यधिक मेधावी, प्रतिभासम्पन्न एवं कलम के धनी थे। उनकी वाणी और लेखनी दोनों में ही जादू था और जन सामान्य को वे स्वतः ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे। वे अधिक वर्षों तक नहीं जिए। अब तक उनकी आयु सामान्यतः २६-२७ वर्ष ही मानी जाती रही है, लेकिन इधर कुछ अन्य प्रमाण भी मिले हैं। यदि उनके आधार पर उनकी आयु ४७ वर्ष की भी मान ली जावे तो भी वे अधिक जीवित नहीं रहे। थोड़े से जीवन में उन्होंने साहित्य का जितना भारी कार्य किया, वह बड़े बड़े विद्वानों को चकित करने वाला है। यद्यपि उन्होंने टीका-ग्रन्थ ही अधिक लिखे, लेकिन इन्हीं ग्रन्थों के माध्यम से उन्होंने समाज में एक नव चेतना जागृत की। समाज में अलख जगाने के कारण ही उन्हें अपने जीवन का बलिदान भी देना पड़ा। टोडरमल ढूंढारी भाषा के महान् विद्वान् थे। उन्होंने गोम्मटसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार की गद्यटीकायें तथा मोक्षमार्ग प्रकाशक जैसे स्वतंत्र ग्रन्थ का निर्माण किया।

एक ओर राजस्थानी गद्य-पद्य के महान् विद्वान् पं० टोडरमल, दौलतराम साहित्य-निर्माण में व्यस्त थे तो दूसरी ओर कविवर बखतराम साह इतिहासात्मक कृति "बुद्धि विलास" लिखने में लगे हुए थे। बखतराम पुरानी परम्परा के विद्वान थे। दोनों की विचारधारायें अलग-अलग थीं। "बुद्धि विलास" में जयपुर राज्य के शासकों का वर्णन, जयपुर-स्थापना के समय का वर्णन एवं जैन-इतिहास का इतिवृत्त मिलता है। इसी में महापण्डित टोडरमल के बलिदान का भी उल्लेख मिलता है। बखतराम भक्त कवि थे, इसलिए उनके भक्तिरस से ओतप्रोत हिन्दी पद भी मिलते हैं।

चौथे विद्वान् जिन पर जयपुर नगर को गर्व है, वे हैं जयचन्द छावड़ा। वे पण्डित टोडरमल की परम्परा के विद्वान् थे। प्राकृत, संस्कृत एवं राजस्थानी भाषा पर इनका पूरा अधिकार था। उनकी कृतियों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि ये ऊँचे दार्शनिक विद्वान् थे। इनकी ११ से भी अधिक रचनायें एवं कुछ पद मिलते हैं। इनके ग्रन्थ भी सहज में ही लोकप्रिय हो गए और सारे देश में उनका स्वाध्याय होने लगा।

इन विद्वानों के अतिरिक्त जयपुर नगर के जैन विद्वानों में डालूराम, मन्नालाल पाटनी, नन्दलाल छावड़ा, सदासुखदास, स्वरूपचन्द बिलाला, बुधजन एवं केशरीसिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। ये सभी विद्वान् हिन्दी के महान् प्रेमी थे। और अपनी रचनाओं के माध्यम से जन-जन में उनके पठन-पाठन को लोकप्रिय बनाना चाहते थे। इन्होंने सभी तरह का साहित्य-निर्माण करके उसे गतिशील बनाने में योग दिया तथा जन साधारण की भावनाओं का आदर किया। बुधजन ऊँचे कवि थे। बुधजन सतसई इनकी उच्चकोटि की रचना है, जिसमें इन्होंने आध्यात्मिकता की उड़ान के साथ अन्य विषयो पर भी अच्छी कविता लिखी है। इनके पद आध्यात्मिक एवं भक्ति रस से ओतप्रोत हैं। आत्मा और परमात्मा का पूरा चित्र इनके पदों में उपलब्ध होता है। जगत् की अस्थिरता पर इन्होने खूब लिखा है। तत्वार्थसूत्र पर 'अर्थप्रकाशिका' हिन्दी टीका के रूप में दर्शनशास्त्र को पं० सदासुख की बहुत बड़ी देन है। इनका 'मृत्यु महोत्सव' एक रूपक कृति है।

१६वीं शताब्दी में निगोत्या परिवार जयपुर नगर का एक सम्भ्रान्त जैन परिवार था। साहित्य-निर्माण एवं जिन-भक्ति में इसकी विशेष रुचि थी। जयपुर में निगोत्या का मन्दिर इसी परिवार के सदस्यों द्वारा निर्मित किया गया था और इसमें ऋषभदास निगोत्या परिवार के उल्लेखनीय सदस्य थे। महाकवि दौलतराम, टोडरमल और जयचंद का अपार साहित्य उनके समक्ष था, इसलिए साहित्य-निर्माण की ओर इनका मनोयोग स्वतः ही हो गया। विचारक एवं चिन्तक होने के कारण ये ग्रन्थ स्वाध्याय में अपना अधिक समय लगाते थे। नन्दलाल छावड़ा इनके घनिष्ठ मित्रों मे से थे। नन्दलाल ने मूलाचार की भाषा वचनिका ६ अधिकार और ५ गाथा तक लिखी। उसके अवशिष्ट भाग को ऋषभदास निगोत्या ने कार्तिक शुक्ला ७ संवत् १८८८ में पूरा किया। मूलाचार मे मुनियों के चरित्र का वर्णन किया गया है।

कविवर पारसदास निगोत्या पं० ऋषभदास के पुत्र थे। ये तीन भाई थे; जिनमें पारसदास सबसे छोटे थे। ये भी प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे और इनको तत्कालीन विद्वानों का विशेष सहयोग प्राप्त था। इन्होंने सारचतुर्विंशतिका एवं 'पारस विलास' की रचना की थी। 'पारस विलास' में कवि की काव्य-रचनाओं के अतिरिक्त एक गद्य ग्रंथ "ज्ञान सूर्योदय नाटक की भाषा-वचनिका" है। सार-चतुर्विंशतिका भी एक 'भाषा-वचनिका' है। यह कवि की सबसे बड़ी कृति है। इसका रचनाकाल कार्तिक सुदी द्वितीया, संवत् १९१८ है। कवि ने इस कृति में तत्कालीन जयपुर का जो परिचय दिया है; वह निम्न प्रकार है :—

"उस समय जयपुर में महाराजा रामसिंह का शासन था। महाराजा के दो मंत्री थे। एक का नाम पं० शिवदीन तथा दूसरे का नाम लक्ष्मणसिंह था। नगरमें सब ओर सुख-शान्ति थी। नगर में एक बहुत बड़ी अध्यात्म शैली थी, जो यहाँ के तेरह-पंथी बड़ा मन्दिर में चलती थी। शैली में गोम्मटसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार एवं समयसार नाटक की स्वाध्याय होती थी। इन ग्रंथों की चर्चायें अत्यधिक रुचिपूर्वक सुनी जाती थी। लोग सब चर्चायें करते थे तथा स्व-पर भेद की गहन चर्चा में मस्त रहते थे। इसके अतिरिक्त शैली में काव्य, कोश, व्याकरण, गणित, न्याय-सिद्धान्त आदि विषयों के ग्रंथों का भी अध्ययन होता था। कवि ने लिखा है कि उस शैली में सभी ज्ञानी पुरुष थे। अज्ञानी का कहीं नाम भी नहीं था। कवि ने उस शैली के भूतपूर्व एवं तत्कालीन विद्वानों के नाम दिये हैं— इनमें टोडरमल्ल, जयचंद छाबड़ा, नंदलाल, रिषभदास, महाराय, रायमल्ल, गुमानीराम, शिवजीलाल, मुखराम, जीवण राम, मन्नालाल, माणकचंद और वासीलाल। ये सभी स्वर्गस्थ विद्वान थे। कवि ने अपने समय के विद्वानों के नाम भी गिनाये हैं; जिनमें सदासुख एवं छाजूलाल को ज्ञान-गगन के सूर्य एवं चन्द्रमा के रूप में उल्लिखित किया गया है। नाथूलाल को सार त्रय (गोम्मटसार, समयसार एवं त्रिलोकसार) का विशेष विद्वान लिखा गया है। विजयलाल का तर्क एवं व्याकरण के ग्रन्थों के विद्वान के रूप में स्मरण किया गया है। मन्नालाल चारों ही अनुयोग-ग्रन्थों के विद्वान थे तथा इसी तरह बख्तावर लाल की भी चारों ही अनुयोगों में अच्छी गति थी। चैनसुख, तनसुख, मोतीलाल, गुलाबचंद, अमीचंद, अभैचंद भी अत्यधिक पंडित जन थे। पंडित बाजूलाल मंत्रविद्या एवं काव्यविद्या में अत्यधिक विद्वान् थे।"

पद साहित्य :

वैष्णव कवियों के समान जैन कवियों ने भी भावपूर्ण पद लिखे हैं। ये पद भक्तिपरक, अध्यात्मिक, दार्शनिक, शृंगार एवं विरहात्मक आदि विविध विषयों से सम्बन्धित हैं। यद्यपि जैन दर्शन में ईश्वर को उसी रूप में स्वीकार नहीं किया गया है जिस रूप में वैष्णव कवियों ने उसके सम्बन्ध में लिखा है, लेकिन जैन कवियों ने भी तीर्थंकरों का खूब गुणानुवाद किया है। उनसे सांसारिक वैभव के लिए याचना न करके संसार के दुखों से छुटकारा प्राप्त करने की मांग की है। जैन भक्त जन्म-मरण के बन्धन से छूटना चाहते हैं, क्योंकि मोक्ष अथवा निर्वाण की प्राप्ति से ही संसार के दुखों से छुटकारा मिल सकता है। इसी तरह आध्यात्मिक पदों में आत्मा एवं परमात्मा के सम्बन्ध में वर्णन किया गया है। प्रत्येक आत्मा में परमात्मा बनने की शक्ति है, लेकिन यह आत्मा अपनी शक्ति को भूले हुए है। इसलिए जैन कवियों ने अपने पदों में इस आत्मा को वास्तविक स्थिति से अवगत कराया है। शृंगार और विरहात्मक पद राजुल-नेमि को लेकर रचे गए हैं। भट्टारक रतनकीर्ति, एव कुमुदचन्द्र ने ऐसे कितने ही पद लिखे हैं जिनमें नेमिनाथ के विरह में राजुल की मनोदशा का वर्णन मिलता है। इस प्रकार जैन कवियों द्वारा रचित पद शुष्क तथा नीरस नहीं है। उनमें पाठकों को अपनी ओर आकृष्ट करने की पूर्ण क्षमता है। किन्तु अभी तक उनका मूल्यांकन नहीं होने से उन्हें अपने महत्व से वंचित होना पड़ रहा है।

जैन कवियों द्वारा रचित हिन्दी पदों की संख्या के बारे में कुछ निश्चित नहीं कहा जा सकता, किन्तु इन कवियों द्वारा रचित हिन्दी पदों की संख्या दस हजार से कम नहीं होनी चाहिए। दो हजार से अधिक पदों का संग्रह तो हमारे पास ही है, जबकि उसमें बहुत से कवियों के पद अभी आये ही नहीं है। पदों के निर्माण की परम्परा १६ वीं शताब्दि से अधिक विकसित हुई है और उसके पश्चात् तो प्रायः प्रत्येक कवि ने पद अवश्य लिखे हैं। बागड प्रदेश में होने वाले भट्टारकों एवं उनके शिष्यों ने अपने गुरुजनों की प्रशंसा में भी पद लिखे हैं। कबीर, मीरा, सूरदास, तुलसीदास जैसे कवियों के पदों का जिस तरह अध्ययन और प्रकाशन हुआ है, उसी तरह जैन कवियों के पदों का अध्ययन तथा मूल्यांकन भी होना चाहिए। महाकवि बनारसीदास, रूपचन्द, जगजीवन, जगतराम, द्यानतराय, भूधरदास जैसे कवियों के पदों की हिन्दी के अन्य कवियों से तुलना की जा सकती है। जैन कवियों के पद भी उतने ही सरस

[सात

एवं भावपूर्ण हैं जितने अन्य कवियों के। साहित्यिक क्षेत्र में अलगाव की भावना जितनी जल्दी मिट सकेगी, उतनी ही शीघ्रता से हमारा हिन्दी साहित्य समृद्धि की ओर आगे बढ़ सकेगा।

इस दृष्टि से पार्श्वदास पदावली का प्रकाशन स्वागत-योग्य है। डॉ० गंगाराम गर्ग ने १९ वीं शताब्दी के कवि पार्श्वदास के पदों का सम्पादन करके हिन्दी जगत् का भारी उपकार किया है। डॉ० गर्ग उत्साही शोधार्थी विद्वान् हैं। जैन भण्डारों में बिखरी हुई प्राचीन कृतियों को प्रकाश में लाने में उनकी अत्यधिक रुचि है। प्रस्तुत पदावली का उन्होंने ६ प्रतियों के आधार पर सम्पादन किया है तथा पाठ-सम्पादन में आधुनिक पद्धति का उपयोग किया है। आशा है, वे प्राचीन कवियों को प्रकाश में लाने के कार्य में इसी तरह आगे बढ़ते रहेंगे। मैं एक बार पुनः इस कार्य के लिए उन्हें हार्दिक बधाई देता हूं।

इस अवसर पर मैं दिगम्बर जैन समाज टोंक की भी हार्दिक अभिशंसा करता हूं कि उन्होंने पार्श्वदास पदावली के प्रकाशन में डॉ० गर्ग को पूरा सहयोग दिया है। टोंक समाज भविष्य में साहित्य-प्रकाशन में इसी तरह विद्वानों को सहयोग देती रहे, यही मेरा उससे नम्र निवेदन है।

डॉ० कस्तूरचन्द कासलीवाल

—:※:—

पार्श्वदास और उनका काव्य

पार्श्वदास का जीवनवृत्त :

पार्श्वदास जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे। पार्श्वदास के दो बड़े भाई मानचन्द और दौलतराम थे। पिता के अतिरिक्त पार्श्वदास के दोनों भाई भी अध्यात्म-रसिक थे। पार्श्वदास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली। शास्त्र-पठन और परमार्थ तत्त्व की ओर इनका झुकाव पं० सदासुखदास के सम्पर्क से हुआ। पार्श्वदास बड़े श्रद्धालु व्यक्ति थे। इनका साधना-स्थल शान्तिनाथ जी का बड़ा मंदिर जयपुर था। वहाँ उनके प्रवचन सुनने के लिए काफी जैन-समुदाय एकत्र होता था। पार्श्वदास के परिवार ने अपनी आय के मुताबिक धन लगाकर ऋषभदेव जी का मंदिर बनवाया; जो आज जयपुर में निगोतियान मन्दिर के नाम से जाना जाता है। पार्श्वदास के शिष्यों में बख्तावर कासलीवाल प्रमुख थे। उन्हें ही वे अपना पुत्र व मित्र समझते थे।

पं० श्री प्रकाश के लेख "श्री पारसदास निगोत्या"¹ तथा अन्य प्रामाण्य तथ्यों के आधार पर सुनिश्चित है कि पार्श्वदास अपने जीवन के अन्तिम वर्षों में अजमेर रहने लग गए थे। संवत् १९१२ में निर्मित प्रसिद्ध सोनी जी के मन्दिर में उत्कीर्णित लेख में मन्दिर निर्माण के प्रेरक पं० सदासुखदास बतलाये गए हैं, इससे सेठ मूलचन्द सोनी और पं० सदासुखदास का घनिष्ठ संबंध स्पष्ट है। पं० सदासुखदास के घनिष्ठ सम्पर्क में रहने के कारण उनके विद्वान शिष्य पार्श्वदास भी सेठ मूलचन्द सोनी के आदर के पात्र बने होंगे। जनश्रुति और भजनों में पार्श्वदास के पदों के व्यापक प्रचार के कारण सेठ साहब के प्रपौत्र सर सेठ भागचन्द सोनी भी पार्श्वदास का अजमेर-प्रवास स्वीकार करते हैं।

पं० पार्श्वदास ने अजमेर में ही सेठ मूलचन्द सोनी के सान्निध्य में वैशाख सुदी ५ संवत् १९१६ को समाधि मरण लिया।¹

काव्य-रचनाएँ :—

पार्श्वदास का एक गद्य ग्रन्थ 'ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका' तथा अनेक

काव्य-रचनाए 'पारस विलास' में संगृहीत हैं। काव्य रचनाओं का विवरण इस प्रकार है :

१. **पद-संग्रहः**—'अष्ट पद्यां' 'उणतीस पद' चौबीस महाराज का 'चौबीस पद' तथा 'पद' चार रचनाओं के रूप में लिखे गए पार्श्वदास के ४२५ पद हैं। पार्श्व-दास के पदों को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है–आध्यात्मिक, भक्तिपरक विरहात्मक, भक्तिपरक और नीति–परक। पार्श्वदास ने अपने पद ४३ से अधिक रागों में लिखे हैं। इनमें उनकी काव्य–प्रतिभा का पूर्ण निदर्शन है।

२. **अष्टोत्तर शतकः**—इसमें १२ चौपाई छन्दों में जिनेन्द्र के १०८ नाम गिनाए गए हैं। कवि ने जिनेन्द्र को विघ्नहरण, पतित-पावन, ज्ञानी, ध्यानी, कामधेनु कहने के अतिरिक्त शिव, ब्रह्मा, विष्णु और विनायक भी कहा है; जो कवि की व्यापक और समन्वयवादी दृष्टि का परिचायक है।

३. **द्वादशांग दर्शन पाठः**– इस ग्रन्थ की रचना कार्तिक कृष्णा १० संवत् १९१८ को हुई। इसमें कुल ७५ छंद हैं। इस रचना में जैन दर्शन के आचार, सूत्र, समवाय, व्याकरण आदि १२ अंगों का विवेचन सुबोध–गम्य रीति से किया गया है।

४. **ब्रह्म छत्तीसीः**—यह ग्रन्थ श्रावण कृष्णा ५ सम्वत् १९१२ को लिखा गया। इसमें मंगलाचरण के उपरान्त कवि ने छह ढालों में संसार की नश्वरता, यौवन और धन की क्षणभंगुरता का संकेत देते हुए मिथ्यात्व के खंडन की शिक्षा देकर आत्मानुभव की प्रेरणा दी है।

५. **सुमति बत्तीसीः**—ग्रन्थ का वर्ण्य सुमति का चेतन को जिन भक्ति, ज्ञान, ध्यान, बारहभावना, रत्नत्रय और दशलक्षण का लोभ दिखलाकर अपनी ओर आकृष्ट करना है।

६. **अर्हन्त-भक्तिः**—इसका रचना काल संवत् १८९५ है। इसमें तीर्थंकरों के पंच कल्याणकों की चर्चा करते हुए जिन भक्ति की महिमा कही है। ग्रन्थ में केवल १३ छंद हैं।

७. **सम्यक्त-बहत्तरीः** ग्रन्थ के प्रारम्भ में तीर्थंकरों के मूल गुणों व सद्-गुरु के भेदों की चर्चा करके सम्यक्त को व्रत, भावना, तप, संयम सबका आधार बत-लाया है। इसमें मुनि और श्रावक के धर्मों का अलग-अलग विवेचन भी है। ग्रन्थान्त में रचनाकाल भादों कृष्णा ५ संवत १८९६ में दिया हुआ है।

८. जिनागम स्तुतिः—इसमें २३ चौपाइयां हैं; जिनमें कवि ने जिनागमों का संक्षिप्त परिचय देते हुए उनके पठन को भवजाल काटने का साधन कहा है। रचना-संवत् १६१० है।

६. उपदेश पच्चीसीः—ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा संवत् १६१६ को रचित २५ छंदों की इस रचना में संसार की नश्वरता का संकेत देते हुए आत्म-प्रबोधन किया गया है।

१०. राजुल बत्तीसीः—इस रचना में ३२ चौपाइयों में राजमती के विरह और दीक्षा की चर्चा है। राजमती के नाम मात्र का स्मरण करने वाले को भी कवि ने पूज्य माना है।

११. दर्शन पच्चीसी—इस रचना में जिन दर्शन को आनन्द देने वाला, पापों का विनाशक तथा मोक्ष का मूल बतलाते हुए कवि ने स्वयं उसको बड़ा सुखकारी अनुभव किया है।

१२. हितोपदेश पाठः—इस ग्रन्थ की रचना पोष सुदी ३ संवत् १६३१ को हुई। इसमें पापों मे लिप्त मनुष्यो की दुर्गति का चित्रण करते हुए सप्त व्यसन, पांच कषाय आदि से दूर रहने का उपदेश दिया गया है।

१३. बारह खड़ीः—इस ग्रन्थ में कहीं विषय-भोग व कर्म से विरत रहने तथा पुत्रादि में लुब्ध न होने का उपदेश है, तो कहीं काया और यौवन की क्षणभंगुरता दिखलाते हुए द्वेष, मद, मोह को मारकर जिनवाणी को धारण करने की प्रेरणा दी गई है। कवि की दृष्टि में आत्म-ज्ञान ही मोक्ष हैः—

शिव नहिं मिलसी रे, मूड़ मुड़ाइयां वा भसमी रमाय
निज सुध पाया रे शिवा लै जाय।

बारह भावनाः-इस छोटी सी रचना में माया-लिप्त चेतन के संसार-भ्रमण एवं तदजन्य कष्टों की चर्चा करते हुए उसको हृदय में १२ भावना धारण करने का उपदेश दिया है—बारह भावना जे उर भाई, ते ही भवि शिव पदवी पाई।

पद संग्रह के अतिरिक्त चौपाई, दोहा, कवित्त, अडिल्ल, सवैया, पद्धडी, सोरठा आदि विविध छन्दों में लिखी गई पार्श्वदास की समस्त रचनायें विषय की दृष्टि से छः भागों में बांटी जा सकती हैं:—

(१) सिद्धान्त परक रचनाएँ:—

१. द्वादशांग दर्शन पाठ २. ब्रह्म छत्तीसी ३. सम्यक्त बहत्तरी
४. जिनागम पाठ ५. बारह भावना ६. सुगुरु दशक

(२) भक्ति परक रचनाएं:—

१. अष्टोत्तर शतक २. सरस्वती अष्टक ३. अर्हंत भक्ति ४. आरती
५. तेरापंथ स्तुति ६. ऋषभदेव स्तोत्र ७. दर्शन स्तुति
८. दर्शन पच्चीसी

(३) नीति परक रचनाएं:—

१. सुमति छत्तीसी २. उपदेश पच्चीसी ३. बारह खड़ी ४. कुगुरु निषेध पच्चीसी ५. चेतना सीष ६. हितोपदेश पाठ

(४) चरित्र प्रधान रचनाएँ:—

१. राजुल बत्तीसी २. रावण विभीषण रासो

(५) पूजा सम्बन्धी रचनायें:—

१. रत्नत्रय पूजा २. पार्श्वनाथ पूजा ३. देवसिद्ध पूजा
४. नित्य नियम पूजा ५. जम्बूस्वामी पूजा ६. सरस्वती पूजा
७. सोलह कारण जयमाल ८. जंत्रराज की जयमाल
९. दशलक्षण जयमाल १०. रत्नत्रय जयमाल

(६) फुटकर रचनायें:—

१. हथणापुर की जात

आध्यात्मिक सिद्धांत

जैन धर्म के अनुसार विश्व दो भागों में विभाजित है; एक जीव तत्व और दूसरा अजीव या जड़ तत्व। अजीव या जड़ तत्व भी पाँच भागों में विभाजित हैं— पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। तत्वचिन्तक पार्श्वदास ने अपने पदों में जीवतत्व और पुद्गल का शास्त्रानुकूल विवेचन किया है।

जैन दर्शन के अनुसार जीव चैतन्यात्मक है। ज्ञान और दर्शन जीव के गुण और स्वभाव हैं। प्रत्येक जीव अपने उत्थान-पतन के लिए स्वयं उत्तरदायी है। जीव

विभिन्न जन्मों के किये गये अपने कर्मों का कर्त्ता एवं फलभोक्ता भी स्वयं ही है। जैन मत प्रत्येक संसारी जीव को अनादिकालीन कर्मों से सम्बद्ध मानता है। मुक्ति की स्थिति में यही आत्मा तप्त स्वर्ण के समान निर्मल होकर पूज्यता को प्राप्त करता है। पार्श्वदास के आत्मा विषयक विचार भी इसी प्रकार हैं :—

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा मांय निकाम।
जा मैं एकेंद्री पचेंद्री, ऐसे भेद नहीं अभिराम।
है निरदोष वंध नहिं मोचन, सदा ज्ञानमय है आराम।
ज्ञान गम्य दरसन है जाको, लोकातीत पूज्य है धाम ।।५०।।

जैन दर्शन जीवों की अनेकात्मकता तथा स्वतन्त्र सत्ता स्वीकार करता है। प्रत्येक जीवात्मा अपने कर्मों के अनुसार विभिन्न शरीरों को धारण करता हुआ सुख या दु:ख पाता है। कविवर पार्श्वदास ने अपने कई पदों में कर्म बन्धनों के कारण जीवात्माओं के बार-बार शरीर धारण करने की चर्चा की है :—

अनंत काल पूरो कियो जी, रुल्यो निगोद मझार।
एक सास मैं जनमियो अरु मर्‌यो अनन्ती बार ।।२७६।।

पार्श्वदास पदावली में दूसरा विवेच्य तत्व पुद्गल है। जैन शास्त्रों में पुद्गल का लक्षण रूप, रस, गंध और स्पर्श वाला बतलाया गया है। मोटे तौर जो पर कुछ देखा जाता है छुआ जाता है, सूंघा जाता है अथवा खाया जाता है; वह पुद्गल है। पुद्गल अनेकरूपात्मक है तथा व्यक्त होने के कारण हलका, भारी, नरम या कठोर है। पार्श्वदास कहते हैं :—

जो दीसै सोही पर पुद्गल नाना रूपमयी रे।
सपरस रस और गंध वरण गुण पुद्गल की परणई रे।
हलको भारी नरम कठिनता, लूखो औ चिकनई रे।
ये सब हैं पुद्गल की परणति, तेरी वस्तु न यही रे ।।१५८।।

जैन धर्म के अनुसार पुद्गल आदि सभी द्रव्य अनादि हैं। उनके गुण नित्य होते हैं; किन्तु उनकी पर्यायें बदलती रहती हैं। जिस प्रकार सोना किसी एक विशिष्ट

आकार से पिण्ड रूप होता है किन्तु उसके पिण्ड रूप का विनाश कर माला तथा माला का विनाश करके कोई अन्य आभूषण बनवा लिया जाता है; उसी प्रकार एक ही द्रव्य विभिन्न वस्तुओं में परिवर्तित होता हुआ भी किसी न किसी रूप में अपना अस्तित्व अवश्य रखता है। शङ्कराचार्य के मिथ्यावाद में आस्था न रखते हुए भी पार्श्वदास ने पुद्गलमयी देह, संपत्ति आदि को उसकी परिवर्तनशीलता के कारण ही असद् कहा है :—

मात तात और बन्धु तिया सुत, सुख संपत्ति सुपनां।
आय अचानक जम ले जासी, करि मुख जिन जपनां ।।४६।।

आत्मा पुद्गल का संसर्ग पाकर अपना स्वाभाविक स्वरूप भूल जाता है। जन्म-जन्मांतरों में भटकते रहने से वह विविध कर्मों के मैल से आवृत्त भी हो जाता है। यदि आत्मा कर्मों से छुटकारा पाकर पुद्गल से ममत्व त्याग दे, तो उसके समस्त दुःखों का अन्त हो जाये। पार्श्वदास भी आत्मा के प्रति यही भाव व्यक्त करते हैं :—

जड़ सङ्गति करि बहु दुख भोगे आखर रह गये कोरा।
जड़ सङ्गति तजि निज रति धरि 'पारस' त्रेधा करत निहोरा ।।११६।।

जैन दर्शन में ईश्वर की कल्पना सृष्टि के कर्त्ता-हर्त्ता, 'सर्व शक्तिमान्' 'वैभवशाली', 'स्वामी' 'अधिकारी' आदि रूपों में नहीं की गई है। सृष्टि स्वयं सिद्ध है। जीवों को कर्म-फल देने से ईश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है; क्योंकि वे जैसा करते हैं; वैसा भोगते हैं। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वथा रहित, चेतन एवं अविनाशी अवश्य है। जैन सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक आत्मा अपनी स्वतंत्र सत्ता के लिए मुक्त हो सकता है। ये मुक्त जीव ही जैन धर्म के ईश्वर हैं। पार्श्वदास भी आत्मा के मूल स्वरूप में ईश्वर के दर्शन करते हैं :

अनन्त ज्ञान सुख वीरज तुझि घर, पर जड़ मैं मति थोगि।
जीवन मुक्त होवु या विधि सैं, पारस रहु उपयोगि ।।१६९।।

दार्शनिक तत्व 'मुक्ति' का सामान्य अर्थ है—स्वतंत्रता या छुटकारा। आत्मा के समस्त कर्मबन्धनों से छूट जाने को मोक्ष कहा गया है। जैन धर्म के अनुसार आत्मा

एक स्वतंत्र द्रव्य है। यह ज्ञाता और दृष्टा है, किन्तु अनादिकाल से कर्मबन्धन में बधा हुआ होने के कारण अपने किये हुए कर्मों का फल भोगता रहता है। कर्मबंधन के क्षय हो जाने पर उसे मुक्ति मिल जाती है। जैनाचार्यों के कथनानुसार कर्मबंधनों का क्षय सम्यक्ज्ञान से होता है। सम्यक्ज्ञान का अर्थ है– ज्ञान दर्शनमय अविनाशी आत्मा को अपना समझना तथा शुभाशुभ कर्मों के संयोग से उत्पन्न हुए बाकी सभी पदार्थों को आत्मा से भिन्न जानना। कविवर पार्श्वदास ने भी आत्मा के कर्मरूपी कुरंगों से बचकर सम्यक्ज्ञान रूपी रङ्ग में विलीन हो जाने को मोक्ष कहा है :—

> विनासीक पर कर्म कुरङ्ग रङ्ग, कहा रंग्यो है अज्ञानी।
> सम्यक् ज्ञान सास्वतो निजरगमय, होवै तब है ज्ञानी।
> याही रङ्ग रङ्गीले तिनकूं, आप वरत है शिवनारी।
> वसुविधि कर्म कुरङ्ग रंगे जिय, दुरगति में भोगे ख्वारी ॥२६७॥

आराध्य :

पार्श्वदास पदावली में यद्यपि भगवान् आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर चार तीर्थंकरों के प्रति अधिक भावांजलियां प्रस्तुत की गई हैं, किन्तु कवि के प्रमुख इष्ट भगवान् पार्श्वनाथ ही हैं। पौराणिक मान्यता के अनुसार भगवान् पार्श्वनाथ जैनों के चौबीस तीर्थंकरों में से तेईसवें तीर्थंकर हैं। इनके पिता विश्वसेन इक्ष्वाकुवंशी क्षत्रिय थे। पार्श्वनाथ की माता का नाम वामादेवी था। राजकुमार पार्श्वनाथ ने तीस वर्ष की अवस्था के बाद पौष कृष्ण एकादशी को तीन सौ राजाओं के साथ वीतरागी दीक्षा ली तथा केवल ज्ञान की प्राप्ति से आर्हन्त्य पद को प्राप्त किया। पार्श्वदास ने अपने पदों में भगवान् पार्श्वनाथ के वीतरागता ग्रहण की चर्चा की है।

जैन दर्शन में भगवान् पार्श्वनाथ आदि सभी तीर्थंकर ४६ मूल गुणों से युक्त और अठारह दोषों से रहित होते हैं। ४६ मूल गुण हैं–३४ अतिशय, ८ प्रातिहार्य तथा ४ अनन्त चतुष्टय। तीर्थंकर १० अतिशय सहित जन्म लेते हैं। केवल ज्ञान की प्राप्ति के अवसर पर उनके दस अतिशय होते हैं। शेष चौदह अतिशय देवकृत होते हैं। ८ प्रातिहार्यों के अनुसार तीर्थंकर समोवशरण के अवसर पर अशोक वृक्ष के नीचे रत्नमय सिंहासन पर विराजते हैं। उनके सिर पर छत्र फिरता है। यक्ष चौंसठ चंवर

ढोरते हैं तथा देवता पुष्पवृष्टि करते हैं। पार्श्वदास के आराध्य भी अतिशयों और प्रातिहार्यो से युक्त हैं तथा अठारह दोषों से रहित हैं :—

दोष अठारा रहित विराजै, गुण अनन्त जा मांयी।
चौतीसूं अतिसै जुत सोहै, भव्यनि कों सुखदायी।
प्रातिहार्य करि जगमन मोहै, अनन्त चतुष्टय रायी।
जाका तन की छबि कूं निरखत, कोटि भान हू लजायी। १५०॥

भगवान् पार्श्वनाथ में अनन्त ज्ञान एवं शक्ति है। वह सर्वज्ञ तथा सुख-निधान है :—

अनन्त ज्ञान सुख वीरज जामैं, जा मैं रङ्क न रूपा जी।
वीतराग सरवज्ञ जिनोत्तम, गजै राज तजि भूपा जी।
सुख निधान कृतग्य जिनोत्तम, जा मैं छाह न धूपा।
अष्टादश नहिं दोस जास मैं, पारस है सुखरूपा॥९५॥

भगवान पार्श्वनाथ राग, द्वेष, मद, मोह, क्रोध आदि दोषों से रहित होने के कारण निर्विकार तो हैं ही; शान्ति-मूर्ति भी हैं।[२] किन्तु जिनेन्द्र की शान्ति-छवि में भक्तों के कर्मों को नष्ट करने का अद्भुत चमत्कार है।[३] अग्निकुण्ड में जलती हुई सीता का बच जाना तथा सिंहोदर से वज्रकरण के मान की रक्षा होना आदि अनेक घटनायें इसका प्रत्यक्ष उदाहरण हैं।[४]

भगवान पार्श्वनाथ बड़े छवि-सम्पन्न हैं। उनकी छवि का अवलोकन कर करोड़ों सूर्य लज्जित होते हैं।[५]

भगवान पार्श्वनाथ महिमावान हैं। इन्द्रादि देव उनके चरण-कमलों में नमन करते हैं।[६] चन्द्रमा और मेघ को चाहने वाले चकोर और मोर के समान ही ऋषि और मुनि भी जिनेन्द्र का एकटक ध्यान करते हैं।[७] उन्हें सुरपति, फणपति और नृपति सभी पूजते हैं। सत्य तो यह है कि जिनेन्द्र तीनों जगत्पतियों (ब्रह्मा, विष्णु और महेश) के भी स्वामी हैं :—

सुरपति फणपति नरपति पूजें इक निज पद की चांयौं।
तीन जगतपति के पति स्वामी, सांचें हैं जिनरायौ ॥१५१॥

जिनेन्द्र ने कर्मो पर विजय प्राप्त कर ली है; इसलिए ही उनका नाम 'जिनवर' है :

अन्य देव विकराल मूर्ति, तैं हू कर्म वसावै हो।
कर्म विजय तैं जिनवर नाम कूं तू ही पावै हो ॥१८०॥

वैष्णव परम्परा मे भगवान भक्तों की रक्षा के लिए जन्म लेते हैं। अपनी लीलाओं से भक्तों को प्रसन्न करते हैं तथा दुष्टों को मारकर उनकी रक्षा करते हैं। जैन धर्म के अनुसार प्रत्येक जीव अपने कर्मों के अनुसार स्वय ही सुख-दुःख भोगता है। कोई अन्य मुक्तात्मा का उससे कोई सम्बन्ध नहीं। पार्श्वदास ने अन्य देवों के विकारों व अवतारवाद की चर्चा करते हुए जिनेन्द्र को निर्विकार के अतिरिक्त निरवतारी भी वतलाया है :—

सील संतोष विवेक न जिन मैं, ना समतामय रहना।
दया सत्य अरु सौच न जिन मै. जिनकैं जनम रु मरना।
नीके सकल लपे मत हम नैं, इन विन नांहै तरना।
'पारस' जानि कामदेव सव, भजि सन्मति के चरनां ॥२८१॥

जैन दर्शन के अनुसार तीर्थंकरों में जन्म, जरा, तृष्णा, क्षुधा, विस्मय, आरति, शोक, निद्रा, रोग आदि कोई भी अवगुण नही होता। ये अवगुण तो संसार-लिप्त आत्मा में होते हैं। तीर्थंकर अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि पांच व्रतों तथा उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, संयम, तप, त्याग, आकिञ्चन्य आदि दश धर्मों की प्राप्ति साधु एव आचार्य की स्थिति में ही कर चुके होते हैं।

कवि पार्श्वदास ने भी अपने आराध्य भगवान् पार्श्वनाथ को अनन्त गुणों का भण्डार कहा है—

हे गुणनिधि कछु गुण नहि मो मैं।
अव तो तुमारे हैं, स्यानैं वावरे ॥५६॥

तुलसी आदि सगुणोपासकों ने अपने आराध्य को सङ्कट-हर कृपालु, जगतारक लोकपति, दीन-रक्षक, उपकारी आदि गुणों से विभूषित किया है। पार्श्वदास के आराध्यदेव भी संसार के नायक तथा भक्तों के विघ्नों को नष्ट कर उसे अभीष्ट फल प्रदान करने वाले हैं :—

विघन बिनासक हो जगनायक, भव्यनि कूं मन वांछित दाय ।।७०।।

जिनेन्द्र भगवान् भक्तों के दुःखों को दूर कर उन्हें सुख देने वाले हैं।[8] वे भक्त-वत्सल तथा पतितपावन हैं। उन्होंने कच्छप, अंजन, वारिषेण आदि अनेक प्राणियों के दुःखों को दूर किया है।[9] संसार में भ्रमणशील आत्मायें पीड़ा और संताप से ग्रस्त हैं। सांसारिक कष्टों रूपी आतप को शांत करने के लिए ज्ञान, सौंदर्य और सुख की राशि जिनेन्द्र ही समर्थ हैं :—

अनन्त ज्ञान लक्ष्मी के सागर परमातम सुखकारो।
भव आताप नसावण जलमुच, मेटो ताप हमारो ।।१६१।।

जैन दर्शन में तीर्थंकरों को कर्त्ता तथा भोक्ता नहीं माना, फिर भी जैन भक्त उनके निमित्तजन्य कर्त्तृत्व में विश्वास करता रहा है। आचार्य पूज्यपाद लिखते है— जिस प्रकार चिन्तामणि रत्न तथा कल्पवृक्ष आदि अचेतन हैं, तो भी पुण्यवान पुरुष को उनके पुण्योदय के अनुसार फल देते हैं, उसी प्रकार भगवान् अरहंत या सिद्ध राग-द्वेष रहित होने पर भी भक्तों को उनकी भक्ति के अनुसार फल देते हैं।[10] इसी विश्वास के कारण जिन भक्त जिनेन्द्र को कर्त्ता और दाता न जानते हुए भी यह अवश्य मानता है कि लौकिक और परलौकिक वैभव उसी की कृपा से प्राप्त होता है। मध्यकाल में जैन भक्ति साहित्य की चरम परिणति तक जिनेन्द्र के प्रेरणाजन्य कर्त्तृत्व की भावना अधिक मुखरित हो गई थी।

निर्गुण कवियों की तरह जिन भक्तों ने भी अपने आराध्य को अजर, अमर, अक्षत, चिदानन्द, अलष, अमूर्त, नित्य, निरंजन, इन्द्रियातीत कहा है। पार्श्वदास के आराध्य भी अस्पृश्य, अदृश्य, अविनाशी, चिदानन्द तथा चैतन्यस्वरूप हैं :—

सपरस कीये हाति न आवै, नैंनन तैं न लषावै।
'पारस' देषन जानन हारो, ताही कूं सिर नावै ।।२१६।।

जा मैं पाप कसाय न दीसैं सुख को नांही छेह छैं।

अविनाशी चिद्रूपी 'पारस' काहे आन नमैं छैं ।।१४४।

जिनेन्द्र को अनेकरूपात्मक मानना जैन भक्तों की महत्वपूर्ण विशिष्टता है। विचार-प्रतिपादन के क्षेत्र में व्यक्तिगत हठवादिता, दुराग्रह एव एकान्तिकता के परिहार के लिए जैन दर्शन के अनेकान्तवाद को बड़ा उपयोगी माना गया है। विभिन्न-धर्मा वस्तु का बहुमुखी ज्ञान वस्तुत: अनेकान्तवाद से ही समझा जा सकता है। इसी अनेकान्तवाद से प्रभावित जैन भक्तों ने अपने आराध्य में सभी धर्मावलम्बियों के आराध्यों के दर्शन किये हैं; जिससे जैन-भक्ति-साहित्य साम्प्रदायिक सद्भाव की कसौटी पर खरा उतरा है। पार्श्वदास कहते हैं कि ईश्वर का स्वरूप एकान्ती भाव से नहीं जाना जा सकता; क्योंकि 'जिन', 'बुद्ध', 'ब्रह्मा', 'शिव', 'नारायण', 'कर्त्ता', 'कर्म', 'अलख' और निरजन सब कुछ वही है —

तू ही बुद्ध जिनपति ब्रह्मा शिव नारायन कहलावै।

न्यायवाद करतार कहत तोयैं, कर्म मीमांसक गावैं।

अलख निरंजन रूपी अरूपी, अज जन्मा दरसावैं।

एकान्ती तेरो रूप नहि पावैं, 'पारस' ध्यावै सो ही पावैं।।१०६।।

भक्ति :

अपने इष्ट के प्रति अनन्य अनुराग को भक्ति कहा गया है। इष्ट के अलौकिक होने पर भी उसके प्रति अनुराग अभिव्यक्त करने के लिए भक्तों ने लौकिक भाव ही अपनाये हैं:—दास्य भाव, वात्सल्य भाव, सख्य भाव, माधुर्य भाव तथा शान्ता भाव। शान्ता भाव प्रथम चार भावों मे अन्तर्भूत रहता है। हिन्दी के रामभक्तिकाव्य में दास्यभाव तथा कृष्णभक्ति साहित्य में वात्सल्य, सख्य, और माधुर्य भावों की प्रधानता रही है। दास्यभावी भक्ति में भक्त अपने को आराध्य का सेवक मानकर उसे अपना स्वामी मानता है। आराध्य का महिमा-गान, स्वदोषों की अनुभूति, प्रभु कृपा की याचना, अनन्यता आदि दास्यभावी भक्ति की विशेषताएं हैं। पार्श्वदास की दास्य-भावी भक्ति में ये सभी विशेषताएं विद्यमान हैं।

पार्श्वदास भगवान पार्श्वनाथ के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुए अनेक बार उनकी महिमा का गान करते हैं :—

भजि मन श्री जिन श्री जिनदेव ।
राग दोष मद मोह क्रोध वसि, आन देव मति सेव।
ब्रह्मा विष्णु महेस काम बसि, ताहि हर्यो इन एव ।
दोष अठारा रहित विराजै, गुण छयालीस स्वमेव ।
सब कुदेव दीसत विकारमय, सांति मूर्ति जिनदेव ।
'पारस' मुक्तिपंथ दरसावक श्री जिनेंद पद ध्येव ।।६६।।

अपने दोषों की अनुभूति भक्त में भगवत्प्रेम की वृद्धि करती है; इसी कारण श्रेष्ठ भक्त आत्मालोचन करते देखे जाते हैं। पार्श्वदास को तप और संयम को छोड़ कर विषयों और पापों में लिप्त रहने से बड़ी आत्मग्लानि है :—

ए तो जनम विषयन में खोयो, प्यास मिटी नहीं भोगन की ।
तप संजम की राह न जानी, थिरता मानी जोवन की ।
पांच पाप दुरगति के दायक, तिन में लगि रही मो मन की ।
'पारस' चरण सरण गहि जाचत, प्राप्ति दीजिये मो धन की ।।१००।।

पार्श्वदास अपने आराध्य से यह स्वीकार करने में कोई दुराव नहीं रखते कि उन्होंने न तो कोई जप, तप और ध्यान किया है; और न पूजा तथा दान में ही कोई रूचि ली है :—

पूजा दान कियो कछु नाही, जप तप ध्यान न धारो ।
तृष्णा वसि सोय जग भटक्यो, मैं झूठा मोह को मारो ।
दोष तरफ नहिं दृष्टि दीजिये, अपनो विरद सम्हारो ।
दीनानाथ विरद सुनि 'पारस' सरन गहत अब थारो ।।१६०।।

आराध्य को अपने उद्धार के लिए शीघ्र प्रवृत्त करवाने के लिए भक्त उनके द्वारा तारे गए भक्तों की नामावलि प्रस्तुत कर देते हैं। तुलसी आदि वैष्णव भक्तों ने व्याध, निषाद, जटायु, पिंगला आदि के उद्धार की चर्चा करते हुए उपास्य से अपना शीघ्र उद्धार चाहा है। जिनेन्द्र भगवान् भी जमाली, श्रेणिक, अंजन, वारिषेण, गौतम आदि कितने ही भक्तों का उद्धार कर चुके हैं। अतः जैन भक्तों ने उनके

'विरद' का ध्यान दिलाते हुए अपने शीघ्रभावी उद्धार की इच्छा प्रकट की है। पार्श्वदास कहते हैं :—

हम हैं पतित, पतित-पावन तुम, करुणा धर्म तिहारो।
हम हैं भक्त, भक्तवच्छल तुम, अपनों जानि उबारो।
चित्त निरोधि कैं निज लय लागे, कमठ कियो अघ भारो।
मन अडोल मेर सम कीनो, परम धिमां उर धारो।
अंजन कौं अघ भंजन कीनों, वारिषेण दुख टारो।
मरकट स्वान तुरग सुख पायो, अब कैं हमारो है वारो ।।७७।।

अपने आराध्य के प्रति अनन्यता भक्ति भाव की चरम परिणति है। इस पर आने के बाद भक्त को अपने आराध्य के अतिरिक्त दूसरा कतई नहीं भाता। पार्श्वदास जिनेन्द्र के अतिरिक्त दूसरे देवता की सेवा भूलकर भी नहीं करना चाहते—

सरन गही मुक्ति तारिहो प्रभुजी।
आन देव मैं भूलि न सेवूं, तुमारे वच उर धारिहो ।।१२५।।

जिस प्रकार चकोरी को चन्द्रमा और मछली को पानी की निरन्तर चाह रहती है उसी प्रकार पार्श्वदास को भगवान् पार्श्वनाथ की—

चंद कूं ज्यूं चकोरी लगन मुख रहै, वारि कूं मच्छ ज्यूं चाह तेरी।
पार्श्व तुम धारि उर मांय भवनास करि, सिव गहूं दास करि गौरि मेरी।
।। १३८ ।।

अपने उद्धार में विलम्ब जानकर भक्त भगवान् को उलाहना देने भी नहीं चूके हैं। तुलसी और सूर ने अनेकशः उनके विरद को व्यंग्यपूर्ण चुनौतियां दी हैं। पार्श्वदास जब देखते हैं कि उनके आराध्य संसार-सागर से पार होकर भव-बन्धनों से मुक्त हो गए हैं तथा अनंतचतुष्टय से युक्त होकर मोक्ष-सुन्दरी का आनन्द भोग रहे हैं, तो उनकी बंधन युक्त आत्मा तीर्थंकरों के समान होने के लिए छटपटाने लग जाती है। ऐसे अवसर पर पार्श्वदास आराध्य को उलाहना दिये बिना नहीं रहते—

आप तो सय्यां पार उतर गये हो, हम भी किंकर थारा ।
आप तो अनंत चतुष्टय जुत भये हो, हमरे अघ क्यूं नैं टारा ।
आप तो सिव सुख अमृत पी रहे हो, हम कूं क्यूं जल खारा ।
आपको 'पारसदास' कहावत, इतनी लेहु विचारा ॥ १२७ ॥

पार्श्वदास की दास्य भक्ति में निष्कामता विद्यमान है:—

मो तैं कछु भक्ति बनत ताकरि फल जाचत हूँ,
जौ लूं शिव होय तितैं भक्ति ही रहोयो ॥ १२० ॥

नवधा भक्ति

हिन्दी भक्ति साहित्य में नवधा भक्ति को बड़ा महत्व दिया गया है। नवधा भक्ति के नौ सोपन हैं—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पद-सेवा, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्म-निवेदन। श्रवण में भक्त अपने आराध्य के गुणों को सुनता है तथा 'कीर्तन' द्वारा उन्हें प्रकट करता है। 'स्मरण' भक्ति में भगवान् के गुणों का स्मरण करता है। 'पद-सेवा' का अर्थ है भगवान के चरणों की सेवा करना। 'अर्चन' और 'वन्दन' भक्ति का तात्पर्य भगवान् की पूजा और स्तुति करने से है। 'दास्य' और 'सख्य' का अर्थ है दास या सखा भाव से भगवान की पूजा करना। आत्म-निवेदन का अर्थ है आराध्य के सन्मुख अपना हृदय खोल देना। पार्श्वदास की रचनाओं में नवधा भक्ति के लगभग सभी प्रकार मिलते हैं:—

श्रवण :

आन बैन न सुहावत मोकूं भावै जिन गुन गान ।
पार्श्वदास जिन वच रस रसिया, पावै केवल ज्ञान ॥२१४॥

कीर्तन :

थांका बार बार गुण गावां नाथ म्हां नै तारयां ही सरै ।
शिवा नंदन जिनराज सांवरा, तुम विन करुणां कौन करै ॥३०० ॥

स्मरण :

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार ।
जिन सुमरे तिन ही सुख पायौ उतरे भवदधि पार ॥३०६॥

'पद सेवा' एवं 'अर्चन' :

'भोर भयो मन वच तन करि श्री जिन चरणन चित ल्यावो ।
नेज त्यागि करि अंग सुद्धता विधि तैं द्रव्य बनावो ।
जल चंदन फूं आदि लेय कैं, जिन पद पूज रचावो ॥५॥

वन्दन :

अरजो करहु सकास ठाढ़ो जिनवर मैं,
मोह कर्म अचि खैंचि काढ़त निज घर सैं ॥२३१॥

दास्य :

पार्श्वदास निरविघ्न भक्ति इक तो सैं चावैं हो ;
तो हो जाचि दूजो किम जाचैं दास कहावैं हो ॥१८०॥

आत्म-निवेदन :

मेरी तो लाज सब तुम्हारे हाथ है;
जैसे चावो तैसे राखो सांवरे ॥५६॥

दशधा भक्ति :

जैनाचार्यों ने भक्ति के बारह भेद माने हैं:-सिद्ध भक्ति, श्रुत भक्ति, चारित्र भक्ति योगी भक्ति, पंचगुरु भक्ति, तीर्थंकर भक्ति, शान्ति भक्ति, समाधि भक्ति, निर्वाण भक्ति, नन्दीश्वर भक्ति और चैत्य भक्ति । उक्त भक्तियों में से तीर्थंकर भक्ति और समाधि भक्ति को अन्य भक्तियों में अन्तर्भूत मान लेने के कारण भक्ति के दस ही भेदों की व्यापक मान्यता है । डा. प्रेमसागर जैन ने "जैन भक्ति काव्य की पृष्ठ-भूमि" में आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, आचार्य समन्तभद्र, आचार्य सोमदेव आदि जैनाचार्यों के काव्य में उपलब्ध दशधा भक्ति का उल्लेख किया है । सिद्ध भक्ति और नंदीश्वर भक्ति के अतिरिक्त दशधा भक्ति के अन्य सभी भेद जैन पद साहित्य में विद्यमान हैं । पार्श्वदास की पदावली में दशधा भक्ति के कुछ पद द्रष्टव्य हैं:—

श्रुत भक्ति :

जैन पद साहित्य में श्रुत भक्ति श्रुतदेवी अथवा श्रुतधरों की वन्दना की अपेक्षा जैन शास्त्रों के प्रति पूज्य भाव के रूप में ही दृष्टिगोचर होती है। प्राचीन काल से ही जैनों में भगवान् जिनेन्द्र की मूर्ति के समान शास्त्रों की भी प्रतिष्ठा होने लग गई थी। मध्यकाल में प्रादुर्भूत तारण पंथ नामक आम्नाय ने तो अर्हन्त की मूर्ति को न पूजकर शास्त्रों की पूजा में ही विश्वास किया। तेरहपंथ आम्नाय में अर्हन्त और शास्त्रों की भक्ति समानान्तर होकर चली। द्यानतराय, जयचन्द आदि कवियों की तरह महाकवि पार्श्वदास ने अपने कई पदों में मिथ्यात्व का निवारण और मोक्षमार्ग का प्रदर्शन करने वाली जिनवाणी की वन्दना की है—

वंदू जिनवाणी परमानन्द निधानी।
अरथ समग्र धारि जिन मुख तैं, गणधर गूंथि बखानी।
स्यादवाद निरवाधित पर तैं, नय परमाण जुतानी।
स्यो मारग की राह बतावै, सप्त तत्व दरसानी ॥१७०॥

चारित्र भक्ति :

चारित्र की महिमा का वर्णन करना, चारित्र भक्ति है। महाकवि पार्श्वदास ने 'चारित्र जयमाल' शीर्षक से लिखे अपने २९ पदों में चारित्र के विभिन्न अंगों सम्यक् दर्शन, शील, ज्ञान, संवेग, तप आदि की महत्ता प्रतिपादित करते हुए उनके आचरण को मुक्तिदाता कहा है। सम्यक दर्शन की उपयोगिता के सम्बन्ध में वे कहते हैं:—

सम्यक् दर्शन शुद्धता शिव की दातार।
याही तैं पावैं सही, निज ब्रह्म विचार।
या विन पर परिणति भई, भरमैं संसार।
कारी नागिन समान है, सब विषय विकार।
ताय बुझावण मेघ हैं, आताप निवार।१।।२।

योगी-भक्ति :

आत्म स्वरूप में अवस्थित होना योग है। डा. प्रेमसागर जैन ने 'जैन भक्ति

काव्य की पृष्ठभूमि' में 'समाधि' और 'ध्यान' तथा 'योगी' और 'ध्यानी' की एकता प्रतिपादित करते हुए 'धनञ्जय नाममाला' के आधार पर ऋषि, मुनि, यति, भिक्षु, तापस, संशित, व्रती तपस्वी, संयमी, वर्णी और साधु को योगी के ही पर्यायवाची शब्द होने का उल्लेख किया है। इनके प्रति किया गया भक्ति-निवेदन अथवा महिमा-गान योगी-भक्ति है। आचार्य कुन्दकुन्द और आचार्य पूज्यपाद ने प्राकृत और संस्कृत भाषा मे लिखी गई अपनी 'योगी-भक्ति' में क्रमशः योगियों की महिमा और उनके द्वारा किए गए विविध तपों का वर्णन किया है। जैन पद साहित्य में मुनियों की महिमा और कष्टकारी तप दोनों का ही वर्णन मिलता है। महाकवि पार्श्वदास मुनि-चरणों के वन्दन में बड़ा आत्मसुख अनुभव करते हैं—

मुनिवर वंदन जावूं, जावूं रे तिहुँ वेला।
मुनिवर वदत सब दुख भंजत, आत्मीक सुख पावूं।
अनादिकाल तें कबु न लख्यो कोवू, सो सुखमय दरसावूं।
'पारस' अमुवन वदत मुनि पद, पाय न जग भरमावूं ॥४४॥

आचार्य भक्तिः

आचार्य कुन्दकुन्द ने ज्ञानी, संयमी, सुवीतरागी तथा साधारण मुनियों के शिक्षक आचार्यों को जिनेन्द्रदेव के सदृश माना है। इन आचार्यों में शुद्ध भाव से अनुराग रखना आचार्य-भक्ति कही गई है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद और श्री यतिवृषभ ने आचार्यों के विशद गुणों का वर्णन करते हुए उनके प्रति श्रद्धा प्रकट की है। पार्श्वदास ने आचार्य की महिमा गाते हुए उनके दर्शन, गुण-गान और उपदेशश्रवण मे अपनी अभिलाषा प्रकट की है—

श्री आचार्य भक्ति मैं भाव कयूं नहिं कीनो, अब करि भायो।
एक बार मन वच तन कीया, फिर न भ्रमैं निठ मिल्यो दाव।
श्री आचार्य प्रत्यक्ष न दीसैं, तौ धरि उनके वचन मैं चाव।
आचारिज गुण को न कहि सकै, वेग हि करै मुक्ति को
'पारस' जग में आचारिज वच, को करतो कुगति

पार्श्वदास पदावली

पंच परमेष्ठी-भक्ति :

अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और लोक के सर्व-साधु पंचपरमेष्ठी कहलाते हैं। जैनों के प्रसिद्ध 'णमोकार मंत्र' में पचपरमेष्ठी को ही नमस्कार किया गया है। जैन पद साहित्य में णमोकार मन्त्र द्वारा तारे गए प्राणियों की चर्चा करते हुए उसकी महत्ता प्रतिपादित की गई है। इस 'णमोकार मन्त्र' के अनवरत स्मरण में ही पंचपरमेष्ठी की भक्ति समाहित है। पार्श्वदास कहते हैं—

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार।
जिन सुमरे तिन ही सुख ही पायौ, उतरे भवदधि पार।
अन्जन अन्जन सुमरत भयो तिरज, स्वान, सिंघ मजार।
और सुनैं आगमैं बहु जिय सुमरण ही आधार।
बिन सुमरणें भरमण ही करिहै, रुलिहै भवदधि लार।
'पारस' सुमरण सार एक है या ससार मझार॥३८६॥

तीर्थंकर भक्ति :

डॉ. प्रेमसागर जैन ने धनञ्जय, आचार्य श्रुतसागर, योगीन्दु आदि कई जैनाचार्यों की तीर्थंकर सम्बन्धी परिभाषाओं पर विचार करते हुए संसार के आवागमन से मुक्त कराने वाले निमित्त के विधाता को तीर्थंकर कहा है। [११] जैन परम्परा के अनुसार भूत, भविष्य और वर्त्तमान तीन कालों में से प्रत्येक में २४ तीर्थंकर होते हैं। भारत की वर्त्तमान काल की चौवीसी में से अपेक्षाकृत भगवान् आदिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर के चरणों में जैनभक्तों की अधिक श्रद्धा रही है। जैन पद-रचयिताओं में महाकवि पार्श्वदास ही किसी एक तीर्थंकर के एकनिष्ठ भक्त रहे हैं। उनका सर्वाधिक पद साहित्य भगवान् पार्श्वनाथ के महिमागान तथा उनके प्रति भक्तिनिवेदन में समर्पित हुआ है।

जिनंदजी विरद सुन्यो थांको वांको
उपकार करो क्यू नां म्हांको। टेक॥
अंजन से तुम अधम उधारे, कीनों सब अघ साको।
चांडाल दह माय पर्‌या को, अतिसय प्रगट्‌यो वाको।

रघुपति रानी परी अग्नि विच, नाम लेय इक थाको।
अग्निकुन्ड सब जलि डार्‌यो, जस प्रगटायो ताको।
त्यारे बहुत सुनी आगम मैं, कहता अन्त न जाको।
'पारसदास' कहाय कौंए पै, जाय कहावू काको।। ११६।।

शांति भक्ति :

शांति भक्ति, शांति प्राप्त करने के लिए की गई भक्ति है। २४ तीर्थंकरों में से सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ विशिष्ट रूप से शांति प्रदायक माने गए हैं। अतः शान्तिभक्ति परक पद भगवान् शान्तिनाथ की स्तुति में ही अधिक कहे गए हैं। पार्श्वदास भगवान् शान्तिनाथ की महिमा का गान करते हुए कहते हैं—

श्री सांतिनाथ महाराज के पद पूजो रे भाई।
सांतिनाथ को नाम लेत अघ, सांत होत जगमाही।।१५२।।

समाधि-भक्ति :

समाधिपूर्वक प्राणों का विसर्जन करना अर्थात् समाधि मरण की याचना समाधि-भक्ति कहलाती है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, शिवार्यकोटि ने अपनी रचनाओं में विशुद्ध समाधि-मरण चाहा है। जैन पद साहित्य में समाधि-भक्ति सम्बन्धी सर्वाधिक पद पार्श्वदास पदावली में ही हैं। महाकवि पार्श्वदास ने अपनी इच्छानुसार अजमेर निवासी सेठ मूलचंद सोनी के यहां समाधि-मरण लिया था। उनकी दृष्टि में समाधि अशुभ का विनाश कर जन्म-मरण से छुटकारा दिलाने का महत्वपूर्ण साधन है। अतः वह समाधि-मरण के लिए कृतसंकल्प हैं:—

अन्त समय निज पद मय ह्वै सब तजि मरना अति भारी है।
मरे अनंतवार गाफिल ह्वै, या तो भूल हमारी है।
मरना है अवश्य न रहैंगे, गाफिल रहना ख्वारी है।
'पारस' प्रभु सेवा फल जो कछु, धरो धरोहर म्हारी है।
अन्त समय पंडित मृति चाहू, अब कै मदत तुमारी है।

निर्वाण भक्ति :

तीर्थंकरों तथा उत्तम कोटि के वीतरागियों का निधन 'निर्वाण' कहलाता है। जैन शास्त्रों में 'निर्वाण' 'मोक्ष' 'शिवत्व' पर्यायवाची शब्द ही हैं। मोक्षप्राप्ति वीतरागियों एवं उनके मोक्षस्थलों की स्तुति करना अथवा मोक्ष-प्राप्ति की इच्छा करना निर्वाण भक्ति है। जैन पद साहित्य में मोक्षस्थलों अथवा तीर्थों की अधिक चर्चा नहीं हुई; किन्तु मोक्ष के प्रति जिनेंद्र भगवान् के सामने ही श्रद्धा अभिव्यक्त की गई है। महाकवि पार्श्वदास शिवमार्ग को पाने के लिए बड़े अधीर हैं:—

ऊजरो पथ है शिव ओरी को, जिन ओरी को।
पांच पाप का त्याग जास मैं, संग्रह समता गोरी को।
समिति गुप्त सूं प्रीति बढ़ावैं।
तज्यो असंजम ओरी को।
दुल्लभ मिल्यो तजूं नहीं 'पारस'
ज्यों चित्तमणि जोंहरी को ॥५६॥

चैत्य भक्ति :

डा० प्रेमसागर जैन के अनुसार चैत्य वृक्ष, चैत्य सदन, प्रतिमा, बिम्ब और मन्दिरों की पूजा-अर्चा चैत्य भक्ति कहलाती है। चैत्य भक्ति का प्रारम्भ गौतम गणधर के 'जयति भगवान्' से माना जाता है। आचार्य कुन्दकुन्द, आचार्य पूज्यपाद, श्रीमच्छान्तिसूरि, श्रीदेवेन्दसूरि आदि सभी जैनाचार्यो ने कृत्रिम और अकृत्रिम चैत्यालयों एवं जिनप्रतिमाओं की वंदना की है।

जैन पद साहित्य में चैत्य सदन, प्रतिमा, बिम्ब अथवा चैत्य वृक्ष की अपेक्षा मन्दिरों की भक्ति से सम्बन्धित पद ही अधिक हैं। मध्य युग में अध्यात्म शैली के वीतरागी गृहस्थ मन्दिरों में एकत्र होकर ज्ञान-चर्चा तथा साहित्य रचना किया करते थे, अतः जिन–मन्दिर भी उनके आराध्य बन गये। पार्श्वदास को तेरहपंथी मन्दिर जयपुर के अतिरिक्त चिमत्कार मन्दिर सवाईमाधोपुर बड़ा भाया, अतः उनकी स्तुति में उन्होंने संस्कृत में भी स्तोत्र लिखें। जिन मन्दिरों की महिमा उन्होंने इन शब्दों में प्रकट की है—

जिन मन्दिर चलि सुम उपजावै, अघ विनसावै।
छ मूर्ना के पाप मिटावै, पोटा विकलप टलि जावै।
आवस्यक षट् कर्म मधै जहां, बहु श्रुति संग मिलि जावै।
कलह हास्य कौतक निद्रा मद, अयूं आप ही रुकि जावै।
'पारस' निज हित सहज बनत जहां, ज्ञान ध्यान दृग बढ़ि जावै ॥३२९॥

जीवन दर्शन :

लोक-जीवन का उन्नयन भारतीय साहित्यकारों का सदैव ही आदर्श रहा। मनु, चाणक्य, भर्तृहरि आदि सस्कृत के अनेक कवियों का तो प्रमुख लक्ष्य ही लोक-जीवन रहा है; तुलसी, रहीम और सूर आदि हिन्दी के कवियों की रचनाओं में भी लोकोपयोगी सूक्तियां पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हैं। भगवान् महावीर ने अपने धर्म की प्रतिष्ठा ही चारित्र के बल पर की। इसी कारण हिन्दी के अन्य कवियों की अपेक्षा जैन कवियों ने जीवन को अधिक परखा है। कविवर पार्श्वदास का व्यक्तित्व अनेक गुणों से समन्वित था। वे चाहते थे कि मानव-जीवन श्रेष्ठ बने। सुखी एवं लोकोपयोगी जीवन का निर्माण करने वाले सिद्धांत उनके काव्य में यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं।

जैनाचार का प्राण अहिंसा धर्म है। यही मानव का सच्चा कर्म है। जैन मत 'जीओ और जीने दो' के सिद्धांत में विश्वास करता हुआ सुखी जीवन के लिए यह अनिवार्य मानता है कि संसार के समस्त जीवों को सुखपूर्वक जीने दिया जाये। पार्श्वदास भी सभी जीवों पर दया रखने तथा हिंसा न करने का निर्देश देते हैं :—

हां रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो, हिंसा सेती डरते रय्यो।
जैन धरम में हिंसा बरजी, दया भाव अनुसरते रय्यो ॥३६॥

जैनाचार का दूसरा महत्वपूर्ण सिद्धांत अपरिग्रहवाद है; जिसका अर्थ है अधिक संचय न करना। वस्तुतः आज का समाजवाद अपरिग्रहवाद का ही आधुनिक रूप है। सभी प्राणियों को सुख मिलने तथा समाज में असन्तोष न बढ़ने की भावना से भगवान महावीर ने २५०० वर्ष पहले ही अपरिग्रह के रूप में जीने की कला बतला दी थी। पार्श्वदास भी परिग्रह की प्रवृत्ति को दुःखदायी ठहराते हैं :—

अकिंचन धरम धरि गायी।
परिग्रह की ममता दुःखदायी ॥४०॥

परिग्रह अथवा संचय की प्रवृत्ति का विनाश या अभाव तभी होगा, जब भौतिक वस्तुओं के प्रति मोह नहीं रहेगा। यदि धन, धाम, स्त्री, पुत्र, परिजन आदि में ममत्व रहा तो व्यक्ति निश्चिन्त होकर आत्म-सुख प्राप्त नहीं कर सकेगा। पार्श्वदास मोह के दुष्परिणाम को इस रूप में प्रस्तुत करते हैं :—

मोह ठग मो सिर भुरकी डारी, याही तैं भयौ पुवारी।
भूलि गयो जिन भूप रूप मम, पर मैं निजता धारी।
इष्ट अनिष्ट मानि धरि रति, रिसि वृत्ति गहि अघकारी।
ताही करि परिवर्तन भुगते, यादि करत भय भारी ॥२६५॥

लौकिक वस्तुओं की क्षणभंगुरता को भुलाकर उन पर झूठा गर्व करने का विरोध सभी मनीषियों ने किया है। पार्श्वदास भी परिवर्तनशील संसार में धन या शक्ति पर गर्व करना निरर्थक मानते हैं :—

काहे गर्भ करत है झूंठा है संसार।
धनी होत छिण मांय दरिद्री, निरधन धन भंडार।
टेड़े चालत पेच सवारत, ते डोलत पर द्वार ॥२५३॥

उनकी दृष्टि में अभिमान व्यक्ति में क्रोध, लोभ, छल, मोह आदि दुर्गुण तो उत्पन्न करता ही है; किन्तु उसकी बुद्धि को भी भ्रमित कर देता है[१४]। अतः निरभिमानता या मार्दव धर्म ही सच्चे सुख का स्त्रोत है।

समाज में विश्वास और सम्मान पाने के लिए पार्श्वदास ने जैनाचार के प्रमुख तत्व सत्य की अनिवार्यता भी अनुभव की है। व्यावहारिक जीवन में सत्य की सफलता पर उन्हें पूर्ण विश्वास भी है :—

अगनि तो साम्यता पावै, सरप हू माल हो आवै।
सत्य तैं होत थल पानी, सुधा सम जहर होय जानी ॥१८६॥

जैन धर्म में सात व्यसनों के त्याग पर बड़ा बल दिया है। ये सात व्यसन हैं— द्यूतक्रीड़ा, मांसभक्षण, मदिरापान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी और परनारी सेवन। पार्श्वदास ने उक्त व्यसनों के सेवन करने वाले प्राणियों के भयावह कष्टों की चर्चा करते हुए इनसे बचते रहने की कड़ी चेतावनी दी है।[15] इन सात व्यसनों में भी उन्होंने परनारी-गमन और चोरी के दुष्परिणामों को अधिक भयानक रूप में चित्रित किया है। चोरी करने से व्यक्ति कितना तिरस्कार पाता है? इस विषय में वे कहते हैं—

हितू मित्रापी लखि करि लाजै, सुख सुपनैं नहि छाजै।
राजा दंडै लोका मडै, सज्जन पंच विहडै।
पञ्च भेद जुन समझि तजो, ज्यूं पद्धति थारी मडै।
प्राण समान जाणि धन परको, मति कोई हरण विचारो।
हिंसा तैं भी अधिक पाप यह, भाखो श्री गणधारो ॥२५२॥

विषय-सेवन में रत जीवात्मा आत्म-स्वरूप को किञ्चिन्मात्र भी पहचानने का प्रयत्न नहीं करता; इसलिए जैन धर्म में विषयों के त्याग पर बड़ा बल दिया गया है। व्रत, उपवास, दान और ब्रह्मचर्य-पालन में जैन धर्मावलम्बियों की दृढ़ आस्था भी इन्द्रिय-विषयों से निवृत्त होते रहने की भावना से है। पार्श्वदास कहते हैं कि स्पर्श, स्वाद, सुगन्ध-ग्रहण, दर्शन एवं श्रवण पांचों विषयों में से एक-एक का सेवन ही क्रमशः रावण, मछली, भ्रमर, पतंगा और मृग का विनाश कर देता है; तो पांचों विषयों का एक साथ सेवन करने वाले दुष्ट मनुष्य के विनाश में तो कुछ भी देर नहीं लगेगी :—

पाचूं सेवत आनंद मानत, सो मठ जानों रे भाई।
विनसत बार लगै नही इनकूं, यातैं विलम न लगायी।
तजि इन पार्श्व भजो शिवरायी, फिर कब अवसर आयी ॥१८८॥

इन इन्द्रिय-विषयों से मन को विरत करने का एक ही उपाय संयम है; और यह केवल मानव-जीवन में ही संभव है। पार्श्वदास देवों के लिए भी दुर्लभ मानव जीवन में दृढ़तापूर्वक संयम धारण करने की प्रेरणा देते हैं :—

इन्द्र चहै या लोक कूं रे जीया, संजम कारण एक।
'पारस' पायो सहज मैं रे जीया, सो धारो तजि टेक ॥२३६॥

जैन दर्शन और जैनाचार दोनों में ही 'समता' का बड़ा महत्व है। बन्धनयुक्त आत्मा अपने मुक्त स्वरूप को पहचानने की ओर तभी बढ़ सकेगा; जब उसमें समता-भाव का उदय होगा। किन्तु समता भाव को प्राप्त करने के लिए राग द्वेष पर विजय पा लेनी होगी। पार्श्वदास कहते हैः—

राग द्वेप तजि होय समतामय ये बातें सुपषांनी।
'पारस' निज स्वरूप ही सुषमय सम्यक गुरु तैं जानी ॥३८॥

पार्श्वदास हृदय की पवित्रता के बड़े समर्थक थे। यद्यपि अपने आचार-दर्शन में उन्होंने पूजा-पाठ, शास्त्र-पठन तीर्थ-यात्रा आदि की भी चर्चा की है, किन्तु इन सबको सफलता के लिए हृदय की निर्मलता अनिवार्य शर्त है। वे कहते हैं कि मुक्ति-साधना के लिए बन में जाना, भस्म रमाना, यज्ञ, होम, तर्पण आदि करना, देव के समक्ष गाना-बजाना थोथे ही रह जायेंगे, यदि हृदय को निर्मल नहीं बनाया तो—

बाहिर क्रियाकांड कीयैं तै पर ही पर दरसावै।
अंतर सुद्ध किये विन सब ही थोथा उड़ि उड़ि जावै। २१६॥

साधना और लोक-व्यवहार के क्षेत्र में सभी संतों ने सत्संग को बड़ा महत्व दिया। सत्संग के बिना जीवन ही अधूरा है। अच्छे व्यक्तियों की अवहेलना कर मूर्ख और अवगुणी व्यक्तियों के पास क्षणभर बैठने में ही व्यक्ति के सभी गुण नष्ट हो सकते हैं। पार्श्वदास समझते हैं कि सत्सग ही विषय, कषाय एवं सप्त व्यसनों से छुटकारा दिलाने वाला है। वही उनकी दृष्टि में सम, यम और शील को बताने वाला है। सत्संग ही दुर्बुद्धि का नाश कर सुबुद्धि प्रदान करता है। यही जिनवाणी सुनने का अवसर प्रदान करता है[१६]। सत्य तो यह है :

और जिते परसंग ही बोवै कुगति मझार।
'पारस' तारनहार है सत्संग विचार ॥२२३॥

गीति-कला :

गीतिकाव्य की परम्परा संस्कृत एवं प्राकृत के साहित्य में विकसित होती हुई अपभ्रंश और हिन्दी में उत्तरोत्तर बढ़ी है। अपभ्रंश साहित्य में 'चाचरि' 'फागु',

'वेलि', 'रासो' एवं 'चूनड़ी' संज्ञक रचनाओं में जैन कवियों के प्रबन्धगीत पर्याप्त मात्रा में हैं; किन्तु उनमें आत्माभिव्यक्ति की अपेक्षा किसी चरित्र अथवा धार्मिक तत्व का विवेचन है। आत्माभिव्यक्ति के लिए जैन कवियों ने भी गीतिकाव्य की सर्वोत्कृष्ट शैली पद को अपनाया है। कविवर पार्श्वदास के आविर्भाव के समय (संवत् १८७५-१९४०) तक जगतराम बुधजन, द्यानतराय आदि कवि पर्याप्त पद साहित्य लिख चुके थे; अतः पार्श्वदास निगोत्या को जैन पद साहित्य की विकसित परम्परा मिली। गीतिकाव्य के सभी तत्व आत्माभिव्यंजन, अनुभूति की पूर्णता, भावों का एक्य संगीतात्मकता तथा माधुर्यपूर्ण भाषा पार्श्वदास पदावली में विद्यमान हैं।

आत्माभिव्यंजन :

व्यक्तिगत सुख–दुःख की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करना गीतकाव्य की प्रमुख विशेषता है। पार्श्वदास के पदों में तीर्थंकर पार्श्वनाथ के प्रति उनकी अगाध श्रद्धा, दैन्य तथा सांसारिक आसक्ति के प्रति खीझ सर्वत्र देखी जा सकती है। पार्श्वदास के पदों में जैनधर्म, शास्त्र, मुनियों व तीर्थों के प्रति उनके अनन्य अनुराग का भी बोध होता है। कवि की उल्लासपूर्ण अनुभूतियां आदिनाथ और महावीर भगवान के जन्म-कल्याणक के उत्सवों में अभिव्यजित हुई हैं। राजमती के विरह–वर्णन में कवि की अपनी ही वेदना और कसक अन्तर्निहित है।

पार्श्वदास गृहस्थ अवस्था में भी परम जिनभक्त थे। भगवान् पार्श्वनाथ के चरणों में उनकी अतिशय प्रीति थी। अतः उनकी भक्ति में बाधक, क्रोध, लोभ, छल, अभिमान आदि दुर्गुणों को दूर करने की ओर उनका ध्यान सदैव रहा। उनके कई पदों में दुर्गुणों से ग्रस्त उनकी आत्मा आर्तभाव से भगवान् पार्श्वनाथ का आश्रय तकती हुई देखी जाती है—

> अहो पास जिनराज दास मोय, अपनो जाणि उबारो।
> मेरी निज निधि कर्म ठगत है, इनको सङ्ग निवारो।
> विषय चाटि वसि करि कैं मोकूं, ध्यान छुड़ावत थारो।
> मोह तत्व कूं जोर भुलावत, याको सङ्ग विड़ारो।
> क्रोध लोभ छल मान सकल तैं, मो कूं तो अब टारो।
> इन संगि दुःख सहे बहुतेरे, रूप न जाण्यो थारो ॥२६॥

पार्श्वदास के प्रायः सभी पदों में व्यक्तिगत तन्मयता और उल्लास के दर्शन होते हैं। तुलसी और सूर के पदों की भांति समाज-चित्रण तो पार्श्वदास के पदों में नहीं; किन्तु दार्शनिक विवेचन अवश्य हुआ है। पार्श्वदास ने चेतन (आत्मा) को पति, कपाय, मायादि व मुक्ति को कुमति-सुमति नारियां कहकर रूपकों के माध्यम से दार्शनिक तत्वों का विश्लेषण किया है; जिससे उनमें जटिलता और दुरूहता की अपेक्षा सरसता और रोचकता है।

अनुभूति की पूर्णता :

गीतिकाव्य की अनुभूति बड़ी भावमयी और सबल होती है। भावुक कवि का अन्तर्मन जब अनुभूतियों से भरपूर हो जाता है; तब अनुभूतियां छलक पड़ती हैं और गीतिकाव्य का जन्म होता है। पार्श्वदास अत्यन्त भावुक कवि हैं। पार्श्वनाथ जी के नामस्मरण अथवा दर्शन मात्र से वे भावनाओं के सागर में डूब जाते हैं; अतः उनके पदों में बड़ा भावावेश पाया जाता है :

तुम विन तीन लोक में मोरो, वाली वारिस न कोयी।
जो दीसै सो सकल विनश्वर, वसुविधि वसि दोतै वोयी।
का पै जावूं दीसै न कोई, परावीनता विन जोयी।
ज्यों सागर विचि नव का पंछी, पर शरण विन मैं सोयी।
मैं तुम विन भरमे दुप भुगते, तुम तैं छानी ना कोयी।
अब मम दुःख मेटो सुप दीजे, या तैं सरण गहूं योयी ।।२७२।।

प्रस्तुत पद में अनन्य भावना अन्तर्निहित है। संसार में भ्रमण करने के उपरान्त कवि उसकी नश्वरता और सच्चा सुख देने की असमर्थता को भली भांति जान चुका है; इसी कारण उसे तीन लोकों में एक मात्र रक्षक पार्श्वनाथ के प्रति अनन्यता की पूर्ण अनुभूति हुई है।

भावों का ऐक्य :

गीत के अन्तर्गत अभिव्यक्त भाव के स्थायी प्रभाव की दृष्टि से उसका अकेलापन आवश्यक है। यदि एक ही गीत में कई भाव होंगे तो वे अपनी विशृङ्खलता के

कारण स्थायी प्रभाव नहीं डाल सकेंगे तथा पाठक या श्रोता के हृदय का स्पर्श नहीं कर सकेंगे । पाठक को तल्लीन एवं भाव-विभोर करने के लिए अनिवार्य है कि गीतों में भावों का ऐक्य अथवा अन्विति हो । भावों की अन्विति पार्श्वदास के सभी पदों में मिलेगी, कहीं-कहीं एक ही भाव की पुष्टि अनेक प्रकार से की गई है—

जिनंद जी विरद सुन्यो थांको बांको ।
उपकार करो क्यूं नां म्हांको ।।टेक।।
अंजन से तुम अधम उधारे, कीनों सब अघ साको ।
चांडाल दह मांय पर्‌या को, अतिसय प्रगट्यो वाको।
रघुपति रानी परी अग्नि विचि, नांम लेय इक थांको ।
अग्निकुंड सत्र जलि डार्‌यो, जस प्रगटायो ताको ।
त्यारे बहुत सुनी आगम मैं, कहता अन्त न जाको ।
'पारसदास' कहाय कौण पै जाय कहावूं काको ।।११६।।

इस पद में पार्श्वदास की उद्धार करने की भावना का समर्थन सीता, अंजन और चांडाल आदि भक्तों की कथाओं के माध्यम से किया गया है, जिससे वह पर्याप्त पुष्ट हो जाने के कारण प्रभावकारी हो गई है ।

संगीतात्मकता :

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का संगीत से घनिष्ठ सम्बन्ध था । कबीर, सूरदास, तुलसी और मीरा आदि कवि भक्त होने के साथ-साथ संगीत के अच्छे ज्ञाता थे । विविध मन्दिरों और धार्मिक पर्वों में इनके पदों को गाती हुई जनता आज भी भाव-विभोर होती है । बनारसीदास, बुधजन, द्यानतराय आदि सभी जैन भक्तों का भी संगीत से बड़ा सम्बन्ध रहा । अकेले पार्श्वदास ने ही पार्श्वदास पदावली में ४३ राग और विभिन्न रागनियों का प्रयोग किया है । राग-रागनियों के साथ उनके तालों की भी चर्चा की है, जो कवि की संगीत सम्बन्धी गूढ़ जानकारी का परिचायक है । इन रागों में उपयुक्त भावनायें ही पिरोई गई हैं । मन-प्रबोधन कवि ने सोरठ और भैरू रागों में अधिक किया है । उनकी विरह-भावनायें भैरवी, खमावच, कान्हड़ो रागों में अभिव्यंजित हुई हैं । पार्श्वदास ने अपनी दीनता और विनय का निवेदन करने के लिए अधिकतर अडाणो, विहाग और ईमन रागों का सहारा लिया है ।

गीतिकाव्य के प्रमुख रस शान्त, शृङ्गार और वात्सल्व रहे हैं। पार्श्वदास पदावली के प्रमुख रस भी यही हैं। नेमिनाथ के गिरिनार चले जाने पर राजमती के विलाप के चित्रण में कवि ने बड़ी मर्मस्पर्शी अनुभूतियां अभिव्यक्त की हैं—

सावरे नैं कोई आनि कै मिलावै,

तोरन तैं रथ फेरि चले गढ़ गिरनारी तैं मुडावै ।।३११।।

सूर और तुलसी की तरह अपने इष्ट की बाल-लीलाओं का चित्रण जैन भक्तों का अभीष्ट नहीं रहा। अतः बाल्यजीवन की केलिपूर्ण भावनाओं की अभिव्यक्ति जितनी सूरदास में है अथवा थोड़ी सी तुलसीदास में है, वह जैन भक्तों में नगण्य सी है। उन्होंने जन्मकल्याणक सम्बन्धी कुछ पदों में तीर्थकरों के माता-पिता का उल्लेख तथा जन्मोत्सव मात्र का चित्रण किया है, किन्तु पार्श्वदास की दृष्टि बालक नेमिनाथ के झूलने तक अवश्य पहुंच गई है—

श्री समुदविजै जी रो ललना पलना में झूलै री।

धनद रचित रतनन रो पलना रेसम डोरी लगाई।

सक्र सची जुत त्रिनय देवगन, होड़ाहोड़ झुलाई।

मात तात उर हरष न मावत, उठि उठि लेत बलाई ।।३५४।।

संसार की असारता, परिजनों की स्वार्थपरता, धन-वैभव की क्षणभंगुरता तथा कायाकष्टों की प्रचंडता के चित्रण में निर्वेदमूलक उक्तियां संत और वैष्णव भक्तों के समान पार्श्वदास के अनेक पदों में बिखरी पड़ी हैं। भयानक और वीभत्स रस गीतिकाव्य के अनुकूल न होने के कारण पार्श्वदास के काव्य में एक दो स्थान पर ही प्रयुक्त हुए हैं। वीर और अद्भुत रस का पार्श्वदास पदावली में पूर्ण अभाव है।

सङ्गीत की पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए भावों की मधुरता के अतिरिक्त पदों का संक्षिप्त होना भी अनिवार्य है। सूर और तुलसी के काव्य में भी कई पद बड़े हो गए हैं; किन्तु ४२५ पदों की रचना में भी पार्श्वदास का कोई पद विस्तृत नहीं हुआ।

माधुर्यपूर्ण भाषा :

गीति काव्य की श्रेष्ठता के लिए मधुर, कर्णप्रिय, सरस एवं सरल भाषा का

होना आवश्यक है। अपनी मधुरता और सरसता के कारण ब्रजभाषा ही समस्त गीतिकाव्य का स्तम्भ रही है। पार्श्वदास की भाषा ब्रज मिश्रित ढूंढाडी है। उनके कई पद पंजाबी, रेखता और गुजराती में भी लिखे गए हैं। इन भाषाओं के माध्यम से अपनी कोमल भावनाओं को अभिव्यक्त करने में पार्श्वदास ने भारी सफलता प्राप्त की है। उन्होंने अपनी भाषा को न तुलसीदास की तरह संस्कृत शब्दों के व्यापक प्रयोग से बोझिल बनाया है और न कबीर आदि निर्गुण संतों की तरह देशज शब्दों की भरमार से दुरूह और जटिल ही। सूर और मीरा की तरह पार्श्वदास की भाषा गीतिकाव्य के अनुकूल बड़ी प्रवाहमयी है। उनका शब्द-चयन प्रशंसनीय है। संगीतमयी लय को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए पार्श्वदास ने शब्दों को काफी तोड़ा-मरोड़ा है। कहीं वे शब्दों में मधुरता का भाव भरने के लिए प्रत्यय जोड़कर उन्हें विकृत करते हैं तो कहीं सरलता के लिए उनके संयुक्त रूप को भंग कर देते हैं। शब्दों का लोचयुक्त प्रयोग उनका अभीष्ट है। पार्श्वदास के शब्द-चयन की विशेषताओं के कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं—

'यो' प्रत्ययान्त शब्द :—खटक्यो, सटक्यो, पटक्यो।
'या' प्रत्ययान्त शब्द :—अरजीया (अर्जी), गतिया, बतियां, मतिया।
'ड़' 'ड़ी' 'वा' प्रत्ययों का प्रयोग :—दारुड़ी, सुज्ञानीड़ा, बीनतड़ी, ढिगवा, मनवा।
संयुक्त वर्णों का लोप; उछव (उत्सव), दिढ़ता।
संयुक्त वर्णों का अमीलित रूप—सपरस (स्पर्श) सुवरण।
शब्दों का लोचयुक्त प्रयोग—मुतलब, मोरी, चावू (चाहूं), पावू (पाऊं)।
अनुस्वार युक्त दीर्घ स्वरों का प्रयोग—कदमां, सुरगां।

उपयुक्त शब्द-चयन के अतिरिक्त पार्श्वदास ने अपने पदों में संगीत की ध्वनि उत्पन्न करने वाले 'रे' 'री' 'हे री' आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है।

समष्टि रूप में, गीतिकाव्य के सभी तत्वों की दृष्टि से 'पार्श्वदास पदावली' गीतिकाव्य की एक सफल कृति है और अभी तक अज्ञात कवि पार्श्वदास हिन्दी के श्रेष्ठतम गीतिकारों में से एक हैं।

अध्यात्म, आराध्य, भक्ति, जीवन-दर्शन तथा गीतिकला आदि विभिन्न दृष्टिबिन्दुओं से पार्श्वदास पदावली की समीक्षा करने पर स्पष्ट है कि पार्श्वदास अपने युग

के श्रेष्ठ कवि, तत्वचिंतक एवं विचारक थे। व्यक्तिगत साधना के अतिरिक्त लोकोपकार की भावना भी उनमें व्याप्त थी। हिन्दी काव्य में उनका व्यक्तित्व कबीर, सूर, तुलसी, मीरां आदि विशिष्ट कवियों के समकक्ष ही महत्वपूर्ण स्थान पाने का अधिकारी है।

---

१. वीरवाणी, वर्ष १, अङ्क १७, ३ दिसम्बर, १९४७, पृष्ठ २८५।
२. सब कुदेव दीसत विकारमय, सान्तिमूर्ति जिनदेव ॥६६॥
३. पार्श्वदास पदावली पद १०१
४. वही , पद १८०
५. जाका तन की छबि कूं निरषत कोटि भानु हू लजायी ॥१५०॥
६. पार्श्वदास पदावली, पद १०१
७. चंद चकोर मोर घन तिमि जल, यों ऋषि मुनि सब ध्यावें ॥१०९॥
८. वही , पद १६५
९. वही , पद ७७
१०. जन भक्ति काव्य की पृष्ठभूमि, पृष्ठ १२
११. वही , पृष्ठ १०६
१२. वही , पृष्ठ १३८
१३. वही , पृष्ठ १३८
१४. पार्श्वदास पदावली, पद १७६
१५. वही , पद १९६
१६. वही , पद ५५

—:०:—

भूमिका,

पदावली : पाठ-सम्पादन

अभी तक 'पारस विलास' की छह प्रतियां प्राप्त हुई हैं। पार्श्वदास की पदावली के पाठ-सम्पादन में इनमें से से चुनी हुई तीन प्रतियां उपयोग में लाई गई हैं। सभी प्राप्त प्रतियों का विवरण इस प्रकार है :—

१. प्रति 'त'— यह प्रति तेरह पंथी मन्दिर टोंक में उपलब्ध है। प्रति का आकार ११"×६½" इंच है। इसकी पृष्ठसंख्या १६२ है। प्रत्येक पृष्ठ में १४ पंक्तियां हैं। प्रत्येक पंक्ति में लगभग ४० अक्षर हैं। पृष्ठों के दोनों ओर १½ इंच का हासिया छूटा हुआ है। इस प्रति में 'पारस विलास; अपनी संम्पूर्ण स्थिति में है' किन्तु ५२ से ६२ तक १० पृष्ठ खो जाने से "बाहर भावना" सम्बन्धी २६ पद उपलब्ध नहीं हैं। लिपि सुवाच्य एवं सुपाठ्य है। कई जगह अधूरे पद रह जाने के कारण पुनः पूरा करने की चेष्टा की गई है। प्रतिलिपि करते समय कई पदों की पुनरावृति हो जाने पर उन्हें पुनः काटा गया है। एक-दो पद लिपिकर्ता द्वारा छोड़े गए स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति द्वारा भी लिपिवद्ध किए गए हैं। यह प्रति बखतावर पाटणी ने अपनी मां के नुक्ता में चढ़ाई है-"यो ग्रंथ बखतावरलाल पाटणी बेटा रूप जी हाला वाकी मां का नुक्ता में श्री चंद्रप्रभु जी का मंदरजो तेरापंथी आमनाय का मंदर जी चोड़ो।"

२. प्रति 'न' :—यह प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर में उपलब्ध है। इसका आकार १२"×८ इंच है। एक पृष्ठ में १६ पंक्तियां है। प्रत्येक में २५ अक्षर हैं। पृष्ठों की कुल संख्या ११५ है। इस प्रति का कागज नीला है। लिपि यद्यपि सुपाठ्य है, किन्तु प्रति के अत्यन्त जीर्ण होने के कारण पृष्ठ के किनारे या मध्य के कई अक्षर गायब भी हो गए हैं।

३. प्रति 'अ' :—यह प्रति अमीरगंज मन्दिर, टोंक में विद्यमान है। इसकी पृष्ठसंख्या १८३ है। प्रतिलिपि का आकार ११½"×६½ इंच है। दोनों ओर १½ इंच का हासिया है। इसकी प्रतिलिपि बादामी कागज पर की गई है। प्रत्येक पृष्ठ

पर १४ पंक्तियां हैं और प्रत्येक पंक्ति में ३५ अक्षर हैं। इसका लिपिकाल माह सुदी १३, मंगलवार संवत् १९३८ है। प्रति 'अ' सम्पूर्ण, सुपाठ्य और प्राचीन है।

४. प्रति 'च' :—यह प्रति निगोत्यान मन्दिर जयपुर में उपलब्ध है। प्रति का आकार ८½" × ७ इंच है। पृष्ठों के दोनों ओर १ इंच का हाशिया छूटा हुआ है। प्रत्येक पंक्ति में २५ अक्षर हैं। प्रति 'च' के प्रारम्भ में द्यानतराय और वृंदावनदास की पूजा आदि हैं; तदनन्तर पार्श्वदास के १६२ पद लिखे गये हैं। प्रारम्भिक १२ पद खो जाने से अब इस प्रति में पार्श्वदास के केवल १५० पद शेष हैं। इसकी प्रतिलिपि पार्श्वदास के भतीजे चांदूलाल द्वारा की गई है।

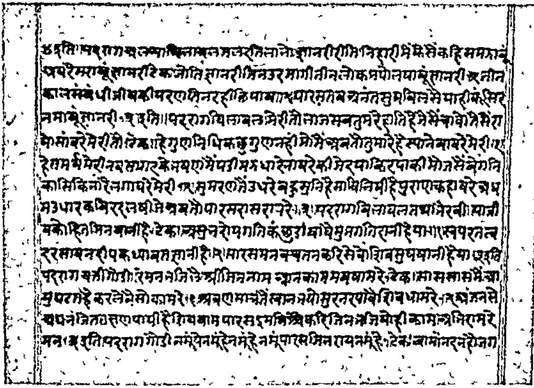
५. प्रति 'ल' :—यह प्रति लूणकरण जी का मन्दिर जयपुर में प्राप्त है। इसकी पत्रसंख्या ३२ है। रचना में दोनों ओर हाशिया है। इसकी प्रतिलिपि भांवसा गोत्रिय गुलाबचन्द्र मालपुरावालों ने पटोदी मन्दिर में प्राप्त प्रति के आधार पर की। लिपिकाल संवत् १९५५ और सन् १८९९ दोनों ही लिखे गए हैं। यह प्रति बहुत अधूरी है। इसमें 'द्वादशांग पाठ और केवल १४ पद हैं। ये पद भी विभिन्न तिथियों को उतारे गए हैं; एक साथ नहीं। प्रति 'ल' की प्रारम्भिक दो पंक्तियां है-'ॐ नमः सिद्धेभ्यः' और "अथ पद पार्श्व विलास का लिख्यते।"

प्रति ६. 'ग' :—लिपिकर्ता गुलाबचन्द्र भांवसा की यह प्रतिलिपि भी लूणकरण जी का मन्दिर जयपुर में है। इस प्रति में 'अर्हंत भक्तिपाठ' 'आरती', 'श्री हतनापुर री जात रा पाठ' तीन रचनाएं तथा कुछ फुटकर पद हैं।

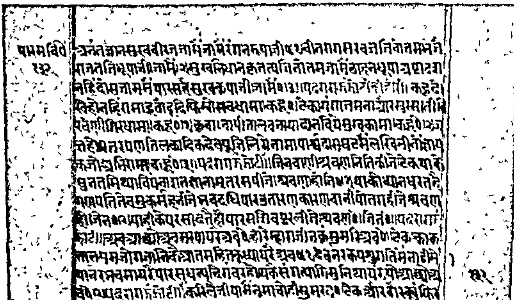
उक्त छह प्रतियों में प्रति 'ल' और 'ग' मनोयोगपूर्वक नहीं लिखी गई। दोनों ही प्रतियां कवि के जीवनकाल से अधिक बाद की और अत्यन्त अपूर्ण हैं। दोनों ही प्रतियों में अशुद्धियां भी अधिक हैं। प्रति 'च' भी अपूर्ण है। यह प्रति निगोत्यान मन्दिर में ही प्राप्त पूर्ण प्रति 'न' की नकल का अल्प प्रयास है। प्रति 'न' एवं 'त' एक ही वर्ग की प्रतियां है क्योंकि दोनों में निम्नांकित समानताएं मिलती हैं—

१. 'दर्शन पच्चीसी' 'सुगुरु शतक' 'हितोपदेश पाठ' और 'सरस्वती पूजा' चारों रचनाएं दोनों प्रतियों में नहीं हैं। प्रति 'अ' में ये चारों रचनाएं, पारस विलास के अन्त में उल्लिखित हैं।

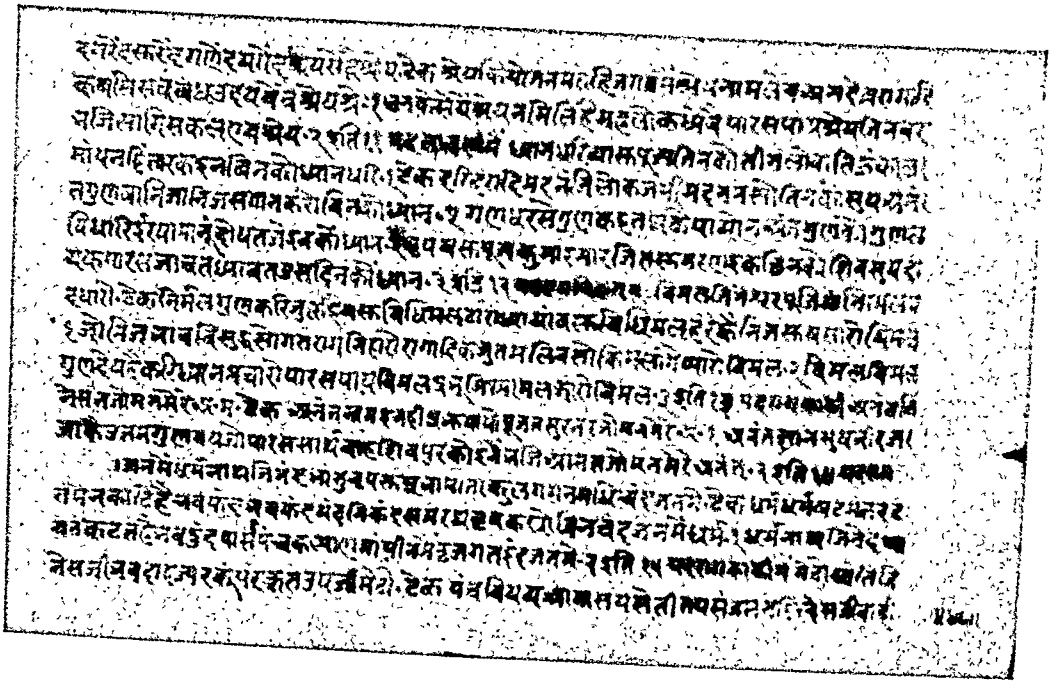
२. दोनों ही प्रतियों में अन्तिम 'पद मत लखियों नारि विरानी रे'- है। प्रति 'अ' में बढ़े हुए पद दोनों में ही नहीं है। बाद में किसी ने यत्र तत्र कुछ पद जोड़े



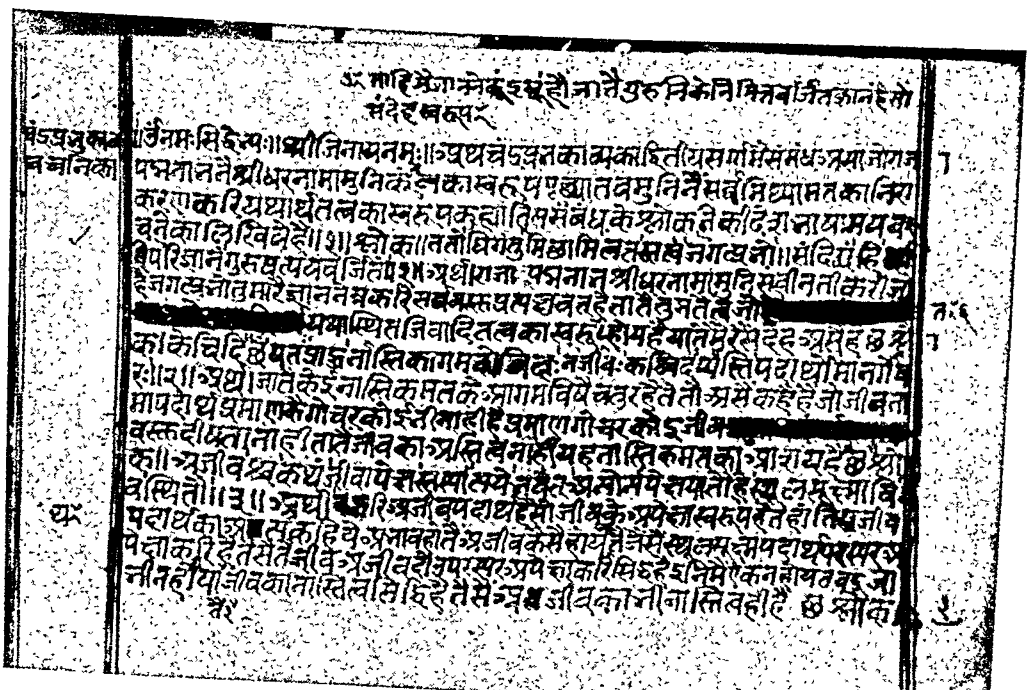
प्रति 'त' का एक पृष्ठ



प्रति 'अ' का एक पृष्ठ



प्रति 'न' का एक पृष्ठ



कविवर पार्श्वदास का हस्तलेख

३. पार्श्वदास की दो मौलिक संस्कृत रचनाएं 'चतुर्विशाति तीर्थंकर स्तुति' और 'चिमत्कार जिनपूजा' दोनों ही प्रतियों में 'ज्ञानसूर्योदय नाटक की वचनिका' के बाद में हैं।

एक ही शाखा की प्रति 'त' एवं 'न', प्रति 'अ' की अपेक्षा अधिक प्राचीन और प्रमाणिक हैं। इसके सम्बन्ध मे प्रमुख तर्क प्रति 'त' एवं 'न' में पारस विलास की मूल रचनाओं का ही सग्रहीत होना है। पार्श्वदास ने अपने संग्रह ग्रन्थ पारस में केवल संवत् १६२० तक लिखी हुई रचनाओं का ही संग्रह किया था। प्रति 'अ' में संवत् १६२० के बाद की रचनाएं भी 'दर्शन पच्चीसी' 'सुगुरु दशक' हितोपदेश पाठ, 'सरस्वती पूजा' तथा कुछ पद सम्मिलित कर लिये गए हैं। प्रति 'त' एव 'न' की तरह प्रति 'अ' की पूर्व पीठिका में भी पारस विलास की सगृहीत रचना के रूप में इनमे से किसी भी रचना का नामोल्लेख नहीं है।

प्रति 'अ' अपेक्षा प्रति 'त' एवं 'न' के अधिक प्रामाणिक होने के सम्बन्ध में दूसरा महत्वपूर्ण तर्क भाषा-स्वरूप की सुरक्षा का है। प्रति 'अ' में भाषा का स्वरूप अपने मूल रूप से विकृत होकर परिनिष्ठित हिन्दी की ओर झुका हुआ है, जैसे :—

१. प्रति 'त' एवं 'न' में 'ख' के स्थान पर सर्वत्र 'ष' का प्रयोग है किन्तु प्रति 'अ' मे 'ख' ही प्रयुक्त हुआ है।

२. प्रति 'त' एवं 'न' में संयुक्त वर्णों का बिगड़ा स्वरूप मिलता है। जैसे— 'आतमीक', 'दिढ़'। प्रति 'अ' में संयुक्त वर्ण अमीलित नहीं हुए हैं; जैसे—'आत्मीय दृढ़ सर्वज्ञ', 'निर्विघ्न' आदि।

३. प्रति 'त' एवं 'न' में अनुस्वार का निरर्थक आगमन हुआ है जैसे— 'ढांवयो', मतियां'। प्रति 'अ' में ऐसा नहीं है।

४. प्रति 'त' एवं 'न' में कहीं कहीं 'क्ष' का 'ष' लिखा गया है जैसे— पोष। प्रति 'अ' में सर्वत्र 'क्ष' का प्रयोग है।

५. प्रति 'त' एवं 'न' में 'श' एवं 'व' के स्थान पर अधिकांशतः 'स' एवं 'ब' ही मिलते हैं, किन्तु प्रति 'अ' में दोनों वर्ण सही रूप में उपलब्ध है।

'पार्श्वदास पदावली' के पाठ-सम्पादन के लिए सम्पूर्ण, प्राचीन, सुपाठ्य एवं शुद्ध प्रतियां 'त', 'न' एवं 'अ' ही अधिक उपयोग में लाई गई हैं। प्रति 'अ' एक शाखा की एवं प्रति 'त' एवं 'न' तथा शेष अपूर्ण प्रतियां दूसरी शाखा की हैं। भाषा के प्राचीन स्वरूप की सुरक्षा की दृष्टि से प्रति 'त' एवं 'न' के पाठ को अधिक महत्व-पूर्ण मानते हुए भी विषयानुसंगति या अर्थानुसंगति के आधार पर 'अ' प्रति के पाठों को भी प्रमुखता दी गई है। स्वीकृत पाठों का विवरण इस प्रकार है :—

१.१:४. स्वीकृत पाठ है :

मतं देशितं येन सुसारं।

प्रति 'अ' में 'मत' के स्थान पर 'मत्त' पाठ है। यह पाठ दृष्टिभ्रम के कारण त्रुटित लिखा गया है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है "जिसने ससार को मत दिखाया है।"

२.२:१. स्वीकृत पाठ है :

जिन जगदाधार तारय मां त्वरितं

प्रति 'अ' में 'जिन' शब्द से पहले 'श्री' प्रक्षेप है। प्रति 'अ' में 'जगदाधार' के स्थान पर श्रुतिदोष से केवल 'जगदाधा' रह गया है। यह पाठ अर्थ की दृष्टि से असंगत ...ति 'अ' में 'जगदाधा' शब्द में 'र' की अभाव की पूर्ति के लिए ही 'जिन' से ...ेप हो गया प्रतीत होता है।

...ठ है :

...विनासी जामण मरण विडारो।

...ान पर मिलने वाला 'जा' पाठ अर्थसंगत नहीं है। छंद-... 'जा' पाठ विकृत है।

...कृत पाठ है :

जल चंदन अक्षत जो अनोपम पुष्प चरू सुमिलार हो।
दीप दसांग धूप फल उत्तम, अर्घ करू सुखकार हो।

प्रति 'त' एवं 'न' में सुमिलार के स्थान पर दृष्टि भ्रम से 'सुपिलार' पाठ हो गया है,

जो प्रसंग की दृष्टि से अर्थ संगत नहीं है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है:— 'जल चंदन अनुपम अक्षत, पुष्प और नैवद्य मिलाकर दीप, धूप, और उत्तम फल लेकर सुखकारी अर्घ्य करूं' :

५,४:४. स्वीकृत पाठ है :

झालरि घंटा झांझि मजीरा, भेरी दुंदुभी नार हो।

प्रति 'अ' में भेरि के स्थान पर 'भरी' पाठ है; जो श्रुतिदोष अथवा दृष्टिभ्रम के कारण विकृत है। 'भेरि' एक वाद्य यंत्र का नाम है। अन्य वाद्य यन्त्रों के प्रसंग में यहां उसकी भी चर्चा हुई है। 'भरी' पाठ प्रसंगानुकूल नहीं है।

६,५:७. स्वीकृत पाठ है :

दान च्यार विधि देय भक्ति तैं दुःपित कू रझिभावो।

प्रति 'अ' में मोटे अक्षरों मे छपी अर्द्ध पक्ति 'दुपित कू रझिभावो' के स्थान पर 'दुःपित कू रजिभावो' है। यह लिपिजन्य भूल है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है: – 'दुःखी को प्रसन्न करो।' प्रति 'अ' का पाठ प्रसगानुकूल नहीं है।

७.१०:४ स्वीकृत पाठ है :

पार्श्वदास सकास बिनवूं राषि निजकरि साथ।

प्रति 'अ' में लिपिजन्य भूल के कारण 'विनवुं' के स्थान पर 'विनकूं' पाठ है। अर्थानुसंगति की दृष्टि से 'विनवूं' पाठ अधिक उपयुक्त है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है— 'पार्श्वदास के पास विनय करता हूं कि मुझे अपने पास रखिये'।

८.१४:५. स्वीकृत पाठ है :

तिनकूं नाम करण सुमरण करि मानहु कह्या हमेरा

प्रति 'अ' में 'हमेरा' के स्थान पर 'मेरा' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल है। 'मेरा' पाठ अर्थसंगत होते हुए भी मात्रा की कमी के कारण छंद-सौष्ठव की दृष्टि से ग्राह्य नहीं है।

९.१५:७. स्वीकृत पाठ है :

पारस जब सूं निव होयै तब सूं चाहत हूं जिन मत ही है।

प्रति 'अ' में 'मत' के स्थान पर 'यही' पाठ है। यह दृष्टिभ्रम के कारण विकृत पाठ है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है कि 'पार्श्वदास मोक्ष प्राप्त पोने तक जैन मत का ही अनुयायी रहना चाहता है।'

१०.१७:३ स्वीकृत पाठ है :

मात तात सुत नांती गोती **ये सब मुतलब का पैला है।**

प्रति 'त' एवं 'न' में मोटे अक्षरों में लिखी अर्द्धपंक्ति श्रुतिदोष के कारण त्रुटित है—'ये मुतलब का सब पैला है।' 'सब' शब्द के उपयुक्त स्थान पर रहने से स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा :—'माता, पिता, पुत्र, प्रपोत्र और गोत्रिय भाई ये सभी स्वार्थ के हैं।'

११.१७:५ स्वीकृत पाठ है :

क्रोध, लोभ, छल, मान, विषय, मद, इन सेती **लषि तू** मैला है।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'लषि तू' के स्थान पर 'तू लषि' पाठ–विपर्यय है।

१२.२२:४ स्वीकृत पाठ है :

भस्मी **सुरपति मस्तग धारे** भवि जन गाये सोर सुनारे।

प्रति 'अ' में 'सुरपति' और 'मस्तक' के मध्य लिपिजन्य भूल के कारण 'सति' प्रक्षेप है।

१३.२२:६. स्वीकृत पाठ हैं :

सो उच्छव अब लू लषि पारस मुक्तिगमन श्रद्धान **धरा** रे।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'धरा रे' के स्थान पर 'धारे' विकृत पाठ है। यह लिपिकर्त्ता के दृष्टिभ्रम के कारण हुआ है।

१४,२३:१ स्वीकृत पाठ है :

तुम गरीब के निवाज मैं गरीब तेरौ।

प्रति 'त' एवं 'न' में लिपिजन्य दोष के कारण 'तुम' के स्थान पर 'जुम' शब्द का प्रयोग है।

१५.२६:६. स्वीकृत पाठ है :

इन संगि दुःख सहे बहुतेरैं रूप न जाण्यो थारो ।

प्रति 'त' एवं 'न' 'बहुतेरैं' के स्थान पर 'बहुदिन सैं' पाठ है ।

१६.२८:१ स्वीकृत पाठ है :

हां रैं भायी समझि करो मन मायी ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'रैं' के स्थान पर 'र' विकृत पाठ है । यह लिपिजन्य भूल है ।

१७.३१:५. स्वीकृत पाठ है :

भाव भक्ति सूं वीनवूं जी, म्हारो आवागमन मिटाया ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'आवागमन' के स्थान पर 'जामण मरण' पाठ है ।

१८.३६:५ स्वीकृत पाठ है :

'पारस' जिनमत सार दया लपि मुनि श्रावक सब धरते रस्यो ।

प्रति 'अ' में दृष्टिभ्रम के कारण 'मुनि' शब्द छूट गया है ।

१९.३७:८. स्वीकृत पाठ है :

जिनवर ज्ञानादिक के पाय

प्रति 'त' एवं 'न' में 'पाय' के स्थान पर 'थाय' शब्द है, जो दृष्टिभ्रम के कारण विकृत पाठ है । 'पाय' शब्द 'पायक' का अपभ्रष्ट है । ढूंढाडी भाषा में 'पायक' का अर्थ है 'सहायक' । स्वीकृत पाठ का अर्थ है-'जिनवर ज्ञान आदि के सहायक है ।' यहां 'थाय शब्द अर्थसंगत नहीं है ।

२०.३७:१३. स्वीकृत पाठ है :

जिनवाणी प्रसाद लहि राज,
ज्ञान कियो प्रभू कूं महाराज ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'लहि' के स्थान पर लिपिजन्य दोप के कारण 'तहि' शब्द प्रयुक्त

है; जो अर्थसंगत नहीं है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—'जिनवाणी की कृपा से राज्य लेकर ज्ञान ने आत्मा को महाराज बना दिया।'

२१.३८:१. स्वीकृत पाठ है :

पर कूं क्यूं अपनाया रे अज्ञानी।

प्रति 'त' एवं 'न' में लिपिजन्य भूल के कारण 'कूं' के स्थान पर केवल 'क' शेष है।

२२.३९:३. स्वीकृत पाठ है :

कौन चूक परित्यागी **मोहि कूं,**
जीव मैं अंदेसवा वहीलो रे।

प्रति 'अ' में लिपिजन्य भूल के कारण 'मोहि कूं' शब्द छूट गया है।

२३.४३:४. स्वीकृत पाठ है :

अनादि काल को **पर मैं रचि कै,** आतमरूप भुलायो।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'पर मैं रचि कै' स्थान पर 'राच्यो पर मैं' पाठ–विपर्यय है।

२४.४३:५. स्वीकृत पाठ है :

यह उपगार कियो प्रभु पारस, फेरू ज्योत वनायो।

प्रति 'अ' में प्रथम अर्द्धपंक्ति के स्थान पर 'ये उपकार सुगुरू को पारस' पाठान्तर है।

२५.४९:२. स्वीकृत पाठ है :

सुभ गति दानी है।

प्रति 'अ' में दृष्टिभ्रम के कारण 'है' के स्थान पर 'छै' शब्द प्रयुक्त है।

२६.५०:२. स्वीकृत पाठ है :

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा **मांय** निकाम,
जा मैं एकेन्द्री पंचेन्द्री अैसे भेद नहीं अभिराम।

प्रति 'अ' में 'मांय' के स्थान पर 'न्याय' पाठ है; जो यहां अर्थसंगत नहीं है। यह त्रुटि

श्रुतिदोष और दृष्टिभ्रम दोनों से ही संभव है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'(आत्मा का ऐसा चिन्तन करो) जिसमें एकेन्द्रिय, पंचेन्द्रिय के भेद न हो और जिसमें ऐसी कथनी भी बिल्कुल न हो जिसके अनुसार आत्मा कर्म का कर्त्ता अथवा भोग का भोक्ता कहा जाय।'

२७.५१:८. स्वीकृत पाठ है :

ज्यों दर्पण में विवित माम

प्रति 'अ' मे 'माम' के स्थान पर 'नाम' प्रयुक्त है; जो अर्थसगत नही है। 'मुख' के अर्थ में लेखक ने 'माम' शब्द का प्रयोग किया है।

२८.५२:५. स्वीकृत पाठ है :

वेद पढ़े देव ब्रह्म कहत है,
कर्म कहत मीमांसक ताम है।

प्रति 'त' एवं 'न' में प्रथम अर्द्धपंक्ति का विकृत पाठ इस प्रकार है—वेद पढ़े सो ब्रह्म कहत सो। स्वीकृत पाठ का अर्थ है 'वेद पढ़ने वाले अपने देव को ब्रह्म कहते हैं तथा मीमांसक कर्म।'

२९.५७:६. स्वीकृत पाठ है :

अनुभव तें आनन्द विस्तार।

प्रति 'अ' में 'बिस्तार' के स्थान पर 'विहार' प्रयुक्त है; किन्तु अपेक्षाकृत 'विस्तार' अधिक अर्थसंगत है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—(अमृतचंद सूरि के वचनों का) अनुभव करने से आनन्द की वृद्धि होती है।

३०.६३:१. स्वीकृत पाठ है :

चालो सय्यो हे नेम जो वांनी सुनावै।

प्रति 'न' में सुनावै' के बाद 'है' प्रक्षिप्त है।

३१.६५:१. स्वीकृत पाठ है :

> गयी गयी जी मिथ्या मम नींद
> लपे जिनराज सही ।

प्रति 'अ' में 'लपे' के स्थान पर विकृत पाठ 'लेपे' है, जो अर्थसंगत नहीं है ।

३२.६५:५. स्वीकृत पाठ है :

> रागादिक कछु दोष न जामैं गुण अनन्त के कोष

प्रति 'ख' एवं 'न' में 'कोष' के स्थान पर 'पांनि' पाठ-पर्याय है ।

३३.६५:८. स्वीकृत पाठ :

> पार्श्वदास जानैं जिनपति सूं तुम मम भेद न साय,
> बनी एक चाय ययी ।

प्रति 'ख' एवं 'न' में 'एक' के स्थान पर 'मम' पाठान्तर है ।

३४.६७:२. स्वीकृत पाठ है :

> मैं फेरि कहि समझावूं अब रैं सरावूं ।

प्रति 'ग' में 'रैं' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण केवल 'र' शेष है ।

३५.७१:४. स्वीकृत पाठ है :

> पारस आनन्द करै है भव जाल काटि हम रो ।

प्रति 'ख' एवं 'न' में 'हम रो' के स्थान पर 'जम रो' पाठान्तर है । यह विकृत पाठ दृष्टिभ्रम अथवा पूर्वस्मृति के प्रभाव से इन प्रतियों में पुनरावृत्त हो गया है ।

३६.७२:६. स्वीकृत पाठ है :

> या में ममत छाँड़ि कै 'पारस' सेवा भगति सजो ।

प्रति 'ख' एवं 'न' में 'सजो' के स्थान पर 'तजो' पाठ है । यह विकृत पाठ लिपिजन्य भूल के कारण संभव है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'इससे (शरीर से) ममता छोड़कर सेवा और भक्ति से सजाओ ।'

[भूमिका, पदावली : पाठ सम्पादन

३७,७४:६. स्वीकृत पाठ है :

अतिसार लिये रीति **गान** की बड़ी ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'गान' के स्थान पर श्रुतिदोष के कारण 'ज्ञान' पाठ है । सम्बन्धित पद में नृत्य और संगीत की ही चर्चा होने के कारण यह पाठ अर्थसंगत नहीं है ।

३८,७५:१. स्वीकृत पाठ है :

आयो नी मैं तेंड़े **मिंदरवा** ।

प्रति 'त' एवं 'न' में मिंदरवा के स्थान पर 'मंदरिया' पाठ है ।

३९,७५:४. स्वीकृत पाठ हैं :

सुमरण कीयां तेंड़े **गटकत** निज सूप सूझां मैं नूं तू ही शिवदायीलो ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'गटकत' के स्थान पर 'गत' पाठ है; जो लिपिजन्य भूल के कारण त्रुटित है । 'गत' पाठ सम्बन्धित पद में अर्थसंगत नहीं है ।

४०,७८:६. स्वीकृत पाठ है :

जड़ प्रवृत्ति तैं शिव नहीं होंहैं **परमारथ** किम पानां ।

झांकत रहु परमारथ मावूं यूं व्यवहार प्रमानां ।

प्रति 'न' में 'परमारथ' के स्थान पर 'परसारथ' पाठ है। उक्त पंक्तियों में मोक्ष-प्राप्ति पर अधिक बल दिए जाने के कारण ही मूल पाठ 'परमारथ' ही प्रतीत होता है ।

४१,७८:१२. स्वीकृत पाठ है :

पार्श्वदास अध्यातम समुझो जिम होवै **सुरझाना**

प्रति 'अ' में 'सुरझाना' के स्थान पर 'समुझाना' प्रयुक्त है । यह लिपिजन्य भूल है । स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा —हे पार्श्वदास ! अध्यात्म को समझो, जिससे (भवबंधन से) छुटकारा मिले ।

४२,७६:६. स्वीकृत पाठ है :

पशु पंछी लहि सरन भये सुर, क्यों न लहै सम्यक्त सहित नर मुक्ति गमन को ।

प्रति 'न' में 'सम्यक्त' के स्थान पर 'श्रद्धान' पाठ है ।

४३,८०:५. स्वीकृत पाठ है :

विष एकान्त मूढ़ या **जिव** कूं स्यातपद मीठो अमृत पावै ।

'जिव' के स्थान पर प्रति 'अ' और 'त' में क्रमशः 'जीव' और 'जिन' पाठ हैं, जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुए हैं ।

४४,८२:६. स्वीकृत पाठ है :

हित अनहित को भेद भयो अब होसी क्यों न **उधारा** ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'उधारा' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'उघारा' पाठ है; जो अर्थ संगत नहीं है ।

४५,८६:२. स्वीकृत पाठ हे :

ईंद्र नरेंद्र फनेंद्र नमत निति, मुनि जन **निज** चित धारी ।

प्रति 'त' एवं 'न' में निज के स्थान पर 'नित' पाठ है ।

४६,८६:१. स्वीकृत पाठ है :

अब मेरै पारस नाथ **सहायी** ।

प्रपि 'अ' एवं 'त' में सहायी के स्थान पर दृष्टिभ्रम के कारण 'सदायी' पाठ है ।

४७,८६:८. स्वीकृत पाठ है :

जबलग वसुविधि नास करूं मैं, तब लग **करहु** सुनाई ।

प्रति 'अ' में 'करहु' के स्थान पर 'कसहु' पाठ है; जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ है ।

४८,६६:२. स्वीकृत पाठ है :

गंगा जमनां और **सुरसती**, तिरवेणी गिरिधामा ।

प्रति 'न' में लिपिजन्य भूल के कारण 'सुरसती' के स्थान पर 'सुरती' पाठ है; जो निरर्थक है ।

४६,६६:१. स्वीकृत पाठ है :

करि लैं जिया मैं तू सांचो ही सुमरन ।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'मैं तू' के स्थान पर 'म नु' पाठ है, जो लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ है ।

५०,२००:५. स्वीकृत पाठ है :

पारस चरण सरण गहि जाचत प्राप्ति दीजिये मो घन की ।

प्रति 'त' एवं 'न- में 'जाचत' के स्थान पर 'चाहत' पाठ है; किन्तु कवि की दास्य-भावना के अनुसार 'जाचत' पाठ ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है ।

५१,१०२:४. स्वीकृत पाठ है :

पायी सफल होत मानुष गतियां,
राजादिक सेवतु हैं जातियां ।

प्रति 'अ' में दूसरी अर्द्ध पंक्ति में 'राजादिक' के स्थान पर दृष्टिभ्रम से 'रारादिक' पाठ हो गया है; जो अर्थसंगत नहीं है ।

५२,१०५:२. स्वीकृत पाठ है :

सप्त तत्व नव पदार्थ छह्र द्रव्य कूं यथार्थ,
जानि कैं पिछाने जीव, पुद्गल इम घुलिहै ।

प्रति 'त' एव 'न' में प्रथम पक्ति के 'कूं' के स्थान पर 'तैं' पाठ है; जो लिपिजन्य भूल के कारण हुआ है ।

५३,१०४:६ स्वीकृत पाठ है :

पिय के संगि अब हूंगी अरजिका तप तपनें में होत जिया ।

प्रति 'त' एवं 'न' में इसका पाठान्तर इस प्रकार है-पिया के संग मैं रहूं अरजिका, तप तपनें में रहत जिया ।'

५४,१०६:६ स्वीकृत पाठ है :

चेतनां स्वरूप रूप सकल तैं अनूप भूप ।

प्रति अ में 'रूप' के स्थान पर 'भूप' पाठ है। इस प्रति में श्रुतिदोष के कारण 'भूप' शब्द की पुनरावृत्ति हो गई है। स्वीकृत पाठ का अर्थ होगा—'हे भव्य ! तुम्हारा रूप चेतनास्वरूप है; अतः तुम सांसारिक व वस्तुओं से भिन्न आत्मराज हो।'

५५,१११:८ स्वीकृत पाठ है :

भव वन में जिन पार्श्व सहायी, हां रे गहि लीजे रे सरणं शिवदाय।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश के स्थान पर 'सरणो इक जिन पार्श्व सहायी' पाठान्तर है।

५६,११२:२ स्वीकृत पाठ है :

अष्ट करम मोहे भव भव मांही, पर सुख **साटै** रंक बनायो।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'साटै' के स्थान पर 'आटै' शब्द प्रयुक्त है। ढूंढाडी भाषा में 'आटै' शब्द का प्रयोग 'साटै' शब्द के साथ ही होने के कारण 'आटै' शब्द का स्वतंत्र प्रयोग अशुद्ध है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—जन्म जन्मान्तरों में दूसरों के सुखों की चिन्ता करते रहने के परिणामस्वरूप अष्टकर्मों ने मुझे रंक बना दिया।'

५७,११५:४ स्वीकृत पाठ है :

मानुष भव मैं दुष **दलद्र** के रोग सोक विललाया।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'दलद्र' के स्थान पर 'दरिद्र' प्रयुक्त है। ढूंढाड़ी में ब्रजभाषा का 'दरिद्र' 'दलद्र' रूप में ही उच्चरित होता है; अतः 'दलद्र' अधिक संगत पाठ है।

५८,११७:२ स्वीकृत पाठ है :

जा मैं रोग रोस नहिं किंचित, **तनु** वच सरलु दयाल।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'तनु' के स्थान पर 'तन' पाठान्तर है। सम्बन्धित पद में जिनेन्द्र की शान्त एवं सौम्य मुद्रा का वर्णन होने के कारण 'तनु' पाठ प्रासंगिक है। स्वीकृत पाठ में 'तनु' 'वच' के विशेषण के रूप में प्रयुक्त हुआ है।

५९,१२२:४ स्वीकृत पाठ है :

पारस इम कहि रजमति तप करि सुरपति भई विधि जीति।

प्रति 'त' में सम्पूर्ण पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है :—पारस इम लपि रजमति तप धरि सुर भयी है विधि जीति।

६०,१२४:२ स्वीकृत पाठ है :

अति दुल्लभ नर जन्म पाय कै विपयन में कहा चित्त दीया।

प्रति 'अ' में 'नर जन्म' के स्थान पर 'जिन धर्म' पाठान्तर है।

६१,१२४:४ स्वीकृत पाठ है :

पारस पाय जोय यह नीको, जपि करिल्यो शुद्ध हिया।

प्रति 'अ' में 'जपि' के स्थान पर 'भजि' पाठ है। दृष्टिभ्रम के कारण पूर्ववर्ती पंक्ति के 'भजि' शब्द की पुनरावृत्ति होगई है।

६२,१२६:३. स्वीकृत पाठ है :

एकहि चक्रवर्ति सुख भोगं एकहि हस्तकपाल।

प्रति 'त' में सम्पूर्ण पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है:—एकहि चक्रवर्ति तीर्थंकर इक दुप भोगै वाल।

६३,१२६:७. स्वीकृत पाठ है :

पास मुक्ति होय तब एकहि, झूंठा सब ख्याल।

प्रति 'त' में सम्पूर्ण पंक्ति का पाठान्तर यह है:—

"पारस शिव पावै तव एकहि झूंठा जग जंजाल।

सम्बन्धित पद में 'जंजाल' शब्द अन्त्यानुप्रास के रूप में पूर्ववर्ती पंक्ति में आया है। प्रति 'त' में दृष्टिदोष के कारण इसकी पुनरावृत्ति हुई है।

६४.१३६:५. स्वीकृत पाठ है :

पार्श्व तुम धारि उर मांय मय नांस करि, शिव लहू इतै करि गौरी मेरी।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ-विपर्यय इस प्रकार है—"करि इतै गौरि मेरी'।

६१ .१३६:२. स्वीकृत पाठ है —

अरज ये ही उर मानि लै।

प्रति 'अ' में 'अरज के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'अर' अशुद्ध पाठ मिलता है ।

६६,१३६:६. स्वीकृत पाठ है :

जिनके नाम सुनि पारस उधरे फिर न **भयो** दुख ल्हेस।

प्रति 'त' में 'भयो' के स्थान पर 'लह्यो' पाठ पर्याय है ।

६७,१४४:४. स्वीकृत पाठ है :

पांच पाप औपाधिक दुख दे इनकूं **काहि** गहे छै।

प्रति 'त' में 'काहि' के स्थान पर 'गाहि' पाठ है; जो लिपिजन्य भूल है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है कि "पांच पाप औपाधिक दुःख देते हैं इन्हें तुम क्यों ग्रहण करते हो"

६८,१४४:५. स्वीकृत पाठ है :

इंद्री पांच कषाय पचीसूं ये परजनित **लिषै** छै।

प्रति 'त' एवं 'न' में लिषै' के स्थान पर श्रुतिदोष के कारण 'लखे' पाठ है; जो अर्थ-संगत नहीं है।

६९,१४४:६. स्वीकृत पाठ है :

जा मैं पाप कसायन दीसै, सुख को नाहीं **छेह** है।

अविनाशी चिद्रूपी 'पारस', काहे आन नमैं छै।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'छेह' के स्थान श्रुतिदोष के कारण 'छे' अशुद्ध पाठ है।

७०,१४५:६. स्वीकृत पाठ है :

गुप्ति तीनूं धरै निति अरि मित्र समताई।

प्रति 'अ' में लिपिजन्य भूल के कारण 'गुप्ति' के स्थान पर 'गुप्त' पाठ है; जो अर्थ-

संगत नहीं है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है : '(साधु) तीन गुप्तियां धारण करते हैं एवं शत्रु तथा मित्र में समता भाव रखते हैं।"

७१,१४६:६. स्वीकृत पाठ है :

मरण समैं जिन नाम धारि उर स्वान स्वर्ग सुप थायो रे।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'थायो के स्थान पर 'पायो' पाठ-पर्याय है।

७२,१४७:५. स्वीकृत पाठ है :

कुमति संग भव दुप भोगे, वहु नारक भये हो कुमावां।

प्रति 'अ' में 'भव' के स्थान पर 'वहु' पाठान्तर है।

७३,१४६:१. स्वीकृत पाठ है :

दिढ़ता अपनाई अब मैं जिनराज चरन की शरन मैं।

प्रति 'त' में इस पंक्ति का पाठान्तर इस प्रकार है : 'जिनराज चरन की सरन मैं दृढ़ता अपनायी।

७४,१५०:३. स्वीकृत पाठ है :

चौंतीमूं अतिसै जुत सोहै, भव्यनि को सुषदायी।

प्रति 'अ' में 'भव्यनि को सुपदायी' के स्थान पर 'सब जीवन सुखदाई' पाठ-पर्याय है।

७५,१५०:५. स्वीकृत पाठ है :

जा का तन की छवि कूं निरखत कोटि भान हू लजायी।

प्रति 'अ' में श्रुतिदोष के कारण 'हू लजायी' के स्थान पर 'हुलसाई' पाठ है; जो प्रासंगिक नहीं है। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'जिसकी (जिनेन्द्रकी) छवि को देखकर करोड़ों सूर्य लज्जित होते हैं।"

७६,१५१:२. स्वीकृत पाठ है :

नाभिराय मोरादेवी सुत प्रगट भये जगमांयी।

प्रति 'त' एवं 'न' में लिपिजन्य भूल के कारण 'जगमांयी' के स्थान पर विकृत पाठ 'जुगमांयी' है।

७७,१५१:६. स्वीकृत पाठ है :

सुरपति फणपति नरपति पूजै, इक निज पद की चायी।

मोटे अक्षरों में छपे पाठ के स्थान पर प्रति 'त' में यह पाठान्तर है—'सुरपति नरपति षगपति पूजै'।

७८,१५१:८. स्वीकृत पाठ है :

सिव संकर हरि ब्रह्मा जिनपति, वुद्ध **वेद** श्री घुमांयी।

प्रति 'श्र' में 'वेद' शब्द के स्थान पर 'वंद' प्रयुक्त है; जो अर्थसंगत नहीं है।

७९,१५२:६. स्वीकृत पाठ है :

बीतराग सर्वज्ञ जिनोत्तम, भव्यनि कूं **शिवदायी**।

'त' एवं 'न' प्रतियों में 'शिवदायी' के स्थान पर 'सुपदायी' पाठ है। सम्बन्वित पद में अन्त्यानुप्रास के रूप में एक पूर्ववर्ती पंक्ति में प्रयुक्त हो जाने के कारण यह शब्द पुनरुल्लिखित नहीं कहा जा सकता।

८०,१५६:३. स्वीकृत हाठ है :

विषय **षीष** साटै मति षोवै, फिर पीछैं पछितायी।

'त' और 'न' प्रतियों में 'षीष' के स्थान पर विकृति पाठ 'षाप' मिलता है। विकृत का कारण लिपिजन्य भूल है। 'षीस' (खीस) ढूंढाडी का देशज शब्द है; जिसका अर्थ है :—गाय या भैंस के ब्याने पर उनके थनों से निकला हुआ पहला दूध; जिसे मनुष्य पीने के काम में नहीं लेता।

८१,१५७:५, स्वीकृत पाठ है :

ये तो जन्म **वृथा ही षोयो**, निज पिछाणि नैं भई रे।

प्रति 'श्र' में 'वृथा ही षोयो' के स्थान पर 'विषयनि मैं खोयो' पाठान्तर है। सम्बन्धित

पद में पञ्चेन्द्रिय-विषयों की चर्चा पहले ही हो जाने के कारण यह पाठ शुद्ध नहीं माना जा सकता।

८२,१५८:२. स्वीकृत पाठ है :

सपरस रस ग्रौर गंध वरण गुण पुद्गल की परणाई रे।

प्रति 'अ' 'वरण' के स्थान पर 'वरुण' पाठ है। इसकी विकृति का कारण श्रुतिदोष ग्रौर लिपिजन्य भूल दोनों ही हो सकते हैं। स्वीकृत पाठ का अर्थ है—'स्पर्श, रस, गंध, वर्ण ग्रौर गुण पुद्गल की परिणति है।'

८३,१५९:१. स्वीकृत पाठ है :

देषो री नेमीस्वर स्वामी वंदड़ा वनि कै ग्राया है री।

प्रति 'त' में 'वंदड़ा वनि कै' के स्थान पर 'द्वारै मेरै' पाठान्तर है।

८४,१६०:३. स्वीकृत पाठ है :

तृष्णावसि होय जग भटक्यो, मैं झूंठा मोह को मारो।

प्रति 'अ' मे 'भटक्यो' के स्थान पर 'भरम्यो' पाठ है।

८५,१६३:७. स्वीकृत पाठ है :

थांनै ज्ञानमयी ढोलियो पोड़ावस्यां जी।

प्रति 'त' में 'पोडावस्यां' के स्थान पर 'सुवाणस्यां' पाठ-पर्याय है। 'पोड़ावणो' ग्रौर 'सुवाणो' दोनों ही क्रियायें सुलाने के अर्थ में प्रयुक्त होती है। किन्तु 'पोड़ावणों' में सम्मान की भावना निहित होन के कारण 'पोड़ावस्यां' पाठ ही प्रासंगिक है।

८६,१६३:१०. स्वीकृत पाठ है :

थांनै मुकति पियारी परणावस्यां जी,
पारसदास नूं कारिज सारवानै।

प्रति 'त' एव 'न' में 'कारिज सारवानै' के स्थान पर 'काज सुधारवानै' पाठ-पर्याय है।

८७,१६५:३. स्वीकृत पाठ है :

ग्रंजन ग्रादिक ग्रधम उधारे, वारिषेण दुष टारी।

मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ-पर्याय प्रति 'त' में यह है—'नीच उबारे।

८८,१६५:४. स्वीकृत पाठ है :

पारस मन वच तन करि सुमरै, **क्यूं न वरै सिव नारी।**

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ पर्याय 'ते पावै शिव प्यारी है।

८९,१६६:५. स्वीकृत पाठ है :

पर प्रसंग तैं निज गुण भूले, **निज गुण रति विन वाल।**

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ 'निज गुण वाल' है। इस विकृत पाठ को मान लेने पर भी पद की सम्पूर्ण पंक्ति का कोई आशय प्रकट नहीं होता। लिपि-कर्त्ता की असावधानी के कारण प्रति 'त' में 'रति विन' शब्दों का उल्लेख नहीं हो सका है।

९०,१७१:१. स्वीकृत पाठ है :

जिनंद विन कैसैं कटै भव ततियां।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'जिनंद' स्थान पर 'जिन' पाठ-पर्याय है।

९१,१७३:२. स्वीकृत पाठ है :

रागी होय सहे चहु गति दुष राग **घट्यां** सुष पास्यां जी।

प्रति 'त' एवं 'न' में 'घट्यां' के स्थान पर 'हट्यां' पाठ-पर्याय है।

९२,१७३:३ स्वीकृत पाठ है :

राजा मिट्या होय संवर निरजरा, पारस '**शिवपुर**' जास्या जी।

प्रति 'अ' में 'शिवपुर' के स्थान पर शिवघर 'पाठ-पर्याय' है।

९३,१७९:७. स्वीकृत पाठ है :

पारस सद्गुरू जोग तैं पायो सम्यक ज्ञान।

घरिहू मैं उर कोस मैं, **करियो** परमान।

प्रति 'अ' में 'करियो' के स्थान पर लिपिजन्य भूल के कारण 'घरियो' पाठ हो गया है; जो अर्थसंगत नहीं है।

९४,१८१:१. स्वीकृत पाठ है :

रजमति पति नेम के वंदू पाय ।

प्रति 'त' में 'नेम के' के स्थान पर 'नेम प्रभु' पाठ है ।

९५,१८३:१. स्वीकृत पाठ है :

किए रे सैनाएँ प्रभुजी नै हे हो जी,

श्रो लपां जो म्हांका राजि ।

प्रति 'त' में 'सैनाएँ' के स्थान पर प्रयुक्त 'सानाएँ' शब्द प्रचलित और अर्थसंगत नहीं है ।

९६,१८५:१. स्वीकृत पाठ है :

अब तो घर आवो स्वामी तुम बिन बेहाल है ।

प्रति 'म' में मोटे अक्षरों छपे अंश का पाठान्तर 'अपनी निधि भाल है' है । सम्बन्धित पद के अन्तिम चरण में इस अर्द्ध पंक्ति का उल्लेख होने के कारण टेक-पंक्ति में भी इसकी विद्यमानता श्रुतिदोष-जन्य भूल प्रतीत होती है ।

९७,१८६:१. स्वीकृत पाठ है :

सजन तुम झूंठ मति बोलो, प्रभू कूं साच प्यारा है ।

प्रति 'म' में 'प्रभू' के स्थान पर 'मयां' पाठ है ।

९८,१८६:३. स्वीकृत पाठ है :

धरम कूं सूचता नांयो, तजो मवि झूंठ दुखदायो ।

प्रति 'त' में 'सूचता' के स्थान पर 'सूझता' पाठ है ।

९९,१८८:४. स्वीकृत पाठ है :

रसना लोलुप है जल मीना, काढ़ै प्रानं गुमायो ।

प्रति 'म' में 'काढ़ै' के स्थान पर 'काहे' पाठ है । पाठ-विकृति का कारण लिपिजन्य भ्रम है । 'काढ़ै' शब्द का अर्थ है 'निकालने पर' । प्रसंग की दृष्टि में 'काढ़ै' पाठ ही अर्थसङ्गत है ।

१००,१८६:१. स्वीकृत पाठ है :

सतगुरु नै **सांचो** उपदेस दीयो, ताय गह्यो पावो सुभ गतिया ।

प्रति 'अ' में 'सांचो' के स्थान पर 'सम्यक' पाठ-पर्याय है ।

१०१,१६१:४. स्वीकृत पाठ है :

अनंत ज्ञान लक्ष्मी के सागर, **परमातम** सुख वारो ।

प्रति 'अ' में 'परमातम' के स्थान पर 'परमामृत' विकृत पाठ है । यह लिपिजन्य भूल श्रुतिदोष से भी सम्भव हो सकती है । स्वीकृत पाठ का अर्थ है—हे सांवरिया ! (नेमिनाथ जी) तुम अनन्त ज्ञान एवं अनन्त सौंदर्य के सागर हो; परम आत्मा तथा सुख सम्पन्न हो '

१०२,१६२:२. स्वीकृत पाठ है :

मोह करम वसि हित नहिं **पेख्यो**, मथ्या मारिग रीज्यो ।

प्रति 'अ' में 'पेख्यो' के स्थान पर 'समझ्यो' पाठ-पर्याय है ।

१०३,१६२:४. स्वीकृत पाठ है :

और न भावूं तुम ढिग चाहूं, मोकूं तुम सो कीज्यो ।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठ-विपर्यय है :—तुम ढिग चाहूं और न भावूं ।

१०४,१६३:२. स्वीकृत पाठ है :—

अनादिकाल तैं ना **जान्यां** हम, कैसा देवत मजना ।

प्रति 'अ' में 'जान्या' के स्थान पर 'समझे' पाठान्तर है ।

१०५,१६६:८. स्वीकृत पाठ है :

पर तिय राच्या रावण भूपति, **दोजग** मैं दुष पायो छै ।

प्रति 'अ' एवं 'त' दोनों ही प्रतियों में 'दोजग' के स्थान पर 'दोजुग' विकृत पाठ है । यह पाठ लिपिजन्य भूल के कारण विकृत हुआ ।

१०६,१९७:५. स्वीकृत पाठ है :

पार्श्वदास पिय के रंग रचि कै संगि रहूँगो **विजन** मै ।

प्रति 'त' में 'विजन' के स्थान पर 'विपन' पाठ है ।

१०७,१९८:४. स्वीकृत पाठ है :

कृपा **धारि** त्यारो प्रभु 'पारस' अरज करत हूं कोन वर को ।

प्रति 'त' में 'धारि' के स्थान पर 'राषि' पाठ-पर्याय है ।

१०८,१९९:२. स्वीकृत पाठ है :

चोहा चदन और **अरगजा** पिचकारन भर लायो ।

प्रति 'अ' में 'अरगजा' के स्थान पर श्रुतिदोष के कारण 'अरकचा' पाठ हो गया है ।

१०९,२००:२. स्वीकृत पाठ है :

मो सैं प्रीति प्रभू जी नैं तोरी,

ए हो ना जानूं **विलमायो** कोंन ।

प्रति 'त' में 'विलमायो' के स्थान पर 'भरमायो' पाठ है ।

११०,२०२:७. स्वीकृत पाठ है :

पार्श्वदास दसवां भी भव मैं **कीनी तपस्या लारी** ।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठान्तर इस प्रकार है–'सङ्ग तपस्या धारी।'

१११,२०७:१. स्वीकृत पाठ है :

निज रूप निहारा, **भया उर मांय उजारा** ।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश का पाठान्तर है—असम सुप उपज्या भारा ।

११२,२०८:४. स्वीकृत पाठ है :

वन मैं जाय **ध्याय** सिद्धनि कूं, परिग्रह पटक्यो री ।

प्रति 'अ' में 'ध्याय' के स्थान पर 'नाय' पाठान्तर है ।

११३,२०९:६. स्वीकृत पाठ है :

चेति फेरि कव अवसर, जम तोय **जोवै** रै ।

प्रति 'अ' में दृष्टिभ्रम के कारण 'जोवै' के स्थान पर 'तोवै' विकृत पाठ हो गया है ।

'प्रति 'त' एवं 'न' में मोटे अक्षरों में छपे 'अंश के स्थान पर 'भावनि सहित ते' पाठान्तर है।

१३०,२८९:१५. स्वीकृत पाठ है।

पारस **पक्ष छाड़ि करि** परष्या, परषै सार असारा।

प्रति 'अ' में मोटे अक्षरों में छपे अंश के स्थान पर 'पक्षपात धरि' पाठ है; जो प्रतिकूल अर्थ का द्योतक होने के कारण अशुद्ध है।

१३१,२:५. स्वीकृत पाठ है :

पारस निज परणति गही, **चनमूरति** जोयी।

प्रति 'अ' में 'चनमूरति' के स्थान पर 'मूरति' पाठ है। यह पाठ अर्थसंगत नहीं है।

१३२,८:५. स्वीकृत पाठ है :

पारस कूं सेवा फल दीजे, एक समाधि **दरसायी**।

प्रति 'अ' में 'दरसायी' के स्थान पर दृष्टिभ्रम के कारण 'दसायी' अशुद्ध पाठ है।

१३३,२१:७. स्वीकृत पाठ है :

पारस दृढ़ श्रद्धा **धरि भजिहै** क्यूं नहि मुक्ति वरै।

प्रति 'न' में 'धरि भजि है' के स्थान पर 'भजि तोकूं' पाठ है।

१३४,४:१९. स्वीकृत पाठ है :

पारस या तैं ही **संत शिव जोई**।

प्रति 'त' में मोटे अक्षरों में छपे अंश के स्थान पर 'मुक्ति अवलोई जी' पाठान्तर है।

—:o:—

पार्श्वदास पदावली

भैरूं रामकली षट ललित रु आसावरी टोडी भैरवी ।
ता पीछैं जु विलावल सारङ्ग धनासरी की सोहै छवी ।
पूर्वी चैती गौड़ी गौड़ी ईमन भोपाली केदार ।
हमीर काफी और खमावच झंझोटी जगलो गुणधार ।
अडाणों कानड़ों रू सोरठ विहाग परज कालिगड़ों जानि ।
सोहनीं मालकोस विभास सिंदूर्‌यो इत्यादिक उर आनि ।
इत्यादिक रागान मैं कीनें पद सब लिख देहूं या मांय ।
वांचो पढो पढावो भविजन, यूं पीठिका रची सुखदाय ।

—पार्श्वदास

तीर्थंकर पार्श्वनाथ



पार्श्वदास के आराध्य देव

राग भैंरू

(१)

अरहंतं भज[1] शिवदातारं, नाशित मिथ्यातिमिरमपारं ।।टेक।।
इष्टमभीष्ट सौख्यकृच्छिष्टमनिष्टहरं, संत्रासितमारं ।।१।।
त्रभुवनेशनुत पदमभिवंद्य, नाशित दुःखं जगदाधारं ।।२।।
स्यात्पदचिन्हितमतिगंभीरं, मतं[2] देशितं येन सुसारं ।।३।।
चिन्तामणिं कल्पतरुमपरं, भक्तया पार्श्वदास त्रातारं ।।४।।

(२)

जिन[1] जगदाधार[2]
तारय मां त्वरितं ।
घोर भवाटवी नाशन पावक, ज्ञायक त्रभुवन सार ।।१।।
काय वाग्मन सांस्थितिरस्तु त्वयिनो पक्षीवत् मार ।।२।।
सुर नर फणपति वृंद नमित पद, निज सुख रत्नागार ।।३।।
त्रभुवनार्तिहर मम दुःखं हर, पार्श्व जिन पस्वाचार ।।४।।

---

१ : १. प्रति 'अ'—भजि । २. प्रति 'अ'—मत्तं ।

२ : १. प्रति 'अ'—श्री जिन । २. प्रति 'अ'—जगदाधा ।

राग भैरू

(३)

ध्यान धरो परमातम को वहरातम भाव विसारो ।

वहरातम[1] होय भव दुष भोगे, लह्यो नहीं पद थारो ॥१॥
अव अवसर सहजां ही पायो, करो स्व पर निरधारो ॥२॥
आनंदकंद चिदातम आतम, सो अव क्यों न निहारो ॥३॥
रतन त्रय दृढ धारि भविक ज्यो, विनसैं भव दुपकारो ॥४॥
अंतरातमां[2] होय कै पारस, शुद्ध ध्यान जव धारो ॥५॥
निश्चै शिव पावो अविनासी,[3] जामरण[4] मरण विडारो ॥६॥

भैरू

(४)

आदीश्वर तोहे पूजन आयो, मन वच तन सुचि धार हो ॥टेक॥
जल चंदन अक्षत जो अनोपम, पुष्प चरू सुमिलार[2] हो ॥१॥
दीप दसांग[3] धूप फल उत्तम, अर्ध करूं सुपकार हो ॥२॥
झालरि घंटा झांझि मजीरा, भेरि[4] दुंदुभी लार हो ॥३॥
वाजा बजावत अर्ध चढ़ावत, ल्यूं नरभव फल सार हो ॥४॥
या वय मैं जप तप व्रत दुद्धर, कहा करै दुषहार[5] हो ॥५॥
या तैं पार्श्वदास पद पूजत, कीजे भवदधि पार हो ॥६॥

---

३ : १. प्रति 'अ'—वहिरातम । २. प्रति 'अ'—अन्तरातमा ।
३. प्रति 'अ'—अविनाशी । ४. प्रति 'अ'—जा ।

४ : १. प्रति 'अ'—धारिहो । २. प्रति 'त' एवं 'न'—सुखिलार ।
३. प्रति 'अ'—दशांग । ४. प्रति 'अ'—भरी ।
५. प्रति 'अ'—दुखहारं ।

(५)*

भोर भयो मन वच तन करि, श्री जिन चरणों[१] चित ल्यावो ॥टेक॥
सेज त्यागि[२] करि अंग सुद्धता, विधि तैं द्रव्य वनावो[३] ॥१॥
जल चंदन कूं आदि लेय कैं, जिन पद पूज रचावो ॥२॥
पूजा करो देव गुरु जन की,[४] च्यार[५] भावनां भावो ॥३॥
तप संजम कूं धारि भविक जू,[६] भव भव पाप नसावो ॥४॥
वांनी सुनों दिगंवर गुरु की, उर मैं अरथ जचावो ॥५॥
दान च्यार[७] विधि देय भक्ति तैं, दुःषित[८] कूं[९] रांझावो
आनंद कंद चिदानंद[१०] आतम के गुण, क्यूं[११] नहिं ध्यावो[१२] ॥६॥
पट उपदेस धारि दृढ पारस, ज्यूं[१३] सिव[१४] के सुप पावो ॥७॥

राग भैंरू

(६)

अरज करूं सो सुणों[१] दयानिधि भव दुख किंम मिटि जैहै ॥टेक॥
अभयदान और अन्न औषधी ज्ञान दान न बनैहै[२] ॥१॥

---

५ : *प्रति 'अ' में यह पद "आदीश्वर तोहे पूजन आयो" पद से पहले है।
१. प्रति 'अ'—चरणा।
२. प्रति 'अ'—त्याग।
३. प्रति 'त' व 'न'—बनायो।
४. प्रति 'अ'—वानी
५, ७. प्रति 'अ' च्यारि।
६. प्रति 'अ'—भव्य जू
८. प्रति 'अ'—दुःखित।
९. प्रति 'अ'—रजिमावो।
१०. प्रति 'अ'—चिदानद।
११. प्रति 'अ'—क्यों।
१२. प्रति 'त' व 'न'—धारो।
१३. प्रति 'अ'—ज्यों।
१४. प्रति 'त' एवं 'न'—शिव'।

सुगम वरत[3] श्रावक के द्वादस सोहू मन न चहैहै ॥२॥
पार्श्वदास चरणां[4] रो किंकर, रुचि करि गुण उचरैहै ॥३॥

राग भैंरू

(७)

जैं जैन बानी, जगत को तरानी, परम सुंदरी तिहूं जग जानी ॥१॥
पाताल के फैंनी, पृथ्वी मंडल के गुनी, सुरवास मानीं ॥२॥
सम्यज्ञान[1] को षनीं भूमंडल मैं[2] मनी, स्वावास थांनीं ॥३॥
सुषदाता तू गिनीं, पारस ध्यायां अघ हनीं, उर त्रिचि[4] आनीं ॥४॥

राग भैंरू

(८)

कब असा दिन आवैगा ।
मैं ही ज्ञान ज्ञेय ज्ञायक मैं दूजा दृष्टि न थावैगा ॥१॥
भावक भाव्याभाव मैं तीनूं एक चेतन लव लावैगा ॥२॥
घर मैं वा बन मैं इकंत होय, नासा दृष्टि लगावैगा ॥३॥
पंचेन्द्रिय मन रोकि ध्यान धरि, अपनां अलष[1] जगावैगा ॥४॥
करता करम छवूं[2] हो कारक ज्ञान ही परणति पावैगा ॥५॥
मैं ही गुणी और गुण मैं हो इक भेद विभाव नसावैगा ॥६॥

---

६ : १. प्रति 'अ'—सुनो । २. प्रति 'अ'—वनैहै ।
३. प्रति 'अ'—वरत । ४. प्रति 'अ'—चरणा ।

७ : १. प्रति 'अ' – सम्यकज्ञान । २. प्रति 'अ' – मं ।
३. प्रति 'अ'—हनीं । ४. विच ।

मैं ही आसिक और मैभूपा, मैं गुर[3] ज्ञान सिखावैगा ॥७॥
मैं ही सिस्य[4] सीष मैं ही फुनि नय प्रमाण न कहावैगा ॥८॥
मैं ही ध्याता ध्यान ध्येय मैं, धर्मी धरम न कहावैगा ॥९॥
यूं अद्वैत भाव मय थावे 'पारस' तव सुष पावैगा ॥१०॥

चौतालो

(९)

प्रथम मणी[1] उंकार[2] देवन मणि जिनदेव
ज्ञान मणि सम्यक्त वेद आदि ब्रह्मा ॥टेक॥
विद्यामणि सरस्वती तरुमणि अंभा
साजन मणि मिरदंग भक्तमणि रंभा ॥१॥
गीत को संगीत मणि संगीत को सुर मणि[4]
सुर को अक्षर जैन काटै कर्मफंदा ॥२॥
कहत जैन आगम मैं सुनि लेहो[5] पार्श्वदास,
वादीमणी संमतभद्र स्यादवाद चंदा ॥३॥

(१०)

तुम सुष[1] करण भव दुष[2] हरण सुंदर वरण हो जिननाथ ॥टेक॥
भव समुद्र अथाह त्यारो, पकड़ि मेरो हाथ ॥१॥

---

८ : १. प्रति 'अ'—अलख । २. प्रति 'अ'—ह्वू ।
३. प्रति 'अ'—गुरु । ४. प्रति 'अ'—शिष्य ।
५. प्रति 'त' और 'न' में अन्तिम दो पंक्तियां पहले और उससे ऊपर की दो पंक्तियां बाद में हैं ।

९ : १–२. प्रति 'अ' – मणिउंकार ३. प्रति 'त' और 'न' में 'देवन' से पहिले अतिरिक्त शब्द देव भी है ।
४. 'अ' प्रति में 'मणि' शब्द का लोप ।
५. 'अ' प्रति—लैहों ।

टेर सुनि नहिं वेर कीजे, जोय मोय अनाथ ॥२॥
पार्श्वदास सकास बिनवू[3] राषि निज करि साथ ॥३॥

(११)

परमारथ[1] जानि गहौ अध्यातम सैली ।
स्वपर तत्त्व दरसावक मुक्ति नगर गैली ॥टेक॥
देव धर्म गुरू पिछाणि, उपादेय हेय जाणि,
या ही तैं[2] होत सुधी या विन मति मैली ॥१॥
ज्ञान को उद्योत होत परम जोति प्रगट होत,
वाह्य दृष्टि घटत मांय ज्ञान कला फैली ॥२॥
जड़ चेतन भिन्न लषै,[3] असे जु विवेक रषै,
परषै[4] गुण आतमोकं[5] निरषै निज थैली ॥३॥
या कलि मैं दुल्लभ यह जोग मिल्यों सुलभ जिनैं,
पारस तिनकै सुमुक्ति निज तिय सम ह्वै ली ॥४॥

(१२)

चेतन अनभव[1] बिचारि[2] देषो[3] उरमांयी,
मूढ़ हुये व्रथा भ्रमो[4] माया कैं तांयी ।
आये कोंन[5] गति सैं और जावोगे कहांयी,
तुम माया नहीं लार लगे, रहेगी इहांयी ।

---

१० : १. 'अ' प्रति—सुख । २. 'अ' प्रति—दुख ।
३. 'त' प्रति—विनवूं । 'अ' प्रति—विनकूं ।

११ : १. 'अ' प्रति—परमातम । २. 'त' प्रति—तै ।
३. 'अ' प्रति—लषैं । ४. प्रति 'न'—परष ।
५. 'अ' प्रति—आतमीक ।

]

नाहिं मिले[6] जाति पांति नांहि मिलै रीति भांति,
परकूं नाहक श्रागेजि वृथा कुगति पायी।
सम्यक[7] गुरु देसनां, विचारि[2] ग वेसना[8],
पारस[9] निज ज्ञान संपदा, सम्हारि भायी।

(१३)

एरे मन मेरे तू घनेरे सुप चाहै तौ,
जै जिनेंद जै जिनेंद जै जिनेंद कहु[1] रे ।।टेक।।
जोवक तैं नाम मंत्र सुनि कैं सुर भयो स्वान,
तू मति भूले जिनेंद भजि कैं[2] सुख लहुरे ।।१।।
श्रंजन से चोर तिरे नाम मंत्र[3] के प्रताप,
श्रैसो सुनिहैं प्रभाव, तू भी दृढ़ गहु रे ।।२।।
तिरजंच सुर मिनप रटे, तिनकै[4] भव जाल कटै
'पारस' मनुज जन्म पाय, चरण सरण गहु रे ।।३।।

राग भैंरू

(१४)

भोर भयो जिनराज देव भजि काज सरै जिय तेरा ।।टेक।।
श्रनादि काल के कुमति कुसंग कूं,[1] करि पाड़[2] लिये उर भेरा ।।१।।

---

१२ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—श्रनुभव। २. प्रति 'त' एवं 'श्र'—विचारि।
३. प्रति 'श्र'—देसो। ४. प्रति 'त'—भ्रम्यो।
५. प्रति 'म'—कौन। ६. प्रति 'म'—मिले।
७ प्रति 'त' एवं 'न'—समक। ८. प्रति 'त' एवं 'श्र'—वेसना।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—परम।

१३ : १. प्रति 'म'—कह। २. प्रति 'म'—कै।
३. प्रति 'म'—मात्र। ४. प्रति 'म'—तिन के।

चउ गति भ्रमण किये नाना बिधि[3] दुष भुगते बहु केरा ॥२॥
व्यसन अन्याय पाप लति रति करि, किये पाप बहु भेरा ॥३॥
तिनकूं[4] नास करण सुमरण करि मानहु कह्या हमेरा[5] ॥४॥
सुमरण कियां तिरे बहुतेरे, गुरु दयाल इम टेरा ॥५॥
'पारस' धरि निश्चै करि सुमरण, धारहु सीष सवेरा ॥६॥

राग रामकली

(१५)

जिनमत की परतीति[1] भयी प्रतीति[2] भयी परतीति[3] भयी है ॥टेक॥
सब ही मत एकांत विगुंठित, तत्व अनंता धर्ममयी है ॥१॥
सो नहिं समुझत[4] सब मतवारे, जैनी सो सब करत सयी है ॥२॥
निश्चै[5] अरु व्यबहार[6] नयन तैं, परजय[7] गुणवत द्रव्य थयी है ॥३॥
भेद अभेद अनेक एक सत, असत[8] नित्य क्षण कहत वयी है ॥४॥
स्यात्पदचिन्हित[9] वाक्य[10] जैनमत, ऐसैं भाषत लोक जयी है ॥५॥
'पारस' जब लूं शिव होवै, तबलूं चाहत हूं **जिन मत** ही[11] है ॥६॥

---

१४ : १. प्रति 'अ'—कु। २. प्रति 'अ'—पाड़ि।
३. प्रति 'त' व 'अ'—विधि। ४. प्रति 'त' व 'न'—तिनको।
५. प्रति 'अ'—मेरा।

१५ : १. प्रति 'अ'—परतीत। २. प्रति 'अ'—परतीत।
३. प्रति 'अ'—परतीत। ४. प्रति 'अ'—समभत।
५. प्रति 'अ'—निश्चय। ६. प्रति 'अ' एवं 'त'—व्यवहार।
७. प्रति 'त' व 'न'—पर्जय। ८. प्रति 'अ'—अस्त।
९. प्रति 'अ'—सात्पदचिन्हित। १०. प्रति 'त' एवं 'न'—व्यावय।
११. प्रति 'त' एवं 'न'—'जिन यही'। १२. प्रति 'त' एवं 'न' में अन्तिम शब्द 'है' का टेक के अतिरिक्त सभी पंक्तियों में लोप है।

राग पट्

(१६)

श्री जिनराज दयानिधि नांमी । मोकूं तुम सम करहु अकामी ।।टेक।।
विसन अन्याय पाप लति हरिये, सुचि[1] रतन[2] त्रय मैं रुचि धरियो ।।१।।
पर परणति सो कुराह मिटावो, निज परणति गति मेरी पारो ।।२।।
तुम ढिगवा, तुम वचन[3] सुनत उर, वीतरागता जचत जगत गुर ।।३।।
जव होय विरह विषय संगि रचिहैं, या कुवाणि[4] मेट्यां[5] हम वचिहै[6] ।।४।।
भक्ति तुमारी तवलूं चावूं, जव लूं सिवपुर[7] वास न पावूं ।।५।।
अंति समाधि मरण तुम सेवा, द्यो निरविघ्न[8] पार्श्व जिनदेवा ।।६।।

राग पट्

(१७)

गहला है रे नर गहला है ।
जिन पद सुमरण विन तूं गहला है ।।टेक।।
मात तात सुत नांती[1] गोती, ये सव[2] मुतलव[3] का पैला है ।।१।।
तू न किसो दा कोवु[4] नहि तेरा, फेरता[5] फरैं[6] अकेला है ।।२।।
क्रोध लाभ छल मान विषय मद इन सेती, लखि तू[7] मैला है ।।३।।
पूजा दान सील तप संजम, जिन सुमरण विन तू अहला है ।।४।।
मैं समझावूं सो उर धरि लैं निश्चै[8] शिवपुर का गैला है ।।५।।
भजि जिन पास आस तजि पर को पर संवंध सोही फैला है ।।६।।

---

१६ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—शुचि । २. प्रति 'घ'—रतन ।
३. प्रति 'घ'—वचन । ४. प्रति 'त' एवं 'न'—कुवाणि ।
५. प्रति 'घ'—मेट्यां । ६. प्रति 'घ'—वचिहै ।
७. प्रति 'घ'—शिवपुर । ८. प्रति 'घ'—निर्विघ्न ।

१७ : १. प्रति 'घ'—नाती । २. प्रति 'त' एवं 'न' में सव[2] 'प' के बाद में न होकर 'पैला' से पहले है ।
३. प्रति 'घ'—मुतलव । ४. प्रति 'घ'—कोवु ।
५. प्रति 'घ'—फिरता । ६. प्रति 'घ'—फिरै ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—लखि तू । ८. प्रति 'घ'—निश्चय ।

राग षट्

*(१८)

अरज दास की सुणों दयानिधि परदासत्व हरो रषि तुमरो ।।टेक।।
परवसि ह्वै भुगते चौरासी, सो दुष तुम जानत हौ सघरो ।।१।।
एक सास मैं जन्म मरण ठारा, भुगतत भमियो जिम भमरो ।।२।।
अब तुम चरण सरण निठ पायो, ज्यो तरु अणु जलितरु ह्वै त रूरो ।।३।।
ता तैं अरज करु औसर पय पंडित मृति द्यो कर हरि जम रो ।।४।।
पार्श्वदास कूं वोध दीजिये, मेरो करो उद्धार अधम रो ।।५।।

राग षट्

*(१९)

सुनि प्रभु पार्श्वदास कहलाकै कापै जावूं लाज लजूं ।।टेक।।
सेठ सुदर्शन सुत विष हरियो दुलभतम तुम नाम भजूं ।।१।।
द्रुपद सुता मझि द्वीप धातु की क्लेश मेटि दियो पाव जजूं ।।२।।
तुमारो भरोसो राष्यो सीता, अगनि कुंड सब तोय पजूं ।।३।।
वज्रकरण तै सीधोदर को, मान राषियो नाथ अजूं ।।४।।
सुर नर खगपति रटत एक चित, तिन ही के सब सिद्ध कजूं ।।५।।
करुणानिधि सर्वज्ञ कहा कहूं, तुम सहाय तैं मैं भी सजूं ।।६।।
वडो काज करणो है मेरो, अल्प काज तैं विलम तजूं ।।७।।
मेरो निज धन चोर हरत है, ताहि दिलावो करहु रजूं ।।८।।
पर तैं करत सहाय ग्रामपति, तुम त्रिलोकपति पांव पजूं ।।९।।
पार्श्वदास निज दास जानि निज, पास रषावोगे अवजू ।।१०।।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

*यह पद केवल प्रति 'अ' में हैं।

राग पट्

(२०)

सात व्यसन मद्य मति जाय मोरे, भूलि जायगो[1] तो फसि जायगो ।।टेक।।
दूर सें ही त्यागि डारौ, छीवों[2] मति कहूं तोय,
सांचो जैन मत तो तें[3] नसि जायगो ।।१।।
दयामयो भाव रायो, त्यागद्यो कठोर बानो,
अैसें[4] ही धरम उर वसि जायगो ।।२।।
राग दोष[5] मोह त्यागो, मान कूं विडारि नांषो,[6]
पारसदास[7] सांचे पंथ[8] धसि जायगो ।।३।।

राग पट्

(२१)

शिव सें जोरि प्रभू हम सें न तोरो,
भक्त होय हम सांचो कहेंगे ।।टेक।।
तुम जिनचंद ज्ञान प्रकासो, हम कुमोदिनी किरण गहेंगे[1] ।।१।।
तुम जिन जोगी, जग जिय, तारक हम हूं अरजिका संगि[2] रहेंगे[3] ।।२।।
तुम ढिग हम दस[4] भव तें[5] लारी, तुमरि साथि हम कर्म दहेंगे[6] ।।३।।
अरज करै रजमति सुपियारी, पासदास[7] ह्वै मुक्ति वरेंगे[8] ।।४।।

---

२० : १. 'अ' प्रति—ज्यायगो । २. 'अ' प्रति—छीवो ।
३. 'अ' प्रति—सें । ४. 'अ' प्रति—अैसें ।
५. 'अ' प्रति—द्वेष । ६. 'अ' प्रति—नावो ।
७. प्रति 'त' और 'न'—पार्श्वदास । ८. प्रति 'अ'—पंथ ।

२१ : १. प्रति 'अ' और 'त' में—गहैंगे । २. प्रति 'अ'—संग ।
३. प्रति 'अ'—रहैंगे । ४. प्रति 'अ'—दश ।
५. प्रति 'त' और 'न'—की । ६. प्रति 'अ'—दहैगे ।
७. प्रति 'अ'—पार्श्वदास । ८. प्रति 'अ' और 'त'—वरेंगे ।

(२२)

आजि वीर जिन मुक्ति पधारे, त्रभुवन पति मिलि पूजे सारे ।।टेक।।
पावापुर ढिग सुंदर वन[1] मैं, सकल देव जय शब्द उचारे ।।१।।
अगनि कुमार[2] अगर चंदन जुत, मुकट अगनि[3] करि भस्म करारे ।।२।।
भस्मी सुरपति[4] मस्तग धारे भविजन आये सोर सुनारे ।।३।।
घर घर दीपक जोति जगारे, ता दिन तैं उच्छव[5] चलिया रे ।।४।।
सतक च्यार सत्तरि संवत्सर[6] पीछै विक्रम राज धरा रे ।।५।।
कातिग कृष्ण चतुर्दसि[7] कारे, पिछली निसि के इक घटिया रे ।।६।।
मोदकादि नैवेद्य छितारे, सो ही ले भवि[8] पूज रचा रे ।।७।।
सो उच्छव[9] अबलूं लषि पारस, मुक्ति गमन श्रद्धान धरा रे[10] ।।८।।

राग भैंरू

(२३)

तुम[1] गरीब के निवाज, मैं गरीब तेरो ।
तुम समान कीजे प्रभु, सुण जे दुष[2] मेरो ।।टेको।।
दीनबंधु दयासिंधु नाम सुन्यों[3] तेरो ।
मेरो वसुकर्मनि को मेटो उरभेरो[4] ।।१।।

---

२२ : १. प्रति 'अ' एवं 'त'—वन ।
२. प्रति 'अ'— अग्निकुमार ।
३. प्रति 'अ'—अग्नि ।
४. प्रति 'अ'—सुरपति और मस्तग के मध्य में 'मति' का निरर्थक आगमन ।
५. प्रति 'अ'—उछव ।
६. प्रति 'त'—संवत्स ।
७. प्रति 'अ' – चतुर्दशि ।
८. प्रति 'अ'—भवि ।
९. प्रति 'त', और 'न'— उच्छ ।
१०. प्रति 'त' और 'न-— धारे

तारक -भवजीवन- को ज्ञायक जग केरो।
मेरे तुम नायक प्रभु, मैं हू तुम चेरो ॥२॥
मैं तो निज रूप भूलि कर्मनि को प्रेरो।
विषयनि[५] रसरक्त भयो रह्यो नांहि नेरो ॥३॥
पूर्व पुण्य के प्रताप सरण गह्यो तेरो।
कर्मनि को वंध मेरो, पार्श्व प्रभु उवेरो ॥४॥

राग भीवपलासी

(२४)

नमो नमो संसार तारायण,
तू ही विधातां[१] तेहूं लोकपती नमो ॥टेक॥
असुभ संहारक मोह[२] निवार[३] लोकेसुर हूवे पतो ॥१॥
हम हूं कूं तारायण दुःष निवारण भो सागर मलांनी को पिछानि लीयो
उवारो पारस पती॥२॥

राग भैंरू

(२५)

या विधि[१] निति सुंमरि भव्य श्रावक सुभ किरिया।
मानुष भव मिलियो यह आतम काज विरिया[२] ॥टेक॥
प्रथम ही जिनेंद्र चंद सद्गुरू परचरिया।
जिनागम अभ्यास करो मिथ्या भ्रम हरिया ॥१॥

---

२३ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—सुम। २. प्रति 'त' एवं 'न'—दुख।
३. प्रति 'अ'—सुन्यो। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—उरझेरो।
५. प्रति 'अ'—विषयन।

२४ : १. प्रति 'त' एवं 'अ'—विधाता। २. प्रति 'न'—निवारि।
३. प्रति 'अ'—मो। ४. प्रति 'अ'—वारि।

संजम तप धारि दान दीयां वहु[3] उधरिया।
धन्य पुरुष नर भव लहि सुज्ञान मरण मरिया ॥२॥
ज्ञान विनां[4] किरिया सब भाषी है अकिरिया।
'पारस' जुत ज्ञान क्रया कियां काज सरिया ॥३॥

राग भैरू

(२६)

अहो पास जिनराज दास मोहे[1] अपनो[2] जानि[3] उवारो[4] ॥१॥
मेरी निज निधि कर्म ठगत है इनको संग निवारो ॥२॥
विषय चाट वसि[5] करि कै मोकूं, ध्यान छुड़ावत थारो ॥३॥
मोह तत्व कूं जोर भुलावत, या को संग बिडारो[6] ॥३॥
क्रोध लोभ छल मान सकल तैं, मोकूं तो अब टारो ॥४॥
इन संगि दुःख सहे बहुतेरे,[7] रूप न जान्यो[8] थारो ॥५॥
अब तुम भक्ति चहूं निस वासुर, ज्यों होवै सुरझारो ॥६॥
जब लूं मैं शिव नगर न पावूं, पारस तब लूं[9] चावूं ॥७॥
इन तैं[10] गैलि छुड़ाय दयानिधि, तारक विरद तुमारो ॥८॥

---

२५ : १. प्रति 'त' एवं 'अ'—विधि। २. प्रति 'अ'—विरिया।
३. प्रति 'अ'—वहु। ४. प्रति 'अ'— विना।

२६ : १. प्रति 'अ'—मोय। २. प्रति 'अ'—अपणो।
३. प्रति 'अ'—जाणि। ४. प्रति 'अ'—उवारो।
५. प्रति 'अ'—वसि। ६. प्रति 'त' एवं 'अ'—विडारो।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—बहु दिन सें। ८. प्रति 'अ'—जाण्यो।
९. प्रति 'अ'—लों। १०. प्रति 'त' एवं 'न'—तैं।

राग असावरी, तितालो

(२७)

आजि रो दिन रुड़ो छै हे मोरी अमा सब[१] दुप जासी ॥टेक॥
जिन री मूरति ओ लपां करां गुरु[२] दी सेव ॥१॥
वाणी रा परसाद तैं पास्यां सौख्य अछेव ॥२॥
सप्त तत्व रुचि ल्याय कैं करि सरधा मन माय[३] ॥३॥
धर्म धारि दस लक्षणी रत्न त्रय रुचि[४] लाय ॥४॥
आतम रूप विचारि[५] मुभ करहुं ग्रहण मन भाय[६] ॥५॥
'पारस' सेवा पायके फिर न रहूं जग मांय ॥६॥

राग असावरी, ताल सूं

(२८)

हां रे[१] भायी[२] समझि करो मन मायी[३] ॥टेक॥
पुत्र मित्र भगनी[४] सुत वनिता[५] ये सब मुतलब कायी ॥१॥
आतम काज करो तुम अपनों, तामैं विघन करायी ॥२॥
धन संपति जो होय तुमारै सब मिलि तोय सरायी ॥३॥
असुभ[६] उदय तै[७] पोण[८] होत धन, तब तोहे[९] मूढ बतायी ॥४॥
निज कारिज मैं ढील न कीजे पर सब है दुपदायी ॥५॥
'पारस' आतम रुप गहो अब, फिर यो[१०] अवसर नायी ॥६॥

---

२७ : १. प्रति 'म'—सब । २. प्रति 'म'—गुरु ।
३. प्रति 'म'—मांहि । ४. प्रति 'म'—उर ।
५. प्रति 'म'—विचार । ६. प्रति 'म'—मांय ।

२८ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—र । २. प्रति 'म'—भाई ।
३. प्रति 'म'—मांही । ४. प्रति 'म'—भगिनी ।
५. प्रति 'म'—वनिता । ६. प्रति 'म'—असुभ ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—तैं । ८. प्रति 'म'—छीण ।
९. प्रति 'म'—मोहि । १०. प्रति 'त' एवं 'न'—यह ।

(२९)

नेम जी नेहरा लगाय कित जांदा[1] ॥टेक॥
सावरी[2] सूरति मोहनी मूरति लपि तृलोक हरपांदा[3] ॥१॥
जदुकुल चंद उजागर नागर तुम विन कछु न सुहांदा[4] ॥२॥
रजमति अरज करै चरनन ढिगि पार्श्वदास गुण[5] गांदा ॥३॥

राग असावरी, तितालो

(३०)

ते नर जाणि दिगंबर[1] जतियां ॥टेक॥
पांच महाव्रत समिति[2] गुप्ति त्रय पालत है दिन रतियां ॥१॥
हिंसा भूंठ चोरी पर तिरिया, परिग्रह में नहिं गतियां ॥२॥
जिन क्रोधादिक बैरी[3] हतिया, वोलत[4] है हित मितियां ॥३॥
'पारस' असे गुरू कूं पूजत ते काटत भव ततियां[5] ॥४॥

---

२९ : १. प्रति 'अ'—जावदा । २. प्रति 'त' एवं 'न'—सावरि ।
३. प्रति 'अ'—हरषावदा । ४. प्रति 'अ'—सुहावदा ।
५. प्रति 'अ'—गुन ।

३० : १. प्रति 'अ'—दिगंवर । २. प्रति 'अ'—समित ।
३. प्रति 'अ'—वैरी । ४. प्रति 'स'—वोलत ।
५. प्रति 'अ'—ततिया ।
प्रति 'अ' में 'जतियां,' 'रतियां,' 'गतियां,' 'मितियां,' ततियां शब्दों में भी अनुनसिकता का लोप है ।

आसावरी

(३१)

श्री जिन पूजिहूं जी अधम उधारक विरद[1] निहारि ॥टेक॥
जल चंदन कूं आदि ले जो, अष्ट द्रव्य को अरघ[2] बनाय ॥१॥
नास[3] करूं वसु कर्म को जी, श्री जिनवर के[4] चरण चढ़ाय ॥२॥
जप तप संजम नां बनै जी, प्रभुजी[5] सुद्ध[6] पूजन बनाय ॥३॥
भाव भक्ति सूं वीनवू जी, म्हारो[7] आवागमन[8] मिटाय ॥४॥
पारसदास[9] चर रावरो जी, तुम कूं छांड़ि[10] कोंण पै जाय ॥५॥
कल्प वृक्ष कूं छांडि कैं जो, मूरष[11] बैठे थोहर[12] छाय ॥६॥

आसावरी

(३२)

हो ज्ञांनी[1] कैसे विसरि गये मतियां ॥टेक॥
वेर वेर[2] तोयै[3] गुरू समझावै[4] तजि विषयन[5] मैं लतियां ॥१॥
तू चेतन जड़ मैं[6] इम राचत, यह[7] तौ जोग्य[8] नहिं बतियां ॥२॥
'पारस' निज पर की करि छांटण, पावो पंचम गतियां[9] ॥३॥

---

३१ : १. प्रति 'ग्र'—विड़द । २. प्रति 'ग्र'—ग्रर्घ ।
३. प्रति 'ग्र'—नाश । ४. प्रति 'ग्र'—कै ।
५. प्रति 'ग्र'—मोसे । ६. प्रति 'ग्र'—शुद्ध ।
७. प्रति 'ग्र'—महारो । ८. 'त' एवं 'न'—जामणमरण ।
९. प्रति 'त' एवं 'न'-पार्श्वदास । १०. प्रति 'ग्र'—छोड़ि ।
११. प्रति 'ग्र'—मूरिष । १२ प्रति 'ग्र'—थोहरि ।

३२ : १. प्रति 'ग्र'—ज्ञानी । २. प्रति 'ग्र'—वेर वेर ।
३. प्रति 'ग्र'—तोये । ४. प्रति 'त' एवं 'न'—समझावत ।
५. प्रति 'ग्र'—विषयनि । ६. प्रति 'त' एवं 'न'—तै ।
७. प्रति 'ग्र'—ये । ८. प्रति 'ग्र'—जोग ।
९. प्रति 'ग्र'—गतिया । इसके ग्रतिरिक्त 'मतियां,' 'लतियां,' 'बतियां' ग्रौर 'गतियां' ग्रन्य शब्दों में भी ग्रनुनासिकता नहीं है ।

राग माढ़

(३३)

चालो सपी देपन जय्ये नवल,
आनंद रच्यो श्री अजोध्या मैं नाभि नरेंद्र ।
सुरपति सची जुत नचत अमंद,
हरखत सुर नर पग नृप वृंद ।
सारंगी मजीरा वाजें वंसरी मदंग,[1]
गंदरफ[2] किनर गावै, नाना छंद ।
मोरा देवी अंग न मावै, नषि निज नंद
पारस उग्यो मानूं त्रिभुवन चंद ।

आसावरी

(३४)

कोवू कछू कहो सब त्यागा[1] रे ।।टेक।।
अनंत काल सूते मिथ्यात वसि[2] वहुत[3] दिनन मैं जागा रे[4] ।।१।।
तन धन जोबन[5] सकल विनस्वर[6] किस दी लार न लागा रे ।।२।।
सम्यक गुरु प्रसाद जिन श्रुत तैं निज स्वरूप मैं पागा रे ।।३।।
'पारस' भेद ज्ञान जिन कै घट ते जग मैं वड़भागा रे ।।४।।

---

३३ : १. प्रति 'अ'—मृदंग । २. प्रति 'अ'—गंधरफ ।

३४ : १. प्रति 'अ'—त्याग्या । २. प्रति 'अ'—वसि ।
३. प्रति 'अ'—वहुत । ४. प्रति 'अ'—जाग्या ।
५. प्रति 'अ'—जोवन । ६. प्रति 'अ'—विनश्वर ।

*(३५)

उत्तम त्याग सुधर्म कूं अवधारी रे भाई ॥टेक॥
त्याग दान इक अर्थ जानियो, नाम भेद इन भायी ॥१॥
गृहचारा में दान वड़ो है, भापी तृभुवन रायी ॥२॥
नव विधि सकल संपदा पायी, आ पर विनसै भायी ॥३॥
या तैं पर उपगार करत है, तिन हीं महिमां पायी ॥४॥
त्याग विना वहु पाप वांधि सिर चहु गति मांय रुलायी ॥५॥
'पारस' त्याग कियां सुप विलसैं, परंपराय शिव जायी ॥६॥

राग आसावरी

(३६)

हां रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो।[1]
हिंसा सेती डरते रयो ॥टेक॥
जैन धरम में हिंसा वरजी, दया भाव अनुसरते रय्यो ॥१॥
सत्य सील तप व्रत इत्यादिक, याही हेत सव करते[2] रय्यो[3] ॥२॥
'पारस' जिन मत सार दया लपि, मुनि[4] श्रावक सव धरते रयो ॥३॥

(३७)

ज्ञान सूर्योदय नाटक ग्रंथ दरसावै शिवपुर को पंथ।
याकूं जो धरै सोही मुक्ति महल पैंडी चढै ॥टेक॥
कुमति सुमति को जहां समाज,
दोवु[1] तिय को पति आतमराज[2]

---

*यह पद प्रति 'ध' में नहीं है।

३६ : १. प्रति 'ध'—जयो। २-३. प्रति 'ध' करय्यो।
४. प्रति 'ध'—'मुनि' शब्द का लोप।

सुमती सुत ज्ञानादिक साच[3]
मोहादिक की हरि हर सहाय,
जिनवर ज्ञानादिक के पाय[4]
सब ही मत के सूतर सुनें
जिन मत विन दया कहां[5] मुने।
दया न पायी सब मत मांय।
निर ग्रंथनि[6] मैं वा ठहराय।
जिन वांणी प्रसाद लहि[7] राज,
ज्ञान कियो प्रभु कूं महाराज।
पुनि वैराग भावना भाय।
आतम भये मुकति के राय।
झूंठे[8] लषिये सब मतवान,
'पारस' सांचो जैन वषान ॥३७॥

राग आसावरी

(३८)

पर कूं[1] क्यूं[2] अपनाया रै अज्ञानी ॥टेक॥
तू ज्ञांनी और सब अज्ञांनी तैं[3] ये नांय पिछानी ॥१॥
पर के नेह तैं, भव दुष भोगे, बहुत[4] भये हैरानी ॥२॥
अजहूं चेति सभालि निजातम समझावै जिनवानी ॥३॥

---

३७ : १ प्रति 'अ'—दोवू ।
२. प्रति 'त' और 'न'—आतमराम ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—ज्ञानादिक सुमती सुत सांच ।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—थाय ।
५. प्रति 'अ'—कहा ।
६. प्रति 'अ'—निरग्रंथन ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—तहि ।
८. प्रति 'अ'—झूठे ।

पर संबंध सो कुबंध करत है, त्यागे तें[५] शिव थांनी ॥४॥
राग द्वेष तजि होय समतामय, ये वातें सुप पांनी[६] ॥५॥
'पारस' निज स्वरूप ही सुपमय सम्यक गुरु तें जानो ॥६॥

आसावरी तथा वरवा की ठुमरी में

(३९)

सयां[१] मुनि भेपवा गहीलो रे।
हो रे[२] देषो वारी[३] सी उमरियां में रे सयां ॥टेक॥
कोंन चूक परि त्यागी मोहि कूं[४],
जीव में अंदेसवा बहीलो रे ॥१॥
तजि कें गये मेरी सुधि हू नां[५] लीनी,
शिव तिय उर हुचि गयीलो[६] रे ॥२॥
हम हूं पिया संग[७] रहूंगी अराजिका,
'पारस' परिग्रह जहीलो रे ॥३॥

---

३८ : १ प्रति 'त' एवं 'न'—क । २. प्रति 'त' एवं 'न'—क्यों ।
३. प्रति 'म'—तें। ४. प्रति 'म'—बहुत ।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—तें। ६. प्रति 'म'—गुलतांनी ।

३९ : १. प्रति 'म'—सय्यां । २. प्रति 'म'—'हो रे' का लोप ।
३. प्रति 'म'—'वारी' से पहले 'जी' का आगमन । ४. प्रति 'म'—'मोहि कूं' का लोप ।
५. प्रति 'म'—ना ।
६. प्रति 'म'—गहीलो । ७. प्रति 'म'—संगि ।

आसावरी

(४०)

आकिंचन[1] धरम धरि भायी,
परिग्रह की ममता[2] दुःखदायी ॥टेक॥
ममता करि समता नहिं आई,
ताही तैं भव भ्रमण कराई ॥१॥
हौ उपयोग स्वभाव सदाई,
पर परणति तैं दुरगति पाई ॥२॥
जन्म मरण मैं प्रगट लषाई,
तू तिहुंकाल एक गुरु[3] गाई ॥३॥
पर संजोग वियोग कराई,
राग द्वेष करि कर्म[4] बधाई[5] ॥४॥
अनंत काल या बिन भरमाई,
'पारस' धारयां[6] ह्वै शिवराई[7] ॥५॥

राग भैरवी

(४१)

श्री जिन ओरी[1] हो मनवा हमारा बिलमाया[2] ॥टेक॥
शान्ति छवी थारी हो लषि लषि कर्म नसाया।
मुनि जन से उमगाया ॥१॥

---

४० : १. प्रति 'अ'—आकिंचन्य। २. प्रति 'अ'—ममा।
३. प्रति 'अ'—गुरु। ४. प्रति 'अ'—बंध।
५. प्रति 'अ'—कराई। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—धार्या।
७. प्रति 'अ'—शिवरायी।

सक्री चक्री हो तुम्हि पद कमल नमाया।
ज्ञानी ध्यानी ध्याया ॥२॥
'पारस' रपिये हो जब लू शिव नहिं पावूं।
तब लूं[3] सरणे आया ॥३॥

राग भैरवी, तितालो

(४२)

मोहनीं मो पं[1] टोना कीनां है ॥टेक॥
वच तुमरे तब विसरि गयो मैं नाम मंत्र न[1] गहीनां ॥१॥
पर जड़ को संबध पाय[2] के[3] हित मैं चित नहिं दीनां ॥२॥
अब[4] तुम सरन[5] गही प्रभु 'पारस' मोह विजय करि लीना[6] ॥३॥

(४३)

लापूं वेर्यां जीया कूं समझायो जी ॥टेक॥
निरावाध[1] सुप[2] तेरै वोहीतेरा[3], पर मैं क्यूं[4] विलमायो जी ॥१॥
रत्नत्रय पथ है सुषदायो,[5] आन लपो दुषदायो जी ॥२॥

---

४१ : १. प्रति 'अ'— औरी। २. प्रति 'अ'— विलमाया।
३. प्रति 'अ'—लौं।

४२ : १. प्रति 'अ'—पै। २. प्रति 'अ'—संबंध।
३. प्रति 'अ'—कै। ४. प्रति 'अ'—अव।
५. प्रति 'अ'—शरन।
६. प्रति 'अ'—'लीनां'। इसके अतिरिक्त 'कीनां' 'गहीनां' शब्दों में भी अनुनासिकता का लोप।

अनादिकाल को पर मैं रचि कैं[6] आतमरूप भुलायो ॥३॥
यह[7] उपगार[8] कियो[9] प्रभु[10] पारस फेरूं ज्योत बनायो ॥४॥

(४४)

मुनिवर वंदन जावूं जावूं रै तिहूं बेला[1] ॥टेक॥
मुनिवर बंदत[2] सब दुष[3] भंजत आतमीकं[4] सुष पावूं ॥१॥
अनादि काल तैं कवु न लष्यो[5] कोवु[6] सो सुषमय दरसावूं ॥२॥
'पारस' त्रभुवन बंदित[7] मुनि पद, पाय न जग भरमावूं[8] ॥३॥

भैरवी

(४५)

हो वैरनि कुमता तजि मो लार ॥टेक॥
दुरज़न लोक जगत मैं बहुते उन तैं करि लैं[1] प्यार ॥१॥
अब हमरै सुमता[2] दिढ़[3] सजनी, है शिव सुषदातार[4] ॥२॥
'पारस' तजी कुमति दुषदानीं, पहुंचे[5] शिवघर द्वार ॥३॥

---

४३ : १. प्रति 'अ'—निराबाध। २. प्रति 'अ'—सुख।
३. प्रति 'अ'—बहुतेरा। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—त्यो।
५. प्रति 'अ'—शिवदायो। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—राच्यो पर में।
७. प्रति 'अ'—ये। ८. प्रति 'अ'—उपकार।
९-१०. प्रति 'अ'—सुगुरु को।

४४ : १. प्रति 'अ'—वेला २. प्रति 'अ'—वंदत।
३. प्रति 'अ'—दुख ४. प्रति 'अ'—आतमीक।
५. प्रति 'अ'—लख्यो। ६. प्रति 'अ'—कोवू।
७. प्रति 'अ'—वंदत। ८. प्रति 'अ'—भरमावू। इसके अतिरिक्त 'दरसावू', 'पावू', में भी अनुनासिकता का लोप।

४५ : १. प्रति 'अ'—लैं। २. प्रति 'अ'—समता।
३. प्रति 'अ'—दृढ़। ४. प्रति 'अ'—सुखदातार।
५. प्रति 'अ'—पहुचे।

राग भैरवी

(४६)

समझि दिल कोयि[1] नहीं अपुना[2] ॥टेक॥
मात तात और बंधु[3] तिया सुत सुष संपति सुपना ॥१॥
आय अचानक जम ले जासी, करि मुष[4] जिन जपनां ॥२॥
'पारस' दान सील तप धरिये, यूं वसु[5] विधि[6] षपनां ॥३॥

राग भैरवी

(४७)

चलनें की वेरियां क्यूं[1] विसरि[2] गयो ॥टेक॥
नां कोवूं गहसी[3] लार न रहसी, पुण्य पाप संगि रह गयो ॥१॥
वीतराग गुरू फिर कब[4] मिलसी, विषयंन[5] में कहा बहि गयो ॥२॥
'पारस' साम्य भाव गहि सुषमय[6] करुणानिधि इम कहि गयो ॥३॥

---

४६ : १. प्रति 'अ'—कोई । २. प्रति 'अ'—अपनां ।
३. प्रति 'अ'—बंध । ४. प्रति 'अ'—मुख ।
५. प्रति 'अ'—वसु । ६. प्रति 'अ' विधि ।

४७ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—क्यों । २. प्रति 'अ'—विसरि ।
३. प्रति 'अ'—ग्रहसी । ४. प्रति 'अ'—कब ।
५. प्रति 'अ'—विषयनि । ६. प्रति 'अ'—सुखमय ।

पद राग भैरवी

(४८)

चिमत्कार जिनंद मेटो[1] करमा के फंद।
ज्ञानावरणादिक जो ज्ञान विगाड्यो,
म्हारो ढांक्यो[2] सहजानंद ॥१॥
मोहनी तत्व कूं जो जोर भुलावत,
पापी कीजे मूल निकंद ॥२॥
अंतराय हरिये, अनंत चतुष्टय दीजे,
'पारस' होवूं[3] निर्द्वंद्व।

राग भैरवी, विलावल

(४९)

या जीव[1] को हित जिनवानी है ॥टेक॥
असुभ दोय गति कूं छुड़वावै,
सुभगति दानी है[2] ॥१॥
स्वपर तत्व दरसावन दीपक,
ध्यावत ज्ञानी है ॥२॥
'पारस' मन वच तन करि सेवो,
शिव सुषषानी[3] है ॥३॥

---

४८ : १. प्रति 'अ'—काटो। २. प्रति 'अ'—ढाक्यो।
३. प्रति 'अ'—होवु।

४९ : १. प्रति 'त'—जिव। २. प्रति 'त'—छे।
३. प्रति 'अ'—सुखखानी।

राग विलावल

(५०

अैसें ध्यावो आतमराम,

शुद्ध चेतनां रसमयी उज्जल ॥टेक॥

कर्म को कर्त्ता भोग को भोक्ता या कथनी जा मांय[1] निकाम ॥१॥

जा मैं एकेंद्री पंचेंद्री अैसे भेद नही अभिराम ॥२॥

है निरदोप वंध नहि मोचन सदा ज्ञानमय है आराम ॥३॥

ज्ञान गम्य[2] दरसन है जाको, लोकातीत पूज्य है धाम ॥४॥

शुद्ध वंस[1] घट मांय विराजत[3], 'पारस' ध्यावो तजि सव[4] काम ॥५॥

राग विलावल

५१)

या विधि[1] सुमरो आतमराम ।

निपिल[2] द्रव्य प्रतिभास जास मैं ।टेक॥

पंचेंद्रिय वसि रापि ध्यान धरि

अंतर पोज करो अभिराम,

चेतन ज्ञान सरूप ज्ञान धन,

तिहूं पन[3] ज्ञान मांय[4] विश्राम,

---

५० : १. प्रति 'म'—न्याय । २. प्रति 'त' एवं 'न'—गम्य ।

३. प्रति 'न'—बंध । ४. प्रति 'म'—विराजत ।

५. प्रति 'म'—सब ।

जा मैं ज्ञेय सकल प्रतिभासै,
ज्यों दर्पण में बिंवित साम[५]
है शुचि[६] शुद्ध शुद्ध नय सेती,
'पारस' सुमरों[७] आठू[८] जाम ॥५१॥

राग विलावल

(५२)

एकहि जीव वस्तु के नाम है,
गुन[१] रूप अनेक भेद कर ॥टेक॥
है निरजोग शुद्ध सो आतम,
है अशुद्ध परजोग विराम[२] है ॥१॥
वेद पढे देव ब्रह्म कहत है,[३]
कर्म कहत मीमांसक ताम है ॥२॥
शिव मत मैं शिव बुद्ध[४] बौध[५] मत,
जैनी जैन भाषै[६] अभिराम है ॥३॥
न्यायवाद[७] करतार प्ररूपै,
षटमत वचन[८] मिले नहिं दाम है ॥४॥

---

५१ : १. प्रति 'अ'—विध । २. प्रति 'अ'—निखिल ।
३. प्रति 'अ'—तिहुपन । ४ प्रति 'अ'—माय ।
५. प्रति 'अ'—नाम । ६. प्रति 'अ'—सुवि ।
७. प्रति 'अ'—सुमरो । ८. प्रति 'अ'—आठू ।

'पारस' तो सरवांग[9] पिछानों,
स्यादवाद में[10] करि विसराम[11] है ॥५॥

राग विलावल

(५३)

आजि तो जनमें[1] श्री महावीर छत्रधारी,
गज की सवारी कीये[2] चले जात मेरू पै[3] ॥टेक॥
केते इंद[4] गावें, केते चवर ढुरावे,
केते देव दुंनी[5] बोलै जय जय जय टेर पै ॥१॥
पीरोदक ल्यावै, इंद न्हवन करावै,
सची शृंगार रचै प्रभू गोद लेर कै[6] ॥२॥
राज-द्वार जाय सौंपि[7] नृत्य हू रचावै,
'पारस' निज जन्म सफल मान्यो इंद[8] जास पै ॥३॥

---

५२ : १. प्रति 'अ'—सुनि । २. प्रति अ—विराम ।
३. प्रति 'त' और 'न'—वेद पढे सो ब्रह्म कहत सो । ४. प्रति 'अ'—युद्ध ।
५. प्रति 'अ'—योध ।
६. प्रति 'अ'—भापत । ७. प्रति 'अ'—न्यायवाद ।
८. प्रति 'अ'—वचन । ९. प्रति 'अ'—सर्वांग ।
१०. प्रति 'अ'—में । ११. प्रति 'अ'—विश्राम ।

५३ : १. प्रति 'अ'—जनमे । २. प्रति 'अ'—कियें ।
३. प्रति 'अ'—पे । ४. प्रति 'अ'—इंद्र ।
५. प्रति 'अ'—दूनी । ६. प्रति 'त' एवं 'अ'—कें ।
७. प्रति 'न'—सौंपि । ८. प्रति 'अ'—इंद्र ।

राग बिलावल

*(५४)

जिन धर्मी की रीति बतावै, आगम मैं सद्गुरु इम गावै ।।टेक।।
प्रथमहि सातू' विसन तजावै और अन्याय अभक्ष न जावै ।
पांचू पाप प्रवृत्ति घटावें, पा तिय धन घड घडि पावै ।
सम्यक देव धर्म उद्धारक[1], तिन ही तैं अति प्रीति वढावै ।
वहु श्रृती जिन धर्मी लखि कै, मित्र करै स्वाध्याय रचावै ।
तीन गुणव्रत और सिष्याव्रत, इन तै नित निस दिन रीति रचावै ।
तीनू' काल धरै सामायक चउपर्व्वी उपवास जचावै ।
चित्त भक्त त्यागी दयाल अति, रीति दिन विन न करावै ।
या विधि है जघन्य श्रावक विधि मध्यम अव ब्रह्मचर्य कहावै ।
पाप रूप आरंभ तजै सव च्यारि दान निर पाप वढावै ।
हेय जाणि नहिं गहै परिग्रह, तिन ही मैं अनुमति नहिं लावै ।
या विधि रीति कही मध्यम की है उत्कृष्ट ग्यारमी जावै ।
ता मैं चुलक एलक श्रावक खंडवस्त्र कोपीन रषावै ।
दूजा के कौपीन एक ही मुनि समान पारस सिर नावै ।

बिलावल

(५५)

हो दुविध नम वारो म्हारो मन लियो मोहि ।।टेक।।
सुमति जचावै, कुमति छुड़ावै,
सांची जिन बानि[1] सुनावै ।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है ।
५४ : १. प्रति 'अ'—उद्धारक ।

विषय कषाय विसन[1] छुड़वाव,
सम यम सील वतावै,[3]
'पारस' निस दिन या उर चावै,
सो संगति कव[4] पावै।

राग विलावल

(५६)

मेरी तौ लाज सव तुमरे[1] हाथ[2] है,
जैसे[3] चावो तैसे[4] रापो सांवरे ।।टेक।।
हे गुणनिधि कछू गुण नहीं मो मै,
अव[5] तौ तुमारे है स्यार्ने वावरे[6]।
हे समरथ मेरी भवसागर के भवण मैं,
पड़ी[7] मझधारे नाव रे।
कीजे दया किरण की मोज सैं,[8]
वेग निकासि कनारैं लगाव रे।
सुमरण तैं उवरे[9] वहु[10] सुनिहै,
साषि लिपी है पुराण कहाव रे।
अधम उधारक विरद[11] लषीजे,[12]
अव[13] तौ पारसदास रावरे।

---

५५ : १. प्रति 'अ'—वानि। २. प्रति 'अ' एवं 'त'—विसन।
३. प्रति 'अ' एवं 'त'—वतावैं। ४. प्रति 'अ'—कव।

५६ : १. प्रति 'अ'—तुमारे। २. प्रति 'त' एवं 'न'—हाति।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—जैसे। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—तैसे।
५, १३. प्रति 'अ'—अव। ६. प्रति 'अ'—नावरे।
७. प्रति 'अ'—परी। ८. प्रति 'त' एवं 'न'—सैं।
९. प्रति 'अ'—उवरे। १०. प्रति 'अ'—वहु।
११. प्रति 'अ'—विरद। १२. प्रति 'अ'—लखीजे।

राग विलावल

(५७)

अमृतचंद[1] सूरी बच[2] सार,
सुनत मिथ्या विष उगल देत नर ॥टेक॥
निश्चै अरु व्यवहार भेद करि,
स्वै पर तत्व प्रकासन हार[3]।
सुषी होत नर सुनत जास कूं,
अनुभव तैं आनंद बिस्तार[4]।
हेतु सहित दृष्टान्त देय कै,
सुद्ध[5] वतावै वस्तु विचार।
'पारस' धन्य भये नर जे बच,
बांचैं[6] सुनैं अर्थ उरधार।

राग सारंग

(५८)

चेतो क्यू नैं जिय धीरज धारी ।टेक॥
मोह विकट बिटमार[1] नैं[2] तेरो, लूटि लयी निज निधि सारी।
काम क्रोध छल मान लोभ की, फांसि[3] दयी अति दुषकारी।

---

५७ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—अमतचंद। २. प्रति 'अ'—वच।
३. प्रति 'अ'—प्रकाशनहार। ४. प्रति 'अ'—विहार।
५. प्रति 'अ'—शुद्ध। ६. प्रति 'अ'—वांचै।
प्रति 'अ' में 'बिस' 'वस्तु' 'विचार' और 'बच' शब्दों में 'ब' के स्थान पर व प्रयुक्त हुआ है।

गाफिल ह्वै विचरत[4] जे इन संगि; ते भव[5] भ्रमण करै नारी।
पार्श्वदास जिन सुमरण कीजे, ये प्रभु सव[6] विधि दुपहारी॥५८॥

राग सारंग

(५९)

उजरो पथ है शिव ओरी को, जिन ओरी को।टेक॥
पांच पाप को त्याग जास मैं, संग्रह समता गोरी को।
समिति[1] गुप्ति सूं प्रीति वढ़ावै, तजै[2] असंजम थोरी को।
दुल्लभ मिल्यो तजूं नहि पारस, ज्यों चितामणि जोहरी[3] को।५९॥

राग सारंग

(६०)

जिन भजि लै आजि वपत फिर नां।टेक॥
को जानैं दिन उगै नां उगै आयु काय को निश्चै नां।
जिन मंतर सुनि पशु ही[1] तरि[2] गये ज्ञांनी[3] जन का क्या कहनां।

---

५८ : १. प्रति 'अ'—विटपार। २. प्रति 'अ'– न।
३. प्रति 'न' - फांसि। ४. प्रति 'त' एवं 'अ'—विचरत।
५. प्रति 'त'एवं 'अ'—भव। ६. प्रति 'अ'—सव।
७. प्रति 'अ' विधि। ८. प्रति 'अ'—दुखहारी।

५९ : १. प्रति 'अ'—समति। २. प्रति 'अ'—तज्यो।
३. प्रति 'त' एव 'न'—जोहोरी।

एक महूरत चित्त रोकि कर[4], ध्या लै करि मेरा कहनां।
'पारस' जिन भजिया तिनका धनि, पच्च महूरत दिन महिनां[5] ॥६०॥

राग धनाश्री

(६१)

तुम बिन[1] को तारै जिनराज ॥टेक॥
तुमरे दरसन[2] तें अघ नांसत,[3] बढत पुण्य बिसतार[4]।
जाके नाम मंत्र तै उबरे,[5] अंजन से अघ भार।
स्वान सिंघ अहिन कुल व्याघ्र कपि राजत स्वर्ग मझार।
अधम उधारक बिरद[6] जानि कैं,[7] सरन गह्यो निरधार।
'पारसदास' होय जिन तुमरो, तुम तें करत पुकार॥

राग पूर्वी चैती गौड़ी

(६२)

शिव सुषकारी[1] मैंनू[2] जिनमत पाया ॥टेक॥
नय प्रमाण करिवे[3] वस्तु[4] स्वरूप लषाया।
स्यादवादमयी[5] थाया ॥१॥

---

६० : १. प्रति 'त' एवं 'न'—हि। २. प्रति 'अ'—तिर।
३. प्रति 'अ'—ज्ञानी। ४. प्रति 'अ'—कै।
५. प्रति 'अ'—महिना।—प्रति 'अ' में 'कहनां', 'फिरनां', 'निश्चैनां' आदि अन्त्यानुप्रास में अनुनासिकता नहीं है।

६१ : १. प्रति 'अ'—विन। २. प्रति 'अ'—दर्शन।
३. प्रति 'अ'—नाशत। ४. प्रति 'अ'—विस्तार।
५. प्रति 'अ'—उवरे। ६. प्रति 'त' एव 'अ'—विरद।
७. प्रति [illegible]

या ढिग सब[6] मत वेमत[7] वारे दरसाया।
नाहक जग भरमाया ॥२॥
पक्षपात करिवे मिथ्या अलट वहाया[8]।
तत्स्वरूप न लषाया[9] ॥३॥
अब[10] नहि विसरों[11] नीके[12] उर दृढ मांय रचाया।
दुष हर सुष[13] कर गाया ॥४॥
'पारस' नर भव वे पाया सफल कराया।
जे जिनमत अपनाया ॥५॥

राग चैती गौड़ी

(६३)

चालो सख्यो हे नेम जी वांनी[1] सुनावै[2] ॥टेक॥
जीव दया मैं धर्म बतावै, हित अनहित समझावै।
सुभ मारग की राह बतावै, दुरगति सूं[3] सचावै।
समवसरण में इंद्र जू[4] आवै, तांडव नृत्य रचावै।

---

६२ : १. प्रति 'ग'—गुणकारी। २. प्रति 'त' एवं 'न'—मनूं।
३. प्रति 'ग' एवं 'त'—मरिवे। ४. प्रति 'ग' एवं 'त'—वस्तु।
५. प्रति 'त' एवं '[illegible]'—स्याद्वादमय। ६. प्रति 'ग'—सब।
७. प्रति 'ग'—वेमत। ८. प्रति 'ग'—बहोया। ९. प्रति 'ग'—लगाया।
१०. प्रति 'ग'—अब। ११. प्रति 'ग'—विसरूं।
१२. प्रति 'त' एवं 'न'—निके। १३. प्रति 'ग'—सुख।

एक महूरत चित्त रोकि कर[४], ध्या लै करि मेरा कहनां।
'पारस' जिन भजिया तिनका धनि, पच्च महूरत दिन महिनां[५] ॥६०॥

राग धनाश्री

(६१)

तुम बिन[१] को तारै जिनराज ॥टेक॥
तुमरे दरसन[२] तैं अघ नांसत,[३] बढत पुण्य बिसतार[४]।
जाके नाम मंत्र तै उबरे,[५] अंजन से अघ भार।
स्वान सिंघ अहिन कुल व्याघ्र कपि राजत स्वर्ग मझार।
अधम उधारक बिरद[६] जानि कैं,[७] सरन गह्यो निरधार।
'पारसदास' होय जिन तुमरो, तुम तैं करत पुकार॥

राग पूर्वी चैती गौड़ी

(६२)

शिव सुषकारी[१] मैंनूं[२] जिनमत पाया ॥टेक॥
नय प्रमाण करिवे[३] वस्तु[४] स्वरूप लषाया।
स्यादवादमयी[५] थाया ॥१॥

---

६० : १. प्रति 'त' एवं 'न'—हि। २. प्रति 'ग्र'—तिर।
३. प्रति 'ग्र'—ज्ञानी। ४. प्रति 'ग्र'—कै।
५. प्रति 'ग्र'—महिना।—प्रति 'ग्र' में 'कहनां', 'फिरनां', 'निश्चैनां' आदि अन्त्यानुप्रास में अनुनासिकता नहीं है।

६१ : १. प्रति 'ग्र'—विन। २. प्रति 'ग्र'—दर्शन।
३. प्रति 'ग्र'—नाशत। ४. प्रति 'ग्र'—विस्तार।
५. प्रति 'ग्र'—उंवरे। ६. प्रति 'त' एवं 'ग्र'—विरद।
७. प्रति 'ग्र'—कै।

रागादिक कछु दोष न जामैं, गुण अनंत के कोप[8]
ध्याय भवि मुक्ति लयी[9] ।
'पार्श्वदास' जाचै[10] जिनपति सूं, तुम मम भेद नसाय,
बड़ी एक[11] चाय ययी[12] ।

(६६)

भजि मन श्री जिन, श्री जिनदेव ॥टेक॥
राग दोष मद मोह क्रोध वसि आन देव मति सेव ।
ब्रह्मा[1] विष्णु[2] महेस काम वसि,[3] ताहि[4] हर्यो इन एव ।
दोष अठारा रहित विराजै[5] गुण छयालीस[6] स्वमेव[7] ।
सव[8] कुदेव दीसत विकार[9] मय, सांति मूर्ति, जिनदेव ।
'पारस' मुक्ति पंथ दरसावक, श्री जिनेंद पद ध्येव[10] ।

---

६५ : १. प्रति 'अ'—लेवे । २. प्रति 'अ'—नीद ।
३. प्रति 'अ'—माय । ४. प्रति 'अ'—बहु ।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—भान । ६. प्रति 'अ'—रवि ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—तेजमई । ८. प्रति 'त' एवं 'न'—कोप ।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—लई । १०. प्रति 'अ'—जाचत ।
११. प्रति 'त' एवं 'न'—मम । १२. प्रति 'त' एवं 'न'—यई ।

६६ : १. प्रति 'अ' एवं 'त'—ब्रह्मा । २. प्रति 'अ' एवं 'त'—विष्णु ।
३. प्रति 'अ'—वसि । ४. प्रति 'अ'—ताप ।
५. प्रति 'अ'—विराजै । ६. प्रति 'अ'—छयालीस ।
७. प्रति 'अ'—गुमेव । ८. प्रति 'अ'—सव ।
९. प्रति 'अ'—विकार । १०. प्रति 'अ'—ध्येय ।

अलय्या बिलावल जलद तितालो

(६७)

ज्ञान री रीति निहारी,
मैं कैसें कहि समझावूं अब रे[१] सरावूं,
जोति ज्ञान री जिन उर जागी, तीन लोक भयो लपावूं[२]।
तीन काल संबंधी[३] जीव की परणति न रहो[४] छिपावूं[५]।
'पारस' तब अनंत सुष[६] बिलसै,[७] याही कूं सिर नमावूं[८]।

राग धनाश्री

*(६८)

हे जी मोकूं सुरति तिहारी सय्यां हो नैनां लागी।
जब सैं चढ़े गिर सुधि हूं ना लीनी तुम नैं पीया।
हम सैं तजी रति शिव सैं जो कीनीं जानी जीया।
हम न तजैं तुमैं 'पारस' रहिहै संजम लीया।

राग चैती गौडी

(६९)

रे मन भजि लै श्री जिन नाम आन काम सब षाम रे ॥टेक॥
सास सास में आयु[१] घटत है कर लेवै सो काम; रे।
श्रवण मात्र तैं स्वान भयो सुर नर पावै शिव धाम रे।

---

६७ : १. प्रति 'अ' —र।
२. प्रति 'अ'—लखावूं।
३. प्रति 'अ'—संवंधी।
४. प्रति 'अ'—रहा।
५. प्रति 'त'—छिपाव।
६. प्रति 'अ'—सुख।
७. प्रति 'अ'—बिलसै।
८. प्रति 'अ'—नमावं।

६८ : *यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

अंजन से अघ भंजित ततक्षण पायी[2] है शिव वाम[3]।
'पारस' इम निश्चै करि जिन भजि यो ही काम अभिराम ॥

राग गौड़ी

(७०)

नमूं ये नमूं हे नमूं हे नमूं पारस जिनराय नमूं ॥टेक॥
वामानंदन[1] हौ[2] जगवंदन कमठ किये दुठ तैनें[3] चलाय।
जाकूं वंदत त्रभुवनपति नितिं पूजत है सुरपति उमगाय।
बिघन[4] विनासक[5] हो जगनायक, भव्यनि कूं मन वांछित[6] दाय।
पार्श्वदास तुम भक्ति चहत इक भक्ति विनां[7] क्षण मैं अकुलाय।

राग विलावल को सड़पड़दो

(७१)

मेरे ध्यान नांथ तुमरो।
हो मैं तेरै नाल राजि[1] ॥टेक॥
वांनो[2] तेरी सुंन्या सूं उद्धार ह्वै अधम रो[1]।
जांनी[3] मैं महिमा तेरी, कर मेटि दियो जम रो।
'पारस' अरज करै है भव जाल काटि हमरो[4]।

---

६९ : १. प्रति 'अ'—श्राय। २. प्रति 'अ'—पाई।
३. प्रति 'अ' एवं 'त'—वाम।

७० : १. प्रति 'त'—वामानदन। २. प्रति 'त' एवं 'न'—है।
३. प्रति 'अ'—तैनं। ४. प्रति 'अ' एव 'त'—विघन।
५. प्रति 'अ'—विनाशक। ६. प्रति 'अ'—वंछित।
७. प्रति 'अ'—विना।

७१ : १. प्रति 'अ'—राजो। २. प्रति 'अ'—वानी।
३. प्रति 'अ'—जानी। ४. प्रति 'त' व 'न'—जम रो।

इमन जलद तितालो

(७२)

रे मन श्री जिनराज भजो रे,[१]

देह सूं[२] नेह तजो रे ।।टेक।।

माता को रुधिर पिता[३] कौ वीरज, इन हीं तैं उपजो रे ।

सप्त धातुमय विष्टा[४] मंदिर, देषत ग्लानि पजो रे ।

दश द्वारनि करि श्रवत पूति नित, सज्जन कूं नमजो ।

या तैं ममत छांडि कैं[५] 'पारस' सेवा भक्ति सजो[६] ।

राग इमन

(७३)

जो मैं रिझावूं मेरे प्रभु कूं, श्री जिनवर कूं ।

सो प्रभु मोहि[१] देवै निज सुष[२] और ज्ञान संगति ।।टेक।।

तास लख्यो तिन जान्यो[३] सर्व[४] अतीत, अनागत जात

और ये परसंगि रंगति[५] ।

तासु ज्ञात मम बिघन[६] सव[७] बिलात,[८] पिता[९] मात और

ये सकल कुसंगत ।

---

७२ : १. प्रति 'अ'—रै । २. प्रति 'अ'—सैं ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—पीता । ४. प्रति 'अ' एवं 'त'—विष्टा ।
५. प्रति 'अ' एवं 'त'—कैं । ६. प्रति 'त' एवं 'न'—रजो ।

तानुध्यात सुर मुनि दिनरात, ध्यावत होत प्रभात सो
दे पारस संमत ।

राग ईमन कल्याण

(७४)

नृत्य करत सुरपति चटमट सूं, रपट झपट संगीत प्रीति सूं,
थे इक तत था थे इक तत था[1] ।टेक।।
उगटत सची त त त त्थेई, थेई,
झं झं झं झं थिरक लै थिरक गिनक गिनक लै,
दिग दिग दिग दिग तायुंगा तायुंगा, ताता चलत सुलफ गति ।
बाजत मृदंग[2] धो धोकट धो धोकट,
धांकट धांकट ध ध प प घु घु र धिनन्ना धिनन्ना,
गिनक गिनक तागड़ती तुमगड़ती तागड़ती तुमगड़ती, परन परत ।
अति सार लिये रीति गान[3] की बड़ी,
भगति री पन लै 'पारस' अस्वसेन[4] घर जन्मे,
जिन पति यो सिद्धि श्री मेरे पती ।

---

७३ : १. प्रति 'प'—मोद ।
२. प्रति 'प'—सुरा ।
३. प्रति 'प' एवं 'स'—जान्यो ।
४. प्रति 'प' एवं 'स'—सर्व ।
५. प्रति 'प'—'राग रच्यो…… संगति' पंक्ति नहीं है ।
६. प्रति 'प' एवं 'स'—विपन ।
७. प्रति 'प'—सब ।
८. प्रति 'प'—विमान ।
९. प्रति 'प'—दिन ।
१०. प्रति 'स' एवं 'प'—सुरपति ।

७४ : १. प्रति 'प'—'था' का लोप ।
२. प्रति 'प' एवं 'स'—मृदंग ।
३. प्रति 'प' एवं 'स'—ज्ञान ।
४. प्रति 'प'—अश्वसेन ।

राग ईमन कल्याण

(७५)

आयो नी मैं तैंडे मिंदरवा[1] ।
तैंडे सानूं लागीलो मोरा नेह ।।टेक।।
पावां आंत मैंडे[2] सटकत अब, सब पूज्यां तैंडे मोहनो पलाईलो ।
सुमरण कीयां तैंडे, गटकत[3] निज रुप[4] सूझा गैनूं तूं ही शिवदायीलो ।
'पारस' विन[5] तैंडे भटकत भव वन[6] सांचा तैंनूं ध्यायां[7] शिवजाईलो ।

राग ईमन

(७६)

जादू वंस[1] वारा सावरा हमारा चितवन तें अब खोया ।।टेक।।
अब[2] मैं याहि मनावूं सजनीं[3] री, ध्यान धारि उर धोया ।
अजपा जाप जपूं[4] मोरी सजनीं,[5] निरुपम गुणनिधि जोया ।
'पारस' धनि[6] यह अवसर सजनी री निश्चै शिव तरु बोया[7] ।

---

७५ : १. प्रति 'त' एवं न'—मंदरिया । २. प्रति 'अ'—मेरे ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—गत । ४. प्रति 'अ'—सुख ।
५. प्रति 'अ'—विन । ६. प्रति 'अ' एवं 'त'—वन ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—ध्यायें ।

७६ : १. प्रति 'अ' और 'त'—जादूवंस । २. प्रति 'त'—अब ।
३. प्रति 'अ'—सजनी । ४. प्रति 'त' एवं 'न'—जपू ।
५. प्रति 'अ'—सजनां । ६. प्रति 'अ'—धन ।
७. प्रति 'अ'—वोया ।

राग ईमन

(७७)

म्हे तौ थारा चरण उपासी, म्हांनै[१] त्यारो हो नाथ ।।टेक।।
हम हैं पतित पतित पावन तुम करुणां[२] धरम[३] तिहारो ।
हम हैं भक्त भक्त वच्छल तुम, अपनों जानि उवारो[४] ।
चित्त निरोधि कें[५] निज लय लागे, कमठ कियो अघ भारो ।
मन अडोल मेर सम कीनो परम पिमां[६] उर धारो ।
अंजन कों अघ भंजन कीनों,[७] वारिषेण दुष[८] टारो ।
मरकट स्वान सुरग सुप थायो, अब[९] कै हमारौ है वारो[१०] ।
मिथ्यातम मम गयो है अनादी, सम्यक भयो है उजारो ।
पार्श्वदास चरनन रो चेरो, आवागमन निवारो ।

राग काफी

(७८)

जिनमत तें अजहू न जानां,[१] ।
फिरै डावांडूल दिवानां ।[२] ।।टेक।।
श्रावक अरु मुनी[३] भेष धारि कैं मानत है शिव वाना[४] ।
ये सब[५] है व्यवहार[६] कथन, निश्चै का कथन नहीं[७] जाना ।
वृथा[८] ता बिन[९] लिंग नाना ।
यह[१०] तौ लिंग[११] देहाश्रित सब[१२] ही, देह अचित निदाना ।

---

७७ : १. प्रति 'अ'—म्हानैं ।
२ प्रति 'अ'—करुणा ।
३. प्रति 'अ'—धर्म ।
४. प्रति 'अ'—उवारो ।
५. प्रति 'अ'—कै ।
६. प्रति 'अ'—क्षमा ।
७. प्रति 'अ'—कीनो ।
८. प्रति 'अ'—दुख ।
९. प्रति 'अ'—अव ।
१०. प्रति 'अ'—वारो ।

चेतन दर्शन[13] ज्ञान चरणामय रतन[14] त्रय, शिव थांना।
समभि निश्चै[15] परवाना।
जड़ प्रवृत्ति तै शिव नहिं होहै, परमारथ[16] किम पानां।
भांकत[17] रहु परमारथ मावूं, यूं व्यवहार प्रामना।
नहीं लिंग त्रथा[18] वषानां।
पार्श्वदास अध्यातम समुझो जिम होवै सुरझाना[19]।
बिन[20] अध्यातम कार्य व्रथा, सब[21] याही तै सफलाना[22]।
साध्य के साधन बानां[23]॥

राग काफी*

(७९)

जिनराज बिना[1] दुख कोंन हरै संसार भ्रमन को ॥टेक॥
सकल जीव वसि कर्म डुलत है, रुलत चतुर्गति मांय।
सहै दुष जन्म मरण को।

---

७८ : १. प्रति 'अ'—जाना।
२. प्रति 'अ'—दिवाना।
३. प्रति 'अ'—मुनि।
४. प्रति 'अ'—वाना।
५. प्रति 'अ'—सब
६. प्रति 'न'—व्यवहार।
७. प्रति 'अ'—नहि।
८. प्रति 'न'—बृथा।
९. प्रति 'त' एवं 'अ'—विन।
१०. प्रति 'अ' एवं 'न'—येह।
११. प्रति 'अ'—लंग।
१२. प्रति 'अ'—सव।
१३. प्रति 'अ'—दरसण।
१४. प्रति 'अ'—रत्न।
१५. प्रति 'त'—निश्चय,
१६. प्रति 'न'—परसारथ।
१७. प्रति 'अ'—झाकत।
१८. प्रति 'अ'—व्रथा।
१९. प्रति 'अ'—समुझाना।
२०. प्रति 'अ'—विन।
२१. प्रति 'अ'—सव।
२२. प्रति 'अ'—सफ़लाना।
२३. प्रति 'अ'—वाना।
१९–२३ प्रति 'त' में अन्तिम दो पंक्तियां छूट गई हैं।

पुण्य उदै मानुष[2] कुल उत्तम पाय न रहो प्रमाद।
गहौ जिन चरन सरन को।
पशु पंछी लहि सरन भये सुर, क्यों न लहैं सम्यक्त[4]।
सहित नर मुक्ति गमन को।
पार्श्वदास जाचत त्रभुवनपति निस दिन दीजिए नाथ।
मोहि तुम सरन त्रन को।

राग काफी

(८०)

साधरमीं[1] को संग सुहावै, या जग मैं कछु और न भावै।
तत्वारथ की कथनी जिन तैं वस्तु[2] स्वरूप यथोक्त लपावै।
अनादि काल की मिथ्या मति के सदेह[3] सर्व[4] जनम के पलावै।
नय प्रमाण निक्षेप रूप जिनवांणी सांची उर मैं जचावै।
विष एकांत मूढ या जिव[5] कूं, स्यात्पद मीठो अमृत पावै।
राग द्वेष जुत मूढ जीव कूं, स्वस्वरूप सांचो समुझावै।
त्याग उपादेय[6] हित औ अहित कूं, कृपा रापि करि शुद्ध वतावै।
विषय[8] कषाय फांसि[9] फसिये कूं, जग जिय फेरि फसावै।
'पारस' साधरमी[10] विन जग मैं, मिथ्या लति तैं को सुरझावै।

---

* प्रति 'त' में यह पद नहीं है।
१. प्रति 'अ'—विना।
२. प्रति 'न'—मानुख।
३. प्रति 'अ'—शरन।
४. प्रति 'न'—श्रद्धान।

८०: १. प्रति 'अ'—साधरमो।
२. प्रति 'त'—वस्त, प्रति 'न' वस्तु।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—संदे।
४. प्रति 'न'—सर्व।
५. प्रति 'त'-जिन, प्रति अ-जीव।
६. प्रति 'अ'—उपादे।
७. प्रति 'अ'—सुद्ध।
८. प्रति 'न'—विषय।
९. प्रति 'न'—फासि।
१०. प्रति 'अ'—सार्धर्मी।

मेरा धन्य भाग्य धनि दिवस महूरत दरस करत,
धनि धरोक पाइ[५] संपति त्रभुवन तनी।
मेरा अघ टारो सुष[६] दीजिये स्वांमी, तुम शिव सुष के[७] षनी[८]।
नमावूं मस्तक सुभ थुति भनी।
संमत उगणीसैं[९] सतरा फागुण वुदि तेरसि[१०] वनीं।
कि[११] पारस वंदै सुर नर फनी।

राग काफी

*(८५)

मांनों मानू जी पिया साजनवा मोरा हो ।।टेक।।
जानों जानों जी, जैसा मनवा मोरा हो।
तानों ता नूं जी सय्यां संजमवा तोरा हो ।।१।।
आनों वानों जी, जहां पारसवा भोरा हो ।।२।।

---

८४ : १. प्रति 'त' और 'अ'—वनी। २. प्रति 'अ'—कायी।
३. प्रति 'अ'—ब्रह्मा। ४. प्रति 'त' और 'न'—तेहे।
५. प्रति 'अ'—पाई। ६. प्रति 'अ'—सुख।
७. प्रति 'अ'—सुख। ८. प्रति 'अ'—खनी।
९. प्रति 'अ'—उनीसै। १०. प्रति 'त'—तेरस।
११. प्रति 'अ'—क।

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

राग पमावच

(८६)

श्री जिनवर सुपकारी,[१] मेरे दुपहारी[२] ॥टेक॥
इंद्र नरेंद्र फनेंद्र नमत निति,[३] मुनि जन निज[४] चित्त धारी।
अंजन आदिक अधम उधारे, वारिखेण[५] दुप टारी।
'पारस' मन वच तन करि सुमरत वधू[६] न वरै शिवनारी।

राग पमावच

*(८७)

आदि जिनेस ऋषभ जिनेस राजि रो दरस प्यारो लागे छै ॥टेक॥
थारो मुपचंद हगन तैं निरपत, मिथ्या मत तम भागे छै।
मुक्ति वधू कू वरत भविक जन, जे तेरे रग पागे छै।
मोहनींद तैं सूतो जीवरो, आतम हित प्रति जागे छै।
क्रोध लोभ छल मान विषय मंद तदिही यो मन दागे छै।
पार्श्वदास प्रभू रावरी सरण गहि, सव मिथ्यामत त्यागे छै।

---

८६ : १. प्रति 'अ'—सुपकारी। २. प्रति 'अ'—दुसकारी।
३. प्रति 'अ'—निति। ४. प्रति 'त' और 'न'—निन।
५. प्रति 'अ'—वारिषेण। ६. प्रति 'अ'—वधौं।
७. प्रति 'अ'—वरै।

*यह पद प्रति 'अ' में नहीं है।

पमावच, रूपक तितालो

(८८)

देखो[1] सेवा देवी सुत राजै छै ।।टेक।।
प्रातिहार्य करि सोभित अति ही मोह करम लखि[2] लाजै छै।
मंगल द्रव्य प्रभू को[3] निरखत, असुभ करम सब भाजै छै।
'पारस' जिन पद सरन गही ते, अष्ट करम परि भाजै छै।

राग काफी

(८९)

अब मेरे पारस नाथ सहायो[1]।
सब[2] संबंध[3] दुखदायी[4] ।।टेक।।
तन धन और कलत्र थिर नायी मात तात सुत भाई।
ज्यों तरु पंछी मिलत रैणि मैं, सूवै[5] होत जुदाई।
जो दीसे सो नश्चै विनसत,[6] काहे ममत कराई।
सुभ संजोग असुभ दोवू[7] पर तैं, निश्चय तैं न मिलाई।
मै सब देखन जानन हारो नभ वत नां लपटाई।
जब लग बसु[8] विधि[10] नास[11] करूं मैं, तब[12] लग करहु[13]
सुनाई[14]।

---

८८ : १. प्रति 'अ'—देखो। २. प्रति 'अ'—लखि।
३. प्रति 'त'—के।

नय व्यवहार तैं अरज करत हू सुत ९स १५त ..२ ।

तुम पद भक्ति दीजिये अहनिसि, अंतिसमाधि दसाई[16] ।

पमावघ

*(९०)

हो वराजोरी मोह मतिया मरोरी ।।टेक।।

देखो देखो सारी मोरी सुधियां विसरि गई वतियां चटक गई,

ऐसी कहा करत ठगोरी ।

येती चउगतिया भमायो, तेरी सेवा विना वतिया कठिन मिली ।

जैसी महासुख निधि चोरी ।

याही के प्रसाद पिछानें प्रभू, 'पारस' कुमति विघटि गई,

लैसो महा सुगति अभोरी ।

---

८९ : १. प्रति 'अ'—सदाई, प्रति 'त'—सदायी । २. प्रति 'अ'—सव । ३. प्रति 'त' एवं 'न'—सनमद । ४. प्रति 'अ'—दुखदाई । ५. प्रति 'अ'—सूवैं, प्रति 'त'—सुबैं । ६. प्रति 'अ'—विनसत । ७. प्रति 'अ'—दोऊं । ८. प्रति 'अ'—देखन । ९. प्रति 'अ'—वसु । १०. प्रति 'अ'—विधि । ११. प्रति 'अ'—नाश । १२. प्रति 'अ'—तव ! १३. प्रति 'अ'—कमहु । १४. प्रति 'अ'—सुनायी । १५-१६. प्रति 'अ'—मायी, दसायी ।

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है ।

राग पमावच

*(९१)

अरे टोंना वा मोह कैसा कीना।
हो मेरी मति तजत न मान ॥टेक॥
एक तो टोंना वा क्रोधादिक चारै,
दूजे तजत न आन।
'पारस' विनवै दास तुमारे याकूं हरि दे दान।

राग पमावच

*(९२)

कैसा जादू डारा मोह मेरे कान।
जादू की पुड़िया तिय पढ़ि मारी क्या जानै जीव विचारा।
श्री जिनवानी सुन सुन त्यागी, ना जानैं हेत गवारा।
पर तजि निज पद गहा न मोंद्, 'पारस' सो लखवा न।

राग पमावच

*(९३)

कपट राखि जिनमत गह्यौ,
सयां मन कूं समझावं तोरे पया ॥टेक॥
छल वहु कीनों जिन नहि चीनो जोवन रस भीनों।
एक वार भी सांच रूप होय, वीतराग नहीं चीनों।
'पारस' अब सम्यक् दृढ़ धार्यो, शिव लूं अंतर मत कर सयां।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

राग झंझोटी

*(९४)

हो गुराजी हो म्हांका राजि,
था ही का वचन रुढा म्हाने लागै छै।
बांनी तौ जवाद्यो खानी तत्व की जनाद्यो।
रागी सग धारी तौ सुनाई वानी पोटी एकांतम तजाद्यो।
'पारस' कूं रचाद्यो निज परणति पर विरचाद्यो।

राग झंझोटी

*(९५)

असा तेरा रूप अनूपा जी,
जा में ज्ञानी विलम रहे, ध्यानी विलम रहे।
अनंत ज्ञान सुख वीरज जा में, जा में रंग न रूपा जी।
वीतराग सरवज्ञ जिनोतम, भजै राज तजि भूपा जी।
सुख नियान कृतत्य जिनोत्तम जा में छाह न धूपा।
अष्टादश नहिं दोस जास में पारस है सुख कूपा।

राग झंझोटी

(९६)

कहूं देखे[1] हो नहिं रामां[2]।
हूं[3] तौ ढूढ[4] फिरयो सब[5] धामां ।।टेक।।
गंगा जमनां और सुरसती,[6] तिरवेणी[7] गिरधामों।
कूवा[8] वापी ताल बनाया,[9] दान दिये सुप[10] कांमा[11]।

---

*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।
*यह पद केवल प्रति 'अ' में है।

जज्ञ होम तरपण तिलकादिक देव पूजि लिये नांमा[12]।
पार्श्वदास घट मैं लषि[13] लीनौं,[14] ज्ञायक जो अभिरामां[15]।

झंझोटी तितालो

(९७)

जिन बांनी[1] श्रवण निति कीजे।
या के सुनत मिथ्या बिष[2] नासत[3] ज्ञानामृत रस पीजै।
या को ध्यान धरत है गणपति, ते बसुकर्म[4] हनी जे।
भवदधि पार उतारण कारण, बानी[5] पोत गहीजे।
याही के परसाद तैं[6] हो[7] 'पारस' शिवपुर लीजे।

राग झंझोटी

(९८)

अब[1] आछ्यो अवसर पाय रे, हां रे म्हांरा जीवरा[2] जिन कूं सुमरि।
काक ताल सम जोग जानि कैं,[3] आतम हित कूं ध्याय रे।

---

९६ : १. प्रति 'अ'—देखे। २. प्रति 'अ'—रामा।
३. प्रति 'अ'—हू। ४. प्रति 'अ'—ढूंढि।
५. प्रति 'अ'—सव। ६. प्रति 'न'—सुरती।
७. प्रति 'अ'—तिरवेणी। ८. प्रति 'अ'—वापी।
९. प्रति 'अ'—वनाया। १०. प्रति 'अ'—सुख।
११. प्रति 'अ'—कामा। १२. प्रति 'अ'—नामा।
१३. प्रति 'अ'—लखि। १४. प्रति 'अ'—लीनों।
१५. प्रति 'अ' एवं 'त'—अभिरामा।

९७ : १. प्रति 'अ'—वानी। २. प्रति 'अ' और 'त'—विष।
३. प्रति 'अ'—नाशत। ४. प्रति 'अ'—वसुकर्म।
५. प्रति 'अ'—वानी। ६. प्रति 'अ'—तै।
७. प्रति 'अ'—हो।

देव नरक पशुगति मैं नांयो,[४] सो या नरभव मांय र।
'पारस' धन्नि[५] दिगंबर[६] होय कैं, संग त्यागि मुनि थाय रे[७]।

राग झंझोटी

(९९)

करि लै जिया मैं[१] तू[२] सांचो[३] ही सुमरन।
और ठौर क्यूं फिरत वावरे,[४] प्रभु के चरण चित्त धरि लै।
आलवाल[५] तै[६] होत कहा रे, जिन जापि भवदधि तरि लै।
जिन गुण संपति पाय है रे 'पारस' प्रभु पद परि लै।

राग झंझोटी

(१००)

सुनों सुनों जिन जी कैसैं कटै गति करमनि[१] को ॥टेक॥
ए तो जनम विषयन मैं पोयो,[२] प्यास मिटी नहीं भोगन की।
तप संजम की राह न जांनी[३] थिरता मांनी[४] जोवन की।

---

९८ : १. प्रति 'अ'—प्रव। २. प्रति 'अ'—जीवरा' शब्द का लोप।
३. प्रति 'अ'—कै। ४. प्रति 'अ'—नाही।
५. प्रति 'अ'—धन्य। ६. प्रति 'अ'—दिगंवर।
७. प्रति 'अ'—'रे' के स्थान पर प्रत्येक पंक्ति में 'रै' का प्रयोग।

९९ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—म। १. प्रति 'त' एवं 'न'—नुं।
३. प्रति 'अ'—साचो। ४. प्रति 'अ'—वावरे।
५. प्रति 'अ'—आलवाल। ६. प्रति 'अ'—तै।

पांच पाप दुरगति के दायक, तिन तैं नति रही मो मन की ।
'पारस' चरण सरण गहि जाचत ' प्राप्ति दीजिये मो धन की ।

राग झंझोटी

(१०१)

जीयरा हमारा विरमाया[1] मनवा हमारा विलमाया
जिन ओरी[2] हो ।।टेक।।
शांति छबी[3] थारी हो लषि[4] लषि[5] कर्म नसाया ।
मुनि जन रो उमगाया ।
सची चर्चा हो तुमि पद कमल नमाया ।
ज्ञानी ध्यानी ध्याया ।
'पारस' रपियां हो जब[6] लगि[7] शिव नहिं पाऊं तबलूं[8] सरणी आया ।

राग झंझोटी

(१०२)

मुनि भेस लिया तिन कूं नुतिया,
जारतो हैं सुर नर पग पतियां ।।टेक।।
आगी[1] अंत जिके भव संततियां[2] । तिन हूं की होत असी मतियां[3] ।

---

१०० : १. प्रति 'त' एवं 'न'—कर्मनि । २. प्रति 'अ'—खोयो ।
३. प्रति 'अ'—जानी । ४. प्रति 'अ'—मानी ।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—चाहत ।

१०१ : १. प्रति 'अ'—विलमाया । २. प्रति 'अ'—औरी ।
३. प्रति 'अ'—छवी । ४. प्रति 'अ'—लखि ।
५. प्रति 'अ'—[illegible] । ६. प्रति 'अ'—जव ।
७. प्रति [illegible] ८. प्रति 'अ'—लौं ।

पायी सफल होत मानुष गतियां[4]। राजादिक[5] सेवतु[6] है जतियां[7]।
याही तैं चहत सुर मनु गतियां।'पारस' कब[8] पावूं तार तियां।

राग झंझोटी

(१०३)

अब सन्मति[1] वर्द्धमान महावीर ध्यावूं,[2]
इन ही के ध्याये तैं मुक्ति रमनि पावूं ॥टेक॥
आन देव ध्याय भाय, मिथ्या सरधान पाय।
मिथ्या गुरु प्रचार मांय[3], नाहक भरमावूं ॥२॥
अनेकान्त जानि वानि[4], मिथ्या एकांत भांनि,
दोवू नय तैं पिछानि, स्वै पर दरसावूं ॥३॥
'पारस' न मिल्यो सुज्ञान, तव[5] लं भमियो अज्ञान,
ज्ञान ही बतायो पंथ, दृढ़ धरि उमगावूं।

---

१०२ : १. प्रति 'अ'—अ.ई। २. प्रति 'अ'—संततिया।
३. प्रति 'अ'—मतिया। ४. प्रति 'अ'—गतिया।
५. प्रति 'अ'—राराादिक। ६. प्रति 'अ'—सेवत।
७. प्रति 'अ' में जतियां, गतियां, तारतियां, पगपतियां सभी तुकान्त शब्दों में अनुनासिकता का लोप।
८. प्रति 'अ'—कव।

१०३ : १. प्रति 'अ' - सनमति। २. प्रति 'अ' में ध्यावूं, पावूं आदि सभी तुकान्त शब्दों में अनुनासिकता नहीं है।
३. प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—वानि।
५. प्रति 'अ'—तव

(१०४)

गिर नारी मोरा सावरिया,
सव[1] राह वाट[2] मैं ढूढ[3] फिरी ।।टेक।।
जंगल जंगल सुधि सांज भयी,[4] सव ही ढूढी वन की गलियां
सेषावन की सघन भूमि मैं, भूपन वसन[5] का तजन किया।
लौकान्तिक[6] मुष[7] सुनि कै प्रसंसा, पांच महाव्रत[8] धारि लिया।
अब हम हूं संगि संजम धरिहैं, गृह सेती मन पैंचि लिया।
पिय कै संगि अब हूंगी[9] 'अरजिका' तप तपनें मैं होत जिया[10]।
तप हित सुरपति नर भव चाहत,[11] सो तो व्योत अव[12] सहज भया।
'पारस इम निश्चै करि रजमति,[13] गृह तजि संजम धार लिया।

राग झंझोटी को पडपड़दो

(१०५)

नाटक त्रय सुनतां[1] उर फाटिक सो षुलिहै।
जब[2] लग नहिं सुनिहैं भव चक्र चढे डुलिहै।।टेक।।
सप्त तत्त्व नव पदार्थ छहूं द्रव्य कूं[3] यथार्थ,
जानि कैं[4] पिछाने जीव पुद्गल इम घुलिहै।

---

१०४ : १. प्रति 'अ'—सव। २. प्रति 'अ'—वाट।
३. प्रति 'अ'—ढूढि। ४. प्रति 'अ'—भई।
५. प्रति 'अ'—वसन। ६. प्रति 'अ'—लोकान्तिक।
७. प्रति 'अ'—मुख। ८. प्रति 'अ'—महाव्रत।
९. प्रति 'अ'—खेंचि। १०. प्रति 'त' एवं 'न'—पिय कै संग मैं रहूं अरजिका, तप तपनें में रहत जिया।
११. प्रति 'अ'—चाहै। १२. प्रति 'अ'—अव।
१३. प्रति 'अ'—र

मूल वस्तु दोय सो, अनादि तैं न भेद होय,
एक से भये हैं[५] जैसें, नीर पीर तुलिहै।
हंस ही करे सो भेद, चूंच[६] विना व्रथा खेद,
'पारस' सो[७] नाटक सुनि भव वन[८] रुलिहै।

राग झंझोटी

(१०६)

समय सार कथनीं भव मथनीं हम पायी ॥टेक॥
निश्चै[२] व्यवहार[३] तैं वताय जीव तत्त्व रूप,
छांडि कै अजीव[४] तत्व, निज परणति पायी ॥१॥
कर्ता[५] और भोक्ता दो नय तैं नीकैं वताय,
ज्ञाता ही सिकार्यो पद और कछू न कांयी ॥२॥
चेतना[६] सरूप रूप[७] सकल तैं अनूप भूप,
'पारस' अनुभव[८] विचारि[९] राचो या मांयी।

---

१०५ : १. प्रति 'अ' - सुनता। २. प्रति 'अ' - जव।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—तें। ४ प्रति 'अ'—कै।
५. प्रति 'अ'—है। ६. प्रति 'अ'—चूच।
७. प्रति अ'—अग्र। ८. प्रति 'अ'—वन।

१०६ : १. प्रति 'अ'—पाई। पद के सभी तुकान्त शब्दों में से 'यी' के स्थान पर 'ई' का प्रयोग तथा पूर्ववर्ती स्वर में अनुनासिकता का लोप।
२. प्रति 'अ' एवं 'न'—निश्चय। ३. प्रति 'अ'—व्यवहार।
४. प्रति 'अ'—अजीव। ५. प्रति 'अ' एवं 'न'—करता।
६. प्रति 'अ'—चेतना। ७. प्रति 'अ'—रूप।
८. प्रति 'त'—अनभव। ९. प्रति 'अ'—विचारि।

राग झंझोटी

(१०७)

तजो जीया पर परणति दुषदांनी[1] ।
याकूं निंद्य कही मुनि ज्ञानी ॥टेक॥
या ही तैं तेरे बंध[2] परत है, जन्म मरण[3] वहु[4] ठानी ।
अंग धारि पांचू संगि रचि कें, आतम हित विसरांनी[5] ।
या जुत चारित हू नहिं[6] सोहै, द्रव्य लिंग ठहरानी ।
याहि तज्यां[7] गृह बासपूज्य[8] लषि, भाषै[9] श्री जिनवानी ।
निज परणति तैं सुषी[10] होत है, दुष[11] की नांहि[12] निसानीं[13] ।
'पारस' मन वच[14] तन करि जाचत, निज परणति शिव थांनी ।

राग झंझोटी

(१०८)

सुमति कहै घर आवो पिया, चेतन कुमति को संग तजावु[1] ॥टेक॥
कुमती कै संग[2] भ्रमे दुष भुगते, गति पायी अनचाउ रे ।
कौलूं कहूं जानें जिन स्वामी, कहनें मैं नहि आवुं रे ।
मेरो भया सुभ मिलि गयो ताकरि, यह मानुष भव पावुं रे ।

---

१०७ : १. प्रति 'अ'—दुखदानी । २. प्रति 'अ'—वंध ।
३. प्रति 'अ'—मरन । ४. प्रति 'अ'—बहु ।
५. प्रति 'अ'—विसरानी । ६. प्रति 'अ'—नहि ।
७. प्रति 'अ'—तज्या । ८. प्रति 'अ'—भामपूज्य ।
९. प्रति 'अ'—भाषै । १०. प्रति 'अ'—सुखी ।
११. प्रति 'अ'—दुष । १२. प्रति 'अ'—नाय ।
१३. प्रति 'अ'—नीसानी , १४. प्रति 'त' एवं 'न'—वच ।

मूलि कुमति संग अब मति जावो, मांनो[3] सीप सुनावुं रे।
'पारस' भव तिथि घट गयी[4] जिनकै, वे[5] नर सुमती रमाउ रे।
दोनूं[6] लोक सुधारण कारण, सुमती रचो उर नावूं[7] रे।

राग भंझोटी

(१०९)

सावरिया तेरो दरस मोय[1] भावै।
म्हारो अवागमन मिटावै ॥टे॥
जादूकुल चंद उजागर नागर सुर नर पगपति नावै।
चंद चकोर मोर घन तिमि जल,[2] यों[3] ऋषि मुनि सब घ्यावै।
तू ही बुद्ध[4] जिन पति ब्रह्मा शिव नारायन कहलावै।
न्यायवाद करतार कहत तोयै[5] कर्म मीमांसक गावै।
अलष निरंजन रूपी अरूपी, अज जन्मा दरसावै।
एकांती तेरो रूप नहिं पावै, पारस घ्यावै सो ही पावै।

१०८ : १ प्रति 'ख'—गमायूं। २. प्रति 'ख'—मांनि।
३. प्रति 'ख'—गयूं। ४. प्रति 'ख'—गई।
५. प्रति 'ख'—वै। ६. प्रति 'ख'—दोऊ।
७. प्रति 'ख'—सभी उकारान्त शब्दों के 'उ' के स्थान पर 'ओ' का प्रयोग।

१०९ : १. प्रति 'ख'—मोद। २. प्रति 'ख'—प्रति।
३. प्रति 'ग', एवं 'न'—ज्यों। ४. प्रति 'ख'—बुद्ध।
५. प्रति 'ख'—तोई।

(११०)

सांवरा मैं थारा आगम मांय पायी नाँ नय।
आगम मांय पायी ॥टेक॥
स्वातम ज्ञान मांयी, या तैं पिछानि पायी,[1] मोह कूं विडारि यायी।
आतमराम रायी, निज पर भेद भायी, लौं निज मांय लायी।
'पारसदास' ह्यांही[2] दोवू ही प्रमाण दायी पायी निज पद मांझ[3] थायी[4]।

राग जंगलो, झंझोटी

(१११)

बिगत[1] धी भव वन[2] मघ मति जाय ॥टेक॥
भव वन[3] झारी विसन[4] कटीली हारै म्हारी जीवरा रै कांटो
चुभि[5] जाय।
भव वन मैं तेरी निज निधि झंपै, हारै म्हारा जीवरा रै मोह[6]
ठगराय।
भव वन मघ मैं नारी जो नागनि[7] हारै म्हारा जीवरा रे ढसे[8]
मुनिराय।
भव वन मैं जिन पाश्वं सहयी[9] हांरे गहि लीजे रे सरण
शिवदाय।

---

११० : १. प्रति 'अ'—पाई। २. प्रति 'अ'—ह्याहीं।
३. प्रति 'अ'—माझ। ४. प्रति 'अ'—थाई।

१११ : १. प्रति 'अ'—विगत। २. प्रति 'अ'—वन।
३. प्रति 'अ'—वन। ४. प्रति 'अ'—विसन।
५. प्रति 'अ'—चुव। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—मिह।
७. प्रति 'अ'—नागन। ८. प्रति 'अ'—ढसे।
९. प्रति 'त'—सरणो इन जिन पार्श्व सहायी।

राग जंगलो, झंझोटी

(११२)

श्री जिनराज सरण तोरी आयो ॥टेक॥

अष्ट करम मोहे[1] भव भव माही[2] पर सुप साटे[3] रंक[4] बनायो।

मेरे निज गुण मोहि[5] भुला करि,[5] नाना रूप बनाय नचायो।

मेरी भूलि कहां लूं बरनूं,[6] जो कीनो सो ही दुषदायो।

अब करतव्य[7] होय सो ही कीजिये[8] पारस प्रभु चिंतामणी पायो।

जंगलो, झंझोटी

(११३)

मेरा मन लाग्या आजि जी ॥टेक॥

हे गुण निधि तेरे गुण गावत असुभ करम नसि जावे।

आन देव तै[1] काज न सरिहै,[2] तुम सेवक शिव पावै।

यह तो विरद[3] प्रभु प्रगट जगत में, तीन लोक जस गावै।

या तैं तुम पद सरण रह्यो मम, पार्श्वदास वर पावै।

---

११२ : १. प्रति 'क' एवं 'न'—मोये। २. प्रति 'क' एवं 'न'—मायी।
३. प्रति 'ख' और 'न'—पाटे। ४. प्रति 'क' और 'न'—'रंक' के पहले मोर्य शब्द अतिरिक्त
५. प्रति 'क'—कर। ६. प्रति 'क'—बरनूं।
७. प्रति 'क' एवं 'न'—करतव्य। ८. प्रति 'ख'—कीजे।

११३ : १. प्रति 'क'—तैं। २. प्रति 'क' एवं 'न'—सरिहो
३. प्रति 'क'—विरद।

जंगलो, झंझोटी

(११४)

धर्म धर्यां[१] सुष[२] पावै सुज्ञांनी[३] जीया ॥टेक॥
पंच प्रकार नरक दुष[४] दारुण सुपनैं[५] हू न लपावै।
तिरजच गति मैं नां उपजावत,[६] देव मिनप सिर नावै।
तीन लोक तिहुं[७] काल तणी[८] सुचि, चीजा भेट करावै।
'पारस' देव मिनष पग पूजै, भव सुष[९] लहि शिव जावै।

राग जंगलो, झंझोटी

(११५)

धर्म विना दुष[१] पाया अज्ञानी[२] जिया ॥टेक॥
पंच प्रकार नरक दुष[३] दारुण, नरक धरा मैं ध्याया[४]।
प्रगट देषिये तिरजंचनि मैं माता ही जणि षाया।
मानुष भव मैं दुष[५] दलद्र[६] के, रोग सोक[७] विललाया।
सुरगति मैं भी दास कर्म[८] कर, सुर त्रक मैं उपजाया।
क्रोध लोभ छल मान विषय मद पान किया दुखदाया[९]।
दम संजम की रीति न समझी, श्री गुरु बहु समझाया[१०]।
धर्म[११] वस्तु[१२] को रूप है, रतन त्रय भेद बताया।
सार जगत मैं धर्म है इक, भजल्यो मन वच काया।

---

११४ : १. प्रति 'अ'—धर्‌या। २. प्रति 'अ'— सुख।
३. प्रति 'अ'—सुज्ञानी। ४. प्रति 'अ'—दुख।
५. प्रति 'अ'—सुपनें। ६. प्रति 'अ'—उपजावैत।
७. प्रति 'अ'—तिंहू। ८ प्रति 'अ'—तनी।
९. प्रति 'अ' सुख।

या के पायें पायिये सिव[13], या विन जग भरमाया।
पार्श्वदास तिनके पद, पूजत जिन वृष दृढ़ अपनाया।

राग झंझोटी

(११६)

जिनद जी विरद सुन्यों[1] थांको[2] वांको[3]।
उपकार करो क्यूं न म्हांको[4] ॥टेक॥
अंजन से तुम अधम उधारे, कीनों सब[5] अघ सांको।
चांडाल दह मांय[6] परचा को अतिसय प्रगट्यो वांको।
रघुपति रानी परी अगनि[7] में, नाम लेय इक थांको[8]।
अगनि[10] कुंड सब जल करि डारो, जस प्रगटायो ताको।
त्यारे वहुत[11] सुनी आगम मैं कहतां अंत न जांको।
'पारस' दास कहाय कोंन[12] पैं जाय कहावूं काको।

---

११५ : १, ३, ५. प्रति 'अ'—दुख। २. प्रति 'अ'—अज्ञानी।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—पाया। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—दरिद्र।
७. प्रति 'अ'—सोग। ८. प्रति 'अ'—करम।
९. १०. प्रति 'न' में दोनों पंक्तियां नहीं हैं।
११. प्रति 'अ'—धरम। १२. प्रति 'अ'—वहत।
१३. प्रति 'अ'—शिव।

११६ : १. प्रति 'अ'—सुन्यो। २. ८. प्रति 'अ'—थाको।
३. प्रति 'अ'—वाको। ४. प्रति 'अ'—म्हाको।
५. प्रति 'अ'—सब। ६. प्रति 'अ'—माय।
७. १०. प्रति 'अ' एवं 'न'—अगिन ८. प्रति 'अ'—विधि।
११. प्रति 'अ'—वहुत। १२. प्रति 'अ'—कौण।

जंगलो, झंझोटी

(११७)

जिनवर तेरी मुद्रा मोहे[1] लागत परम रसाल ।।टेक।।

जा मैं रोग रोस नहिं किंचित तनु[2] वच सरलु दयाल।

केवू अंग बिभूति[3] रमावत मृगछाला बिकराल[4]।

केवू स्वेत पीत रक्तांबर औढ़े[5] साल दुसाल।

षात सचिक्कण मीठा भोजन, सील कहत न लजात[6]।

जिनमत मांय[7] धरत पग भोरे, यो कलि जोर विसाल।

जातरूप जिन केरी मुद्रा ह्यां नहीं लगत कुचाल।

'पारस' तैरे पंथ चलत गुरु ते[8] उर वसहु[9] त्रकाल।

जंगलो, झंझोटी

(११८)

जिनवर तेरी श्रुति नें मोहे[1] शिव मघ दीयो[2] बतलाय[3] ।।टेक।।

कुगुरु कुदेव कुधर्म सेय करि, नाहक जग भरमाय।

व्यंतरादि[4] देवनि मैं कुत्सित, पूजे भक्ति बढ़ाय।

प्रगट संग निग्रंथ पंथ गुरु, यो कलिकाल सहाय।

---

११७ : १. प्रति 'अ'—मोयँ। २. प्रति 'अ' एवं 'न'—तन।
३. प्रति 'अ'—विभूत्ति। ४. प्रति 'अ'—विकराल।
५. प्रति 'अ'—ओढे। ६. प्रति 'अ'—लजाल।
७. प्रति 'अ'—मांहि। ८. प्रति 'त' एवं 'न'—वे।
९. प्रति 'अ'—वसहु।

दया धर्म कहि पोषत हिंसा, श्रुति तैं नाहि[५] मिलाय।
'पारस' धन्य तज्यो कुसंग जिन, तेरे पंथ चलाय।

राग जंगलो

(११९)

अंतर दा पट पोलो[१] जी जीया मोरा ॥टेक॥
चेतन रूप ज्ञान घन तोरा जड़ संगि करत किलोरां।
जड करि संगति बहु दुप[२] भोगे, आपर[३] रह्[४] गये कोरा जी।
जड़ संगत[५] तजि निज रति धरि, 'पारस' नेवा करत निहोरा।

झंझोटी

(१२०)

मेरे जिनराज देव और नाहि[१] कोयी[२] ॥टेक॥
आन देव राग द्वेष[३] मोह कर्म वसि[४] लपात[५]।
कर्मनि परिमेष मारि जिनपति भयो योयी।
कर्मनि को घेर माय घेर रह्यो चहूं[६] ओर,
इन तें छुडवाय नाथ कीजे[७] तुम सोयी।

---

११८ : १. प्रति 'अ'—मोयँ। २. प्रति 'अ'—दियो।
३. प्रति 'अ'—बतलाय। ४. प्रति 'अ' – मितंरादि।
५. प्रति 'अ'—नांय।

११९ : १. प्रति 'अ'—खोल। २. प्रति 'अ'—दुख।
३. प्रति 'अ'—आंखर। ४. प्रति 'अ'—रहि।
५. प्रति 'अ'—संगित, प्रति 'न'—संग।

तुम ही सरबज्ञ[8] प्रभू वीतराग दयासिंधु,[9]
तुमरी जो भक्ति करै, सुरपति ह्वै वोयी[10]
मो तै कछु भक्ति बनत ता करि फल जाचत हूं[11],
जौ लू[12] शिव होय तितै[13] भक्ति ही रहीयी।

राग जंगलो

(१२१)

जिया पुदगल तें रति छोर[1] रै जिया ।।टेक।।
याके संग अनादि काल को भ्रमत[2] फिर्यौ जिम ढोर रै।
तू चेतन ज्ञायक तन जड़ है, यह संजोग मरोर रै।
अब[2] सिव[3] चाह बसै[4] घट माहीं, पार्श्व चरण चित जोर रै।

---

१२० : १. प्रति 'अ'—नांय। २. प्रति 'त' और 'न'—कोई।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—दोष। ४. प्रति 'अ'—वसि।
५. प्रति 'अ'—लखात। ६. प्रति 'अ'—चउ।
७. प्रति 'अ'—कीज्यो। ८. प्रति 'अ'—सर्वज्ञ।
९. प्रति 'अ'—पदैयासिंधु। १०. प्रति 'अ'—वोई।
११. प्रति 'अ'—है। १२. प्रति 'अ'—लूं।
१३. प्रति 'अ'—तितें।

१२१ : १. प्रति 'अ'—छोरि। २. प्रति 'अ'—भ्रम्यो।
३. प्रति 'त'—शिव। ४. प्रति 'अ'—वसै।

जंगलो तितालो

(१२२)

जानी हम वे मुष देपें की प्रीति ॥टेक॥
हम तो जानें पीया द्वार पधारे, मुड़ि गये यह कहा नीति[1] ।
मुक्ति सपी सें नेह लगायो, हम सें तोरी रीति ।
'पारस' इम कहि रजमत तप करि, सुरपति भई विधि जीति[2] ।

राग जंगलो को ठूमरी

*(१२३)

परधिया करि कै भूलि शिव तिय ना मिलैगी रे ॥टेक॥
कुगति की दूती सुगति की वैरन सुगर सुनाये तोये वोल ।
गये जायगे निज धी तें शिव तू विच हिय में तोल ।
'पारस' या विन जग भरमत है याहि गही नें जान श्रमोल ।

राग जंगलो

(१२४)

जिनराज भजन तैनें क्यों न किया[1] ॥टेक॥
श्रति दुलल्भ नर[2] जन्म[3] पाय कें विषयन[4] में कहा चित दिया ।
इनके भोगे तृप्ति न श्रावै, जिन भजिया होवे मुक्ति पिया ।
'पारस' पाय जोग यह नीको, जिन जपि[5] कर ल्यो शुद्ध हिया ।

---

१२२ : १. प्रति 'श्र'—रीति । २. प्रति 'त'—पारस इम लपि रजमति तप धरि सुर भयी है विधि चीति ।

*यह पद केवल प्रति 'श्र' में है ।

१२४ : १. प्रति 'श्र'—कीया । २. प्रति 'श्र'—जिन ।
३. प्रति 'श्र'—धर्म । ४. प्रति 'श्र'—विषयनि ।
५. प्रति 'श्र'—भजि ।

राग जंगलो तथा कहरवो

(१२५)

सरन गही मुझि[1] तारिहौ[2] प्रभू[3] जी ॥टेक॥
आन देव मैं भूलि न सेवूं, तुमरे वच उर धारिहौ।
तुमरो ध्यान धरत है ते नर, सुर होवै दुष[4] टारिहौ।
'पारस' चाहत[5] है तुम सेती द्यो शिव पद अघ जारिहौ[6]।

जंगलो, झंझोटी

(१२६)

साथी कोयी नहीं एकाकी है तिहुंकाल ॥टेक॥
एक हि जन्मैं मरै एक ही[1] एक पुण्य विसाल।
एक हि चक्रवर्ति सुख भोगै एक हि हस्तकपाल[2] ॥१॥
एक हि जाय बसै[3] सुरपुर मैं, एक हि मझ[4] पाताल।
एक हि बाल[5] जवान एक ही, काटै कर्म जंजाल[6] ॥२॥
मात तात अर बंध[7] तिया सुत, सब चलिहै निज चाल[8]।
पास मुक्ति होय तब एक हि, झूठा है सब ख्याल[9] ॥३॥

---

१२५ : १. प्रति 'अ'—मुझे। २. प्रति 'त'—तारिहो।
३. प्रति 'न'—प्रभु। ४. प्रति 'अ'—दुख।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—चाहतु ६. प्रति 'त'—जारिहो।

१२६ : १. प्रति 'त'—मरण करत इक' २. प्रति 'त'—एकहि चक्रवर्ति तीर्थं कर इक दुष भोगै बाल।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—वसै।
४. प्रनि 'अ'—मध्य। ५. प्रति 'अ'—वाल।
६. प्रति 'त' में दूसरा चरण प्रथम चरण से पहले है। ७. प्रति 'अ' एवं 'न'—वंध।
८. प्रति 'त'—"मात......निज चाल" पंक्ति का लोप। ९. प्रति 'त'—पारस शिव पावै तब एक हि झूठा जग जंजाल।

राग जंगलो

(१२७)

तारनां वे जनम जलधि की धारा ।।टेक।।

आप तो सय्यां पार उतर गये हो हम भी किंकर थारा।

आप तो अनंत चतुष्टय जुत[१] भये हो, हमरे अब क्यूं नै टारा।

आप तो सिव[२] सुष[३] अमृत पी रहे हो, हम कूं क्यूं[४] जल पारा[५]।

आपको[६] 'पारस' दास कहावत,[७] इतनो लेहु विचारा[८]।

राग जंगलो, झंझोटी

(१२८)

जीया सीष[१] सुगुरु दी मानि रे ।।टेक।।

पांचे पाप दुरगति की पौरी, विसन[२] विगारे[३] बानि[४] रे।

गुरु सिख्या[५] गहि लेहु नियम तें, है निज सुष की पानि[६] रे।

ये सिष्या परमार्थ जानि कै, 'पारस' दृढ़ करि आनि रे।

---

१२७ : १. प्रति 'त'—चतुष्टजुत। २. प्रति 'त' एवं 'न'—शिव।
३. प्रति 'अ'—सुख। ४. प्रति 'त'—क्यों।
५. प्रति 'अ'—खारा। ६. प्रति 'अ'—कू।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—में 'कहावत' के बाद 'हो' शब्द अतिरिक्त। ८. प्रति 'अ'—विचारा।

१२८ : १. प्रति 'अ'—सीख। २. प्रति 'अ'—विसन।
३. प्रति 'अ'—विगारै। ४. प्रति 'अ'—यानि।
५. प्रति 'त'—सिक्षा। ६. प्रति 'अ'—खानि।

राग जंगलो, झंझोटी

(१२९)

नैंनां पाय[1] लगे हैं तुमारे ।।टेक।।

अष्ट द्रव्य तैं पूज[2] रचावूं वैनां[3] धारूं जो हिरदै हमारे ।

आन देव मैं भूलि न सेवूं, वे[4] तौ विकट स्वरुप[5] अकारे ।

'पारस' धन्य दिवस धनि[6] घड़ि[7] पल पद परसे प्रभु थारे ।

राग झंझोटी

(१३०)

आतम कथा विनां[1] सब[2] व्रथा ।।टेक।।

जप तप संजम दान क्षमादिक सून्य अंक विन यथा ।

ग्यारा[3] अंग पढ़े नहिं सुरझे, नां[4] जांनी[5] निज प्रथा ।

कुंदकुंद स्वामी इत्यादिक, तिन की सांची[6] संथा ।

समयसार के रहस्य पिछानत ते निश्चै शिव कथा ।

'पारस' अध्यातम रस चाषो या तैं सुधरै पंथा ।

---

१२९ : १. प्रति 'अ'— पाये । २. प्रति 'अ'—पूजा ।
३. प्रति 'अ'— बैना । ४. प्रति 'अ'—ये ।
५. प्रति 'अ'—सरूप । ६. प्रति 'अ'—धन्य ।
७. प्रति 'अ'— घडी ।

१३० : १. प्रति 'अ'—विना । २. प्रति 'अ'—सव ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—ग्यारा । ४. प्रति 'अ'—ना ।
५. प्रति 'अ'—जानी । ६. प्रति 'अ'—साची ।

राग अडाणो

(१३१)

जिन मेरी वीनतड़ी[1] अवधारि ।।टेक।।
अष्ट करम मोहे[2] दुष[3] देवत है इनको संग निवारि[4] ।
जिनवर नाम कहावत तुम ही, दुष्ट करम कूं जारि ।
अन्य देव[5] वसुविधि[6] वसि[7] भरमत तुम ही तारनहार[8] ।
'पारसदास' तिहारो किंकर सब परफंद विडारि[9]

राग अडाणो

(१३२)

रूप पिछाणों जी चेतनां[1] गुणवारी को ।।टेक।।
दरसन ज्ञान चरण अगुणातम समल रूप व्यवहारी[2] को ।
निश्चै दृष्टि एक रस चेतन, भेद रहित अविकारी[3] को ।
सम्यक दसा प्रमाण उभै नय, निर्मल समल उचारी को ।
यों समकाल जीव की परणति 'पारस' लपि[4] जगतारी को ।

---

१३१ : १. प्रति 'म'—वीनतड़ी । २. प्रति 'म'—मोये ।
३. प्रति 'म'—दुख । ४. प्रति 'म'—निवार ।
५. प्रति 'म'—देव । ६. प्रति 'म'—वसुविधि ।
७. प्रति 'म'—वसि । ८. प्रति 'म'—तारनहार ।
९. प्रति 'म'—विडारि ।

१३२ : १. प्रति 'म'—चेतना । २. प्रति 'ख' एवं 'म'—व्यवहारी ।
३. प्रति 'म'—अविकारी । ४. प्रति 'म'—लखि ।

राग अडाणो

(१३३)

अनुभव कीया सैं जी पावे प्रभु परम ।।टेक।।
जब[1] चेतन निहारि निज पौरष निरखै निज दृग सूं निज मर्म[2] ।
अनुभव करै सुद्ध[3] चेतन को, रमैं[4] सुभाव[5] वमैं[6] सव करम[7] ।
इह विधि[8] सधै मुक्ति पथ पारस अरु समीप आवै सिव[9] सर्म ।

राग जंगलो, झंझोटी

*(१३४)

अधिक सुहावै मोकूं वेशां तीं छवियां हे ।।टेक।।
अब जो सरावूं अपने ध्यान कूं हे,
थिर थिर जावत हे घाती अघाती हे ।।१।।
गरज सो सारदा हे अपने ज्ञान कूं हे,
फिर फिर पावत हे मुक्ति नगरियां ।।२।।
पर तजि सो धावे, अपने माल कूं वे,
सोध्यां पावत वे पार्श्वहि निधियां ।।३।।

---

१३३ : १. प्रति 'अ'—जवै ।
२. प्रति 'अ'—मरम ।
३. प्रति 'अ'—शुद्ध ।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—रमै ।
५. प्रति 'अ'—स्वभाव ।
६. प्रति 'अ'—वमैं ।
७. प्रति 'अ'—कर्म ।
८. प्रति 'अ'—विधि ।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—शिव ।

*प्रति 'त' में यह पद नहीं है ।

राग जंगलो की ठुमरी

*(१३५)

मोहे डगर वता सुपकारी हो।
तुमरे विन जिन कुगुरु भ्रमाये कुगति लहि दुपकारी।
तुमरे नाम मंत्र तें उवरे, सापि भनें[1] श्रुत धारी।
रतन त्रय पथ देहु हजूरी, पारस विनवूं थारी।

राग सोरठ की ठुमरी

*(१३६)

गुरा म्हाने जातरूप तुम रा पद रूड़ो लागै।।टेक।।
नीको लागै चोपो लागै असुभ वंध सव आगै।
पर परणति विन निज परणतिमय आतम हित प्रति जागै।
कव ग्रह तजि कै पावूं 'पारस' शिवपुर के सुप पागै।

राग सोरठ ताल रूपक

(१३७)

आलो मोरा जीया की न पीया सुनता गया।।टेक
सुनि पुकार पसुव्रन[1] को मघ मैं करूणां[2] रस चित छै गया।
रथ हमरे मंदिर तैं मोर्‌यो, गढ[3] गिरनारी चढ़ि गया।।१।।
मात तात परियन न सुहावै, पान पान, विप ह्वै गया।
अव[4] हमकूं घर मैं नहिं रहनौं,[5] चित दरसन[6] विन[7] वंह[8] गया।।२।।

---

*प्रति 'त' में यह पद नहीं है।
१३५ : १. प्रति 'श्र'—भनें।

*प्रति 'त' यह पद नहीं है।

जो उन कीनीं सो हम चीनी जोग धरण मन हो गया।
पार्श्वदास धनि रजमति जग मैं. उत्तम तप करि सुर भया[९] ॥३॥

राग सोरठ

(१३८)

प्रभू सरण[१] द्यौ[२] मोहि[३] तुम चरण केरी।
या तैं मेटिहू जो भव भ्रमण फेरी[४] ॥टेक॥
कर्म बसु[५] होय वसि[६] कुमति के जोग तैं दुर्गति[७] के दुष सहे वोहोत[८] वेरी।
चंद कूं[९] ज्यों चकोरी लषत[१०] सुष[११] लहै, वारि[१२] कूं मच्छ[१३] तू[१४] चाह तेरी।
'पार्श्व' तुम धारि उर मांय भव नांस[१५] करि शिव लहूं इतै करि गौरि मेरी[१६]।

---

१३७ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—पशुवन। २. प्रति 'अ'—करुणा।
३. प्रति 'त'—गड। ४. प्रति 'त'—अव।
५. प्रति 'त'—रहनो। ६. प्रति 'अ'—दर्शन।
७. प्रति 'अ'—विन। ८. प्रति 'अ'—वह।
९. अन्तम चरण-'जो उन कीनी...... भय' प्रति 'त' और 'न' मेंनहीं है।

१३८ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—सर्ण। २. प्रति 'अ'—द्यो।
३. प्रति 'अ'—मोय। ४. 'या तैं ...... फेरी' प्रति 'अ' में नहीं।
५. प्रति 'अ'—वसु
६. प्रति 'अ'—वसि। ७. प्रति 'अ'—दुगति।
८. प्रति 'अ'—बहुत। ९. प्रति 'त' एवं 'न'—को।
१०. प्रति 'अ'—लहन। ११. प्रति 'अ'—सुख।
१२. प्रति 'अ'—वारि। १३. प्रति 'अ'—मछ।
१४. प्रति 'अ'—ज्यूं। १५. प्रति 'अ'—नाशि।
१६. प्रति 'त'—करि इतै गौरि मेरी।

]

राग सोरठ

(१३९)

निति ध्याय रे जीया जिनेस ।
अरज[1] ये ही उर मानि लै ।।टेक।।
जिनके उर जिन राज नाम थयो ते नर ह्याहीं अमरेस ।
जिनके नाम सुनि स्वान देव भयो, ये भी नांहीं विसेस[2] ।
जिनके ध्यावत सिव[3] सुप[4] पावत, गावत संत असेस ।
जिनके नाम सुनि 'पारस' उधरे फिर न भयो[5] दुष ल्हेस ।

राग सोरठ इकतालो

(१४०)

नाथ तुम पसुवन[1] बंध[2] छुड़ायो ।
यह सुनत सरण[3] तोरी आयो ।।टेक।।
जीव दया कै कारण ततक्षण गिरवर प्रति मन भायो ।
वाह्य अभ्यंतर[4] त्यागि परिग्रह, सोहं सोहं ध्यायो ।
सुद्ध[5] रूप लै लीन होय कै, केवल ज्ञान उपायो ।
भव्य जीव उद्धार करन कूं, सुभ धर्मामृत पायो ।
जगत जीव हित कारण द्वै विध, धर्म दया दरसायो ।
पार्श्वदास तुम चरण सरण गहि गुण गण निस दिन गायो ।

---

१३९ : १. प्रति 'अ'—अर । २. प्रति 'अ'—विशेस ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—शिव । ४. प्रति 'अ'—सुख ।
५. प्रति 'अ'—लह्यो ।

१४० : १. प्रति 'त' एवं 'न'—पशुवन । २. प्रति 'अ'—बंध ।
३. प्रति 'अ'—सरन । ४. प्रति 'अ'—अभितंर ।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—शुद्ध ।

राग सोरठ धीमों तितालो

(१४१)

होजी जीवजी थांनैं कांई[1] कांई[2] कहि समझावां हो,
विषयां[3] रा माता हो जी जीव जी ।।टेक।।
ये विषयन थांनै भौत भ्रमाये स्वातमीक[4] सुषघाता[5] ।
इनके भ्रभाये वहु[6] दुष[7] पाये, रंक भये विललाता ।
नारी वंधु पुत्र भगिनीं सुत, निज मुतलव को गाता ।
नरकनि मैं इकले दुष भोगो, सोच करों नें इन जाता[8] ।
पारस[9] प्रभू[10] पद सुमरि[11] सयानें,[12] तीन लोक मैं ष्याता[13] ।
पंच परावृत छांडि पलक मैं मुक्ति वधू[14] के दाता ।

राग सोरठ जलद तितालो

(१४२)

मुझे[1] वैराग भावै जी,
षिण एक और वात कछू नां सुहावै जी ।।टेक।।
मात तात पुत्र मित्र वंधु जोय जी,
अपनी गरज के यार, आपणां न कोय जी ।।१।।
देह नेह भोग भोगि पाप कोया जी,
पसु[2] नरक जोनि माय[3] दुषित[4] होत जीया जी ।।२।।

---

१४१ : १-२. प्रति 'अ'—काई काई । ३. प्रति 'अ'—विषया ।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—स्त्रातमीक । ५. प्रति 'अ'—सुखधाता ।
६. प्रति 'अ'—वहु । ७. प्रति 'अ'—दुख ।
८. प्रति 'त' एवं 'न'—जातां । ९. प्रति 'त' एवं 'न'—पार्श्व ।
१०. प्रति 'अ'—प्रभु । ११. प्रति 'अ'—सुमर ।
१२. प्रति 'अ'—सयाने ! १३. प्रति 'अ'—ख्याता ।
१४. प्रति 'अ'—वधू ।

हित की वात[५] संत कहो गहूँ सोय जी,
सव[६] छांड़िहूं[७] विकल्प एक रूप होय जी ॥३॥
सार्वमि के प्रसंग तें सुज्ञान होय जी,
वस्तु[८] को स्वरूप लपूं[९] राग पोय जी ॥४॥
याही तै 'पार्श्वदास' कछू भला होय जी,
और झंठा आडंबर तें कहा होय जी ॥५॥

राग सोरठ

(१४३)

लगुनि जिन राज सूं[१] लागी,
सकल सें प्रीति हम त्यागी ॥टेक॥
मिथ्या मत जोर अति भारी, भयो जिय[२] अंध अविचारी।
सुभासुभ कूं[३] न पहचानां,[४] जगत के मांय भरमानां[५]।
देह इत्यादि जो सारो, अचेतन वस्तु[६] सव[७] न्यारी।
ताहि निज जाणि[८] कें रागे, भोतसी भक्ति कूं लागे।
मिथ्या मद दोष डर भागे, सुधातम रूप सूं पागे।

---

१४२ : १. प्रति 'न'—सुझ्यें। २. प्रति 'त' और 'न'—पशु।
३. प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—दुखित।
५. प्रति 'अ'—वात। ६. प्रति 'अ'—सव।
७. प्रति 'अ'—छांडिहू। ८. प्रति 'अ'—वस्तु।
९. प्रति 'अ'—लखू।

लगनि ऐसी लगी अब[९] तौ, करम नसि जायंगे सब[१०] तौ।
अबैं[११] प्रभु पार्श्व कूं ढोकूं, देहु निज ज्ञान धन मोकूं।

राग सोरठ

(१४४)

हे तू सुणि सतगुर की सीष[१] रै, तोहे[२] यो उपदेस दै छे।।टेक।।
पांच पाप तजि मन बच[३] तन करि, पांच महाव्रत ये छै।
दसाध्यायी सूतर मांयीं उमास्वांमी भणै[४] छै।
पांच पाप औपाधिक दुष दे इन कूं काहि[५] गहै छै।
इंद्री पांच कषाय पचीसूं ये पर जनित लिषै[६] छै।
जा मैं पाप कसाय न[७] दीसै,[८] सुष को नांहीं छेह छै।
अबिनासी चिद्रूपी 'पारस' कांहे आंन नमैं छै।

---

१४३ : १. प्रति 'अ'—सैं। २. प्रति 'अ'—जीय।
३–५ प्रति 'अ'—कू, पहचाना, भरमाना।
६. प्रति 'अ'—वस्तु। ७. प्रति 'अ'—है।
८. प्रति 'अ'—जानि। ९–१० प्रति 'अ'—अव, सब।
११. प्रति 'अ'—अवै।

१४४ : १. प्रति 'अ'—सीख। २. प्रति 'अ'—तोये।
३. प्रति 'अ'—वच। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—भणें।
५. प्रति 'अ'—गाहि। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—लखे।
७. प्रति 'अ'—कसाय। ८. प्रति 'अ'—दीषै।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—छे।

राग सोरठ

(१४५)

साधु सुपदायो[१] मिलै[२] मोहे[३] साधु सुपदायी ।।टेक।।
सोधि चालै भूमि निज तन तैं[४] न ममतामयी ।
वचन बोलै[५] हित सरूपो चेतना[६] दायी ।
वृत्ति जिनकी वड़ी उत्तम, अजाचिकताई ।
धरै मेलै सो जतन तैं[७] दया उर मांयी ।
गुप्ति[८] तीनूं धरै निति, अरि मित्र समताई ।
जोग तीनूं काल के धरि हरै भ्रमताई ।
महाव्रतनि[१०] मैं वड़े सोधम दोस न लगाई[११] ।
नमै 'पारस' मन वचन करि निःकारण भाई ।

राग सोरठ, चाल हींदा की

(१४६)

जिनवर घ्यावो उर मांय[१] जातैं शिव सुप[२] पावो रे ।।टेक।।
अनादिकाल के कूर सूर पापंडी कुगुरु मनायो[३] रे ।
जिन वच कान न धारचा मानुप जनम गुमायो रे ।
जिन मत छांडि मूढ़ कॅ कलपे, मत कूं उर विचि ल्यावै[४] रे ।

---

१४५ : १. प्रति 'ग्र'—सुपदाई । २. प्रति 'ग्र'—मिलै ।
३. प्रति 'ग्र'—मोयै । ४. प्रति 'ग्र'—तै ।
५. प्रति 'ग्र'—बोलै । ६. प्रति 'ग्र'—चेतना ।
७. प्रति 'ग्र'—करि । ८. प्रति 'ग्र'—साई ।
९. प्रति 'ग्र'—गुप्ति' । १०. प्रति 'ग्र' महाव्रत ।
११. प्रति 'ग्र'—लगायी ।

महिषो दूद[५] छांडि कैं थोहरि[६] दूदह[७] चावै रे।
मरण समै[८] जिन नाम धारि उर, स्वान स्वर्ग सुष थायो[९] रे।
'पारस' जिन को सुमरण करंता[१०] निज पद पायो रे।

राग सोरठ

(१४७)

कांयी[१] कांयी[२] कह समझावां,[३]
हो जी हो जीवा जी थानैं हो कांयी ।।टेक।।
सुमता सषी जी थांसूं अरज करै छै,
मानों म्हारी ब्रह्म लषांवां।
कुमति संग भव[४] दुष[५] भोगे, बहु[६] नारक भये हो कुभावां।[७]
म्हारै संगि रहो[८] अब 'पारस' मुक्ति तिया परणावां[९] ।।

---

१४६ : १. प्रति 'अ'—माय
२. प्रति 'अ' सुख।
३. प्रति 'अ'—मनाया।
४. प्रति 'अ'—लावै।
५. प्रति 'अ'—दुग्ध।
६. प्रति 'अ'—थोहर।
७. प्रति 'अ'—दूद।
८. प्रति 'अ'—समैं।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—पायो
१०. प्रति 'अ'—कर कै।

१४७ : १-२. प्रति 'अ'—कायी।
३. प्रति 'अ'—समझावा।
४. प्रति 'अ'—वहु।
५. प्रति 'अ'—दुख।
६. प्रति 'अ'—वहु।
७. प्रति' 'अ'—कुभावा।
८. प्रति 'अ'—रहो।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—परनावां।

राग सोरठ

(१४८)

प्यालो पीवो जी सुज्ञान रो थे मनवा ह ।।टेक।।
आमां[1] तो सामां[2] जग[3] मैं न भ्रमों[4] जी सुर सुष[5] पावो जी रसाल।
पीया सूं दुष ना लहो जी, वोलै सुगुर विसाल[6]।
ज्ञान जोति जग मैं दिपै ज, मिथ्मातम नसि जाय।
'पारस' लषि[7] चषि[8] पीयियो जी जातैं ब्रह्म लषाय।

राग सोरठ

(१४९)

दिढ़ता अपनाई अव मैं जिनराज चरन की सरन मैं[1] ।।टेक।।
मिथ्या देव सेव वहु करि कैं वहुत[2] भ्रमै भव वन[3] मैं।
तत्व अतत्त्व पिछानि जानि विन[4] अपनाये परिजन मै।
अव[5] जिन तत्त्व पाय कै 'पारस' सुषित[6] भये अनुभव[7] मैं।

---

१४८ : १. प्रति 'अ'—आमा। २. प्रति 'अ' सामा।
३. प्रति 'अ'—जगत। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—भ्रमो।
५. प्रति 'अ'—सुख। ६. प्रति 'अ'—विसाल।
७. प्रति 'अ'—लखि। ८. प्रति 'अ'—चखि।

१४९ : १. प्रति 'त'—जिनराज चरन की सरन मैं दढ़ता अपनायी। २–३–४. प्रति 'अ'—वहुत, वन, विन। ५. प्रति 'अ'—अव।
६. प्रति 'अ'—सुखित। ७. प्रति 'अ'—अनभव।

राग सोरठ, गुझाभ्र

(१५०)

जिनवर पूजो रै भायी यो अवसर बीत्यो[1] जायी ।।टेक।।
दोष अठारा रहित विराजै, गुण अनंत जा मांयी।
चौतिसूं अतिसै[2] जुत सोहै, भव्यनि कों सुषदायो[3]।
प्रातिहार्य करि जग मन मोहै, अनंत चतुष्टय रायी।
जाका तन की छबि[4] कूं निरषत, कोटि भान हू[5] लजायो[6]।
महिमां[7] वरनत अंत न पावै,[8] ज्ञांनी हू मुनिरायी।
'पारस' प्रभु कूं जे नर पूजै[9] ते क्रम तैं सिव[10] जायी।

राग सोरठ, गुझाभ्र

(१५१)

श्री रिषभदेव[1] महाराज के पद पूजै रे[2] भायी ।।टेक।।
नाभिराय मोरादेवी सुत प्रगट भये जगमांयी[3]।
तप्त स्वर्ण जिन राज देह छबि[4] दरस[5] तै पाप पलायी।
धनुष पांच सैं उंचे सौहै, मेरू समान लषायो[6]।
सव ही कूं जिन कही जीविका मानूं कलप तरु थायो।
सुरपति फणपति नरपति पूजैं,[7] इक निज पद की चायी[12]।
तीन जगतपति[8] के पति स्वामी, सांचै है जिनरायी।

---

१५० : १. प्रति 'अ'—वीत्यो।
२ प्रति 'अ'—अतिसय।
३. प्रति 'अ'—सब जीवन सुखदाई।
४. प्रति 'अ'—छवि।
५–६. प्रति 'अ'—हुलसाई।
७. प्रति 'अ'—महिमा।
८. प्रति 'अ'—पायो।
९. प्रति 'अ'—पूजत।
१०. प्रति 'त' एवं 'न'—शिव।

सिव[10] संकर हरि ब्रम्हा जिनपति, वुद्ध वेद[11] औ घुसांयी,[12] ।
'पारस' इक याही के नाम लपि[13] पूजो मन वच[14] कायी ।

राग सोरठ, गुभाभ

(१५२)

श्री शांति नाथ[1] महाराज के पद पूजो रे भायी ।।टेक।।
शांति नाथ[2] को नाम लेत अघ शांत[3] होय जगमांयी ।
कामदेव चक्री तीर्थंकर[4] तीनूं पद सुपदायी[5] ।
तीन छत्र सिर त्रभुवन मोहै, प्रातिहार्य अधिकायी[6] ।
गुण अनंत जामैं न दोस इक नमूं नमूं[7] हुलसायी ।
वीतराग[8] सर्वज्ञ[9] जिनोत्तम भव्यनि कूं[10] शिवदायी[11] ।
पार्श्वदास ढोकत है अह निसि, त्रभुवन के पितमायी ।

---

१५१ : १. प्रति 'न'—रिपव देव । २. प्रति 'अ' —रै ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—जुगमायी । ४. प्रति 'अ'—छवि ।
५. प्रति 'त' एव 'न'—दर्स ६. प्रति 'अ'—लखाई ।
७. प्रति 'न'—सुरपति नरपति पगपति पूजै । ८. प्रति 'अ' – चाई ।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—जगत्पति ।
१०. प्रति 'त' एवं 'न' शिव । ११. प्रति 'अ'—वंद ।
१२. प्रति 'अ'—घुनाई । १३. प्रति 'अ'—लखि ।
१४. प्रति 'अ'—वच ।

१५२ : १–२. प्रति 'अ'—सांतिनाथ । ३. प्रति 'अ'—सांत ।
४. प्रति 'त' एवं 'न'—तीयकर । ५. प्रति 'अ'—सुखदाई ।
६. प्रति 'अ'—अधिकाई । ७. प्रति 'त'—नमु ।
८–९. प्रति 'अ'—वीतरंग, सर्वज्ञ । १०. प्रति 'त' एवं 'न'—कौं ।
११. प्रति 'त' और 'न'—सुपदायी ।

(१५३)

अबै[1] प्रीति जिनराज के चरण लागी।
मेरी नींद[2] मिथ्यात की आजि भागी ।।टेक।।
भोग सब[3] रोग से प्रगट दीसत, भये कर्म की बेदनां[4] तैं बिरागी[5]।
मित्र तिय भ्रात और मात सुत तात सब[6] देह के हैं[7] हम न देह त्यागी।
देह पुद्गल मयी मैं सदा ज्ञानमय, ज्ञान ही देह मम जोति जागी।
नासिंहूं कर्ममल पार्श्व के दास हम पार्श्व जिनराज सैं प्रीति पागी।

राग सोरठ, गुझाझ

(१५४)

अबै सरण जिन धर्म की रहौ[1] सदायी।
यहू लोक की संपदा है पराई।।टेक।।
कर्म सुभ कै उदै होत नजदीक सब असुभ के उदय तै[2] फुनि बिलायी।
प्राप्ति और बिलय[3] फुनि मध्य तीनूं समै आतमां[4] राम कूं दुःषदायी।
धर्म के ग्रहण तै[5] कर्म नसि जाय सब,[6] ज्ञान लक्ष्मी वढै मोक्षदायी।
इंद्र अहमिन्द्र[7] इत्यादि पद धर्म तै, आपु ही होत है लोक मांयी।

---

१५३ : १. प्रति 'अ'—अवै। २. प्रति 'अ'—नीद।
३-५. प्रति 'अ'-सव, वेदना, विरागी। ६. प्रति 'अ'—सव।
७. प्रति 'अ'—है।

धर्म दुल्लभ यहै लोक मैं प्रगट है ताहि धारैं जिके सुलभ नांई।
धन्य अवसर यहै पार्श्व पायो सही, धर्म होसरण[8] मम तात मायी।

राग सोरठ, गुफाझ

(१५५)

परनारी विषवेलि[1] कूं मति जोवै रे भायी[2] ।।टेक।।
रावण तीन षंड को अधिपति पर्यो नरक कै मायी[3]।
और सुनीं आगम मैं बहुजन,[4] या तैं[5] दुरगति पायी[6]।
मदिरा पीयें[7] होत बावरे,[8] लख्यां[9] सपरस्यां[10] नांई[11]।
लख्या[12] सपरस्यां[13] सुमरण कीयां[14] या मारै सहजांई[15]।
दृष्टि विपाश्रुत ही तैं सुनिहैं[16] परतक्ष कोवू न लपायी।
दृष्टि विपापरतक्ष एम लपि, तजो दूर तैं यायी।
जप तप ज्ञान ध्यान संजम यम संगति कीयां[17] नसायी।
आतम काज करो तौ 'पारस' याकी तजियो[18] छांयी।

---

१५४ : १. प्रति 'अ'—हो।
२. प्रति 'अ'—तैं।
३. प्रति 'अ'—विलय।
४. प्रति 'अ'—आतमा।
५. प्रति 'अ'—तैं।
६. प्रति 'अ'—सब।
७. प्रति 'अ'—अहमेन्द्र।
८. प्रति 'त' एवं 'न'—सर्ण।

१५५ : १. प्रति 'अ'—विषवेल।
२. प्रति 'अ'—भाई।
३. प्रति 'अ'—मांयी।
४. प्रति 'अ'—बहुजन।
५. प्रति 'अ'—तैं।
६. प्रति 'अ'—पाई।
७. प्रति 'अ'—पिये।
८. प्रति 'अ'—बावरे।
९-१२. प्रति 'अ'—लख्या।
१०,१३ प्रति 'अ'—सपरस्यां।
११. प्रति 'अ'—नांयी।
१४. प्रति 'अ'—कीया।
१५. प्रति 'अ'—सहजाई।
१६. प्रति 'त' एवं 'न'—सुनी तैं।
१७. प्रति 'अ'—किया।
१८. प्रति 'अ'—तजद्यो।

राग सोरठ, गुभाभ

(१५६)

दुल्लभ नर भव पाय कै मति षोवे रै भायी ।।टेक।।
सहज मिल्यो चिंतामणि सम यह, नर भव शिव[१] सुषदायी[२]।
विषय षीष[३] साटे मति षोवै, फिर पीछै[४] पछितायी।
पंचेद्री विषयनि[५] के बसि होय, झूंठे सुष ललचायो।
अैसी रीति अज्ञानी जन की, परे कुगति विललायी।
समता भाव सम्हारो अपनौं,[६] तजि परणति परमांयी।
अनादि काल की पर परणति[७] तैं, निज पिछाणि नहीं आयी।
बीतराग[८] उपदेस मिल्यो तोय,[९] जिन बांनी[१०] सहजांयी।
'पारस' न्हवन करो या मांई,[११] निश्चै[१२] शिवपुर जायी।

राग गुभाभ

(१५७)

मानि लै म्हारी कही रे जीया मानि लै ।।टेक।।
निज गुण भूलि भयो पर बसि तू[१] बुधि तेरी[२] कैसैं बही रै।
पंचेंद्रिय विषयन[३] कूं तजियो, पावो स्वर्ग मही रै।
निज पर निर्णय करि गहि निज कूं, तब तू सुज्ञान सही रै।

---

१५६ : १. प्रति 'अ'—सिव। २. प्रति 'अ'—सुखदायी।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—पाप। ४. प्रति 'त' एवं 'अ'—पीछै।
५. प्रति 'त'—विषयन। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—अपनो।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—परति। ८. प्रति 'अ'—वीतराग।
९. प्रति 'अ'—तोये। १०. प्रति 'अ'—वाणी।
११. प्रति 'अ'—मांयी। १२. प्रति 'अ'—निश्चय।

ये तो जन्म वृथा[4] ही[5] खोयो,[6] निज पिछाणि नैं[7] भयी रैं।
अब कुछ हित कारिज कर भोरे, फिर यो ब्योंत नहीं रैं।
गयी सो गयी अब[8] चेत[9] बावरे,[10] अजहू राषि[11] रही रैं।
सब विकलप तजि 'पारस' जिन भजि जानों मुक्ति लही रैं।

राग गुभाभ

(१५८)

जीया तू दग ज्ञान सयी रैं ।।टेक।।
जो दीसैं[1] सो ही पर पुद्गल नाना रूप मयी रैं।
सपरस रस और गंध वरण[2] गुण पुद्गल की परणई रैं।
हलको भारी नरम कठिनता, लूषो औ[3] चिकनई रैं।
ये सब[4] है पुद्गल की परणति, तेरी कछु न कहो रैं।
देषैं जानैं सब कू नीकैं परष करैं नई नई रैं।
सुष दुष दाता सो भजि पारस, सतगुरु सीष दई रैं[5]।

---

२. प्रति 'अ'— 'तेरी' का लोप ।

१५७ : ४. प्रति 'अ'—तू ।
२. प्रति 'अ'—विषयान ।
७. प्रति 'अ'—न ।
९. प्रति 'अ'—चेति ।
११. प्रति 'अ'—राखि ।

४–६. प्रति 'अ'—विषयनि में खोयो
८. प्रति 'अ'—अब ।
१०. प्रति 'अ'—बावरे ।
१२. प्रति 'अ'—जानो ।

१५८ : १. प्रति 'अ'—दीसै ।
३. प्रति 'अ'—औ ।
५. प्रति 'अ'—अन्तिम पंक्ति का अभाव ।

२. प्रति 'अ'—वरण ।
४. प्रति 'अ'—सब ।

राग बिहाग

(१५९)

देषो[1] री नेमीस्वर स्वामी वंदड़ा[2] वनि कै[3] आया है री[2] ।।टेक।।
समुदविजै बलिभद्र[4] कृष्ण मिलि पूव वरात[5] वनाया[6] है री।
भाग्य बड़ो[7] जानों रजमति को नेम प्रभू बर[8] पाया है री।
पसु[9] पीड़ा सुनि गिर कूं ध्याये, सिद्धनि कूं सिर नाया है री।
'पारस' सुनि बचन[10] राजमती यह गृह तजि संजम भाया है री।

राग बिहाग

(१६०)

प्रभुजी मोहे त्यारो जी हो जी म्हानै भवदधि पार उतारो ।।टेक।।
पूजा दान कियो[2] कछु[3] नाहीं, जप तप ध्यान न धारो[4]।
तृष्णा वसि होय जग भटक्यो,[5] मैं झूंठा[6] मोह को मारो।
दोष तरफ नाहिं[7] दृष्टि दीजिये, अपनों विरद सम्हारो।
दीनांनाथ विरद सुनि 'पारस' सरन गहत[8] अब[9] थारो।

---

१५९ : १. प्रति 'अ'—देखो।
२-३. प्रति 'त' द्वारै मेरै।
४-८. प्रति 'अ' - बलिभद्र, वरात, वनाया, वड़ो, वेर।
९. प्रति 'त' एवं 'न'—पशु।
१०. प्रति 'अ'—वच।

१६० : १. प्रति 'अ'—में 'होजी .... उतारो' अंश छूट गया है।
२. प्रति 'अ'—वन्यो।
३. प्रति 'अ'—कछू।
४. प्रति 'अ'—धार्‌यो।
५. प्रति 'अ'—भरम्यो।
६. प्रति 'अ'—झूठा।
७. प्रति 'अ'—नहिं, प्रति 'न'-नांही।
८. प्रति 'अ'—गह्यो।
९. प्रति 'अ' —अव।

राग परज, कालिंगड़ो

(१६१)

हमारे अघ क्यूं न हरो हम पूजन आये म्हाराजि[1]।
अष्ट द्रव्य तैं पूज रचावूं, मुक्ति रमन रैं काज।
नाम मंत्र तैं[2] पायियो[3] प्रभु स्वान स्वर्ग सुप[4] साज।
ज्ञांनी शिव[5] पावै सुनी हम सम्यक गुरू दी[6] अवाज।
तुम विन ओर सरण नहिं जग मैं सुणि त्रभुवन के राज।
पार्श्वदास की ये ही अरज है हमरी तुम कूं लाज।

राग परज, सोहनी

(१६२)

जिन दरसन तैं अघ क्यो न कटै जी ।।टेक।।
नाम मंत्र तैं वहुत[1] तिरे जिये तिनकी साषि।
सिद्धांत रटै जी।
परतक्ष तुम पद सरन गह्यो हम,
क्यों नहि मेरैं[2] दुरित हटै।
'पारस' पाय तिहारे सरन कूं,
अब कर्मनि तैं नाहिं डटै[3] जी।

---

१६१ : १ प्रति 'ग'—महाराजि। २. प्रति 'त' – तैं।
३. प्रति 'अ'—पाइयो। ४. प्रति 'अ'—सुख।
५. प्रति 'अ'—सिव। ६. प्रति 'अ'—'दी' का लोप।

१६२ : १. प्रति 'अ'—वहुत; प्रति 'न'—वहुतैं। २. प्रति 'अ'—मेरे।
३. प्रति 'त'—हटै।

राग आसावरी, परज, कालिंगड़ो, माढ

(१६३)

घर आवो जो जीवा जी सुष माणबानैं।
थांनै कुण रै[1] नटै छै अठै[2] आवतानैं ।।टेक।।
थांनै हिंसा री काज छुडायस्यां[3] जी,
सातूं विसनां रो संग निवारवानैं।
थांनै पर परणति भी छुड़ावस्यां[4] जी,
रूड़ी निज परणति सूं मिलायवानैं।
थांनै ज्ञानमयी ढोलियो पोढाणस्या[5] जी,
निज रूप[6] मैं त्रलोकी[7] पिछाणवानैं।
थांनै मुकति[8] पियारी[9] परणावस्यां जी,
पारसदास नूं कारिज सारवान[10]।

राग कालिंगड़ो, जलद तितालो

(१६४)

चेतता क्यूं[1] नहीं[2] रे जीया तू, तोये रागूं किया बेहाल[3] ।।टेक।।
नारकी होय कैं दुष[4] सहे तुम भूलि[5] गये सो अयान।
पाप पशूगति[6] भूष तृषा लहि, बंधन त्रास महान।
देवपदी मैं देष[7] कै संपति अन्य तणीं जो[8] अमान।

---

१६३ : १. प्रति 'अ'—र। २. प्रति 'अ'—अठै।
३-४. प्रति 'त'—छुड़ावस्या। ५. प्रति 'त'—सुवाणस्यां।
६. प्रति 'त' एवं 'न'—लोक। ७. प्रति 'अ'—तिहूं लोक।
८. प्रति 'त' एवं 'न'—मुक्ति। ९. प्रति 'त'-प्यारी, प्रति 'न' पयारी।
१०. प्रति 'त'—काज सुधारवानै।

आप कूं मानि कै हीण लह्यो दुष मानस ताप करान।
मानुष होय उदर वसि पायो, दुष ताको न प्रमान।
सुरझन का अवसर अव[९] 'पारस' सेवा करहु सुजान।

राग परज, कालिंगड़ो की होरी

(१६५)

श्री जिनवर सुपकारी[१] मेरे दुखहारी[२] ॥टेक॥
इंद्र नरेंद्र फनेंद्र नमत निति, मुनि जन निज चित धारी।
अंजन आदिक अधम[३] उवारे,[४] वारिषेण दुष टारी।
'पारस' मन वच तन करि सुमरै,[५] क्यूं न वरै शिव नारी[६]।

राग कालिगड़ो, रूपक तितालो

(१६६)

जीया तू चेतता क्यूं नहिं रै हारै थारै सिर पर वैरी काल ॥टेक॥
राजा रंक वली[१] और दुरवल निरधन औ[२] धनपाल।
वृद्ध तरुण जुवती र नपुंसक, सव[३] परिहै इक चाल।
या वसि[४] होय भ्रमैं[५] वहु[६] जग मैं लपे न निज गुण हाल।

---

१६४ : १. प्रति 'अ'—क्यो।
२. प्रति 'अ'—नहिं।
३. प्रति 'त' एव 'न'—अर्द्धपंक्ति का अभाव।
४. प्रति 'अ'—दुख।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—मूल।
६. प्रति 'अ'—पसुगति।
७. प्रति 'अ'—देख।
८. प्रति 'अ'—जा।
९. प्रति 'अ'—अव।

१६५ : १. प्रति 'अ'—सुखकारी।
२. प्रति 'अ'—दुखकारी।
३-४. प्रति 'अ'—नीच उघारे।
५. प्रति 'अ'—सुमरत।
६. प्रति 'त'—ते पावै शिव प्यारी।

पर प्रसंग तैं निज गुण भूले निज गुण प्रति विन वाल[७]।
तेरे हित की वात कहूं मैं, सो चित धारो लाल।
'पारस' पद आराधन कीजे शिवपुर पति होय भाल।

राग कालिगड़ो

(१६७)

अव[१] तो रे निज धर्म रूप[२] विचार रे ।।टेक।।
दरसन[३] ज्ञान स्वरूप[४] तुमारो[५] आनि उपाधि निवारि रे।
तू चिद्रूपी मति भरमैं लषि, पर पुद्गल के[६] विकार रे।
राग द्वेष तजि ये औपाधिक, तोहि करै वेकार[७] रे।
'पारस' जानि स्वरूप[८] आपनौं,[९] शुद्ध[१०] करो व्योपार रे।

---

१६६ : १. प्रति 'अ'—वलो। २. प्रति 'अ'—अरु।
३. प्रति 'अ'—सव। ४. प्रति 'अ'—वसि।
५. प्रति 'अ'—भ्रमे। ६. प्रति 'अ'—वहु।
७. प्रति 'त'—निज गुण वाल। ८. प्रति 'अ'—सो।

१६७ : १. प्रति 'अ'—अव २. प्रति 'त'—में 'रूप' शब्द का लोप।
३. प्रति 'अ'—दरशन। ४. प्रति 'अ'—सरूप।
५. प्रति 'अ'—तुमारो। ६. प्रति 'अ'—का।
७. प्रति 'अ'—वेकार। ८. प्रति 'अ'—सरुप।
९. प्रति 'अ'—आपनों। १०. प्रति 'अ'—सुद्ध।

राग कालिगड़ो

(१६८)

हां जी पर पुद्गल को[1] कांयो[2] पतियारो ॥टेक॥
पोपत पोपत विनस्यो[3] जात है, काचा घट उनिहारो।
इंद्र चंद्र चक्री तीर्थंकर किनहूं[4] के थिर न निहारो।
'पारस' सफल होत या विधि सें[5] व्रत तप शिव हित धारो।

राग परज, कालिंगड़ो

(१६९)

निज धी अनुसर शिव सुप भोगि ॥टेक॥
पर में निजता मानि फसे वहु यह[1] अनीति नहिं जोगि।
अनंत ज्ञान सुप वीरज तुभि घर, पर जड़ में मति योगि[2]।
जीवन मुक्त होवु या विधि सें[3] पारस रहु उपयोगि[4]।

राग कालिंगड़ो आसावरी

(१७०)

वंदूं[1] जिनवांनी[2] परमानंद निधानीं[3] ॥टेक॥
अरथ समग्र धारि जिन मुप[4] तें गणधर गूंथि[5] वखानी।

---

१६८ : १. प्रति 'अ'—को। २. प्रति 'अ'—कायी।
३. प्रति 'अ' एवं 'त'—विनश्यो। ४. प्रति 'अ'—किनहू।
५. प्रति 'अ' एवं 'त'—सें।

१६९ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—ये। २. प्रति 'अ'—में 'अनंत ज्ञान……… योगि' पूरी पंक्ति छूट गई है।
३. प्रति 'अ' एवं 'त'—विधि।
४. प्रति 'अ'—उपयोग।

स्यादवाद निरबाधित पर तैं, नय परमाण जुतानी।
स्यो मारग की राह बतावै, सप्त तत्व दरसानी।
आपा पर को भेद लषावै, गुण रतनन की खानी।
मिथ्या ताप निवारण[6] कारण[7] समकति वृक्ष चढानी।
'पारस' बांनी[8] जे उर आंनी[9] ते भये केवल ज्ञानी।

(१७१)

जिनंद[1] विन कैसें कटै भव ततियां ।।तेक।।
बहुत[2] काल भयो जनम मरण कीये कोंन न पायी गतियां।
परिवर्तन को सुमरण करत ही, फटत हमारी छतियां।
'पारस' जिन पद सरन गही, दिढ, तजो आन कूं[3] नतियां[4]।

---

१७० : १. प्रति 'अ'—वंदू। २. प्रति 'अ'—जिनवानी।
३. प्रति 'अ'—निधानी। ४. प्रति 'अ'—मुख।
५. प्रति 'अ'—गूथि। ६. प्रति 'अ'—निवारन।
७. प्रति 'अ'—कारन। ८. प्रति 'अ'—वानी।
९. प्रति 'अ'—आनी।

१७१ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—जिन। २. प्रति 'अ'—वहुन।
३. प्रति 'अ'—की। ४. प्रति 'अ'—नतिया।
—'छतियां' गतियां 'ततियां' सभी शब्दों में अनुनासिकता का लोप।

चेतनां[1] सरूप जीव चेतनां[2] बिना[3] अजीव,
तिन ही के पंच भेद मूल दो विलाय[4] कैं।
ज्ञान चेतनां सरुप[5] कीजे द्विविवा[6] मिटाय,
'पारस' प्रभु अरजोया करिहूं सिर नाय कैं।

राग कालिंगडो, आसावरी

(१७५)

हो ज्ञानी कैसे बिसरि[1] गये मतियां ॥टेक॥
बेर बेर तोहे[2] गुरु समझावत,[3] तजि विषयन[4] में लतियां।
तुम चेतन जड़ मैं[5] किम राचे, ये तौ जोग्य. नहीं बतियां[6]।
'पारस' करि पिछाणि निज पर की पावो पंचम गतियां[7]।

---

१७४ : १-२ प्रति 'अ'—चेतना। ३. प्रति 'अ'—विना।
४. प्रति 'अ'—मिलाय। ५. प्रति 'अ'—स्वरूप।
६. प्रति 'त' एवं 'अ'—द्विविधा।

१७५ : १. प्रति 'अ'—विसरि। २. प्रति 'अ' तोये।
३. प्रति 'अ'—समझावैं। ४. प्रति 'अ'—विषयनि।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—तैं। ६. प्रति 'त' एवं 'न'—ये नहि सोहै वतियां।
७. प्रति 'अ'—में गतियां, बतिया,' 'लतियां,' 'मतियां' शब्दों में अनुनासिकता का अभाव।

(१७६)

तजो मान गुणवाला हो ।।टेक।।
मति भी विगारै[1] यो गति भी विगारै[2] नांही गह्यो श्रुतिवाला।
मोह राज को भ्रात योही है, मिथ्या मारग वाला।
क्रोध लोभ छल एम कुटंवी,[3] सग करत मू[4] काला।
मार्दव[5] धर्म गहो रे 'पारस' ज्यौं[6] कटि है भव जाला।

राग माढ

*(१७७)

मत पीवो नें दारूडी रे।
दारू मैं मोटो पाप हो मत पीवो० ।।टेक।।
दारू पीयी जादवा सकल विनठ्यो[1] वंस।
भस्म भई द्वारावती ताको रह्यो न अंस।
दारू मैं हिंसा घणी, भाषी श्री जिनदेव।
ज्ञान विगाड़ै जीव को, देह विनासै एव।
आठ मूल गुण मैं प्रथम सप्त विसन मैं निंद्य।
पारस धरमी[2] जन तजें भजें मुक्ति जग वंद्य।।

---

१७६ : १-२ प्रति 'त' एवं 'अ'—विगारै। ३. प्रति 'अ'—कुटंबी।
४. प्रति 'अ'—मू। ५. प्रति 'अ'—मार्द्व।
६. प्रति 'अ'—ज्यों।

*प्रति 'त' मे यह पद नहीं है।
१७७ : १ प्रति 'अ'—विनठ्यो। २. प्रति 'त'—धर्मी।

राग पमावच

*(१७८)

मैं ध्यावू तोयै[1] सुचि वानी कूं,
और गुरु के पद सिव पद पावूं ।।टेक।।
समभावां[2] जुत मंदिर आवूं[3] सब[4] विघन[5] वितान[6] गमावूं।
कुगुरु कुदेव कुधर्म न चावूं, सम्यक रतनत्रय उर भावूं।
पार्श्वदास यूं नाम कहावूं कापं[7] लाज लजावूं।

राग आसावरी

*(१७९)

महारै दिल वसिया जिनंदवा, जिन ही म्हारै ध्यान
मरण समैं सुनि नाम कूं, जीवक तैं स्वान
तजी पाप परजाय कूं, सुर भयो सुखवा
सुत दारा धन पाय कै, भव भव मैं र
भ्रमे चतुर्गति[1] मैं सदा, हूवे दुषवा
'पारस' सद्गुरु जोग तैं, पायो सम्यक[3]
धरिहू मैं उर कोस मैं, करियो[4] ५ .

---

*प्रति 'त' में यह पद नहीं है।

१७८ : १. प्रति 'अ'—तोयै। २.
३. प्रति 'अ'—आवू। ४-६
७. प्रति 'अ'—'कापै' शब्द का लोप।

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

१७९ : १ प्रति 'न'—चतर्गति।
३. प्रति 'त'—सम्य।

(१८०)

जिन राज देव ही भावै,
दूजो म्हारी दाय न आवै हो ॥टेक॥
चंदनां सी सती कै घरि आप आवै हो।
अग्निकुंड मैं जत[1] सीतां कू बचावै[2] हो।
सिंहोदर तै वज्रकरण[3] कों मान रषावै हो।
सोमां कर मैं साप[4] पुस्प की माल होवै हो।
चंडाल कै दह मैं परत[5] सिंघासन आवै[6] हो।
वारिषेण को[7] षडग तै चौसर पहरावै हो।
भक्तन के दुष मिटत है, त्रैलोक्य गावै हो।
सांति छवो इम सहाय करत अचिरज दिषलावै हो।
अन्य देव विकराल[8] मूर्ति, तेहू[9] कर्म बरावै हो।
कर्म विजय तैं जिनवर नाम कूं तू ही पावै हो।
पार्श्वदास निरविघ्न भक्ति इक तो सैं[10] चावै हो।
तोहि जाचि दूजो किम जाचै दास कहावै हो।

---

१८० : १ प्रति 'त'—जलती। २. प्रति 'ख'—बचावै।
३. प्रति 'ख'—वज्रकरण। ४. प्रति 'ख'—सर्प।
५. प्रति 'ख'—पड़त। ६. प्रति 'ख'—पावत।
७. प्रति 'ख'—कूं। ८. प्रति 'ख' एवं 'ग'—विकराल।
९. प्रति 'क' एवं 'ग'—तोहूं। १०. प्रति 'ख'—री।

गरणगौरि की चाल में

(१८१)

रजमति पति नेम[1] के वंदू पाय ।।टेक।।

पशु पीड़ा लषि[2] व्याह तज्यो जिन जीत्यो अंगज विपय कपाय।

सेसावन[3] मैं लोच कियो, प्रभु, ध्यान धर्‌यो गिरवर पै[4] जाय।

ध्यान प्रताप घातिया हनि कें, सम्यक केवल ज्ञान उपाय।

पार्श्वदास गह्यो सरण[5] चरण[6] को, आन सरण तजि मन वच[7] काय।

(१८२)

कुमती का संग कूं तजिद्यो[1] नर भोर ।।टेक।।

बालपणूं[2] ध्याल मैं षोयो[3] भरी जवांनी तिरिया वसि[4] होर।

बिरदपणैं अंग सिथल भयो, तप कीनों नहीं करम मल धोर[5]।

धन्नि नेम जिन त्यागि परिग्रह, तप कीनों पशुवन[6] सुनि सोर।

'पारस' तजो कुमति कूं भाई, धारो सुमता संगम दोर।

---

१८१ : १. प्रति 'त'—नेम प्रभु। २. प्रति 'अ'—लखि।
३. प्रति 'अ'—सेसावन। ४. प्रति 'अ'—पैं।
५. प्रति 'अ'—सर्ण। ६. प्रति 'अ'—चर्ण।
७ प्रति 'अ'—वच।

१८२ : १. प्रति 'अ'—तजद्यो। २. प्रति 'त'—बालपणों।
३. प्रति 'अ'—खोयो। ४. प्रति 'त' एवं 'अ'—वसि।
५. प्रति 'न'—धोय। ६. प्रति 'अ'—पसुवन।

राग माढ ध काफी

*(१८३)

किए रे सैनाएाँ[1] प्रभुजी नै हे हो जी
ओ लयां जी म्हां का राजि ।।टेक।।
हां जी राणी रजमति रा जी भरतार।
भवदधि डूवत त्यारो त्यारो हे पार उतारो।
म्हां का राजि ।।१।।
हां जी राणी रजमति करै छै पुकार,
शिवपुर चालां थांको लैरां
हे हो जी मत टारो म्हांका राजि ।।२।।
हो जी जिन पशु तो छुड़ाये जो अपार,
पार्श्वदास रो उतारो है भव दुप भारो,
म्हां का राजि ।।३।।

राग सोरठ, रेषतो

(१८४)

अवै संसार सब[1] त्यागा।
हमारा दिल राम सैं लागा ।।टेक।।
सजन साथी सवै[2] भूंठे,[3] हमैं बौराय[4] कै लूटे।
यहै तन निद्य अति मैला, असुचि मल मूत्र का थैला।

---

*यह पद प्रति 'अ' में नहीं है।
१८३ : १. प्रति 'अ'—सानाएँ।

लबे सब[५] भोग दुपदायी, नरक के पंथ की सायी।
अथिर धन धाम सब[६] जानां। गगन विजुरी के चमकानां[७]।
क्रोध तजि लोभ मद माया। तजी नृप मोह की छाया।
करी प्रभु पार्श्व की सेवा। लपा घट मांद[८] हम देवा।

इक तालो रेपतो

(१८५)

अब[१] तौ घर आवो स्वामी, तुम विन वेहाल है[२] ।।टेक।।
ज्ञानावरणादि मोहि करते पैमाल है।
इन हीं भैंरा नाथ कुमता विकराल है।
अब[३] मोहि निज रस हूं लागत रसाल है।
निज रस विन सर्व ज्ञान दीसत पराल है।
मिथ्यातम जोर तैं बध्यो अज्ञान जाल है।
पंचेन्द्री चोरन तैं कोंन[४] रषवाल है।
सुमता ढिग आवो तौ अपनी निधि भालहै।
कुमता संग त्यागों तब[५] 'पारस' निहाल है।

---

१८४ : १. प्रति 'अ'—सब। २. प्रति 'अ'—सबै।
३. प्रति 'अ'—झूठे। ४-५ प्रति 'अ'—वौराय, सब।
६. प्रति 'अ'—कूं। ६. प्रति 'अ'—चमकाना।
८. प्रति 'अ'—मांहि।

१८५ : १. प्रति 'अ' अब। २. प्रति 'अ'—अपनी निधि भाल है।
३. प्रति 'अ'—अबै। ४. प्रति 'अ' – कौनं।
५. प्रति 'त' एवं 'न' ज्यूं।

रेषतो

(१८६)

सजन तुम झूंठ मति बोलो, प्रभू[1] कू सांच प्यारा है ।।टेक।।
वचन परतीत हू जावै,औ थुयकार हू पावै ।
धरम कू सूचता[2] नांयो,[3] तजो भवि झूंठ दुपदायो[4] ।
अगनि तो साम्यता पावै, सरप हू माल हो आवै ।
सत्य तैं होत थल पानी, सुधा सम जहर होय जांनो[5] ।
सत्य विन दु:ख वहु पायो, वसू[6] शिवभूति[7] गुरु गायो ।
भक्ति प्रभु पार्श्व की जाणों,[8] सत्य जुत मुक्ति को थाणो ।

रेषतो

(१८७)

जिन नाम कूं सुमरि लै[1] वर वपत जो मिला है ।
नर देह सहज नांहै, हित धारनां भला है ।
व्रत त्याग कठिन जोहै, भज नांम[2] ही भला है ।
जलयाहिनो[3] मैं[4] वहता, गोपाल नैं[5] रटा है ।
उपजावै[6] सेठ सुदर्शन शिव रत्न जा पटा है ।
जिन नाम के भजे तैं,[7] भव दुप तैं टला है ।
भव जाल फंद फासी जिन भजन तैं जला है ।

---

१८६ : १. प्रति 'अ'—मया । २. प्रति 'त' सूझना ।
३. प्रति 'अ'—नाई । ४. प्रति 'अ'—दुखदायी ।
५. प्रति 'अ'—जानी । ६. प्रति 'अ'—वसु, प्रति 'त'—वसु
७. प्रति 'अ'—शिवभूत ८. प्रति 'अ'—जाणो ।

परमाद विषय[8] कषायां,[9] ये मोह के छला है।
इन हूं कूं टारि देना,[10] काहूं तैं नां टला है।
जो अनंतकाल बीतें, ये पुण्य आ फला है।
प्रभु पार्श्व सुमरि लीजे जिन कर्म दल मला है।

सोरठ की गुझाभ मैं

(१८८)

चेतन विषय महा दुषदायी रै।
हां रै तू क्यूं नै देत तजायी रै ॥टेक॥
ऐक[1] ऐक[2] इंद्री कै वसि होय कोंन कोंन गति पायी रै।
सपरस वांछा[3] रावण कीनो, फिर गयी राम दुहायी[4]।
रसनां[5] लोलुप है जल मीनां, काढै[6] प्रान[7] गुमांयी[8]।
घ्राण[9] रंजन अलि पंकज मैं दीनां प्राण नसायी।
दीप सिषा लषि[10] कैं जु पतंगी निज तन देत जरायी।
बन[11] मैं नाद कुरंगी सुनि कैं जाल[12] मांझ उरझायी।
पांचू सेवत आनंद मानत सो सठ जानों[13] रै भायी।

---

१८७ : १. प्रति 'अ' - लैं। २. प्रति 'अ'—नाम।
३–४ प्रति 'अ'—जलावाहनी म। ५. प्रति 'अ'—न।
६. प्रति 'अ'—उपजावो। ७. प्रति 'अ'—तै।
८. प्रति 'अ'—विषै। ९. प्रति 'अ'—कषाया।
१०. प्रति 'अ'—देनां।

विनसत वार लगै नहिं इन कूं यातैं[14] विलम न लगायी[15] ।
तजि इन पार्श्व भजो शिवरायी[16] फिर कव अवसर आयी[17] ।

राग सोरठ

(१८९)

भूंडी नां कहो रै भूठी ना कहो रै हो सुज्ञानीड़ा रै ।।टेक।।
यह अवसर वहु पुण्यतैं[1] पायो ता सं कहूं निज हेत की वतियां ।
सत गुरु नै सांचो[2] उपदेस दीयो, ताय गहौ पावो सुभ गतियां ।
वचन मांय विप अमृत दोवू रे[3] पारस विप तजिये सुभ मतियां[4] ।

---

१८८ : १–२ प्रति 'अ'—एक ।
३. प्रति 'अ'—वाछा ।
४. प्रति 'अ'—दुहाई ।
५. प्रति 'अ'—रसना ।
६. प्रति 'अ'—वाई ।
७. प्रति 'अ'—प्रान ।
८. प्रति 'अ'—गमायी ।
९. प्रति 'अ'—घ्राणा ।
१०. प्रति 'अ'—लखि ।
११. प्रति 'अ'—वन ।
१२. प्रति 'त' एवं 'न'—जानि ।
१३. प्रति 'अ'—जाणों ।
१४. प्रति 'त' एवं 'न'—जानि ।
१५. प्रति 'अ'—कराई ।
१६. प्रति 'अ'—शिवरई ।
१७. प्रति 'अ'—सभी तुकान्त 'आयी', 'भायी', उरझायी में के स्थान पर 'ई' का प्रयोग

१८९ : प्रति 'अ'—तै :
२. प्रति 'अ' सम्यक ।
३. प्रति 'अ'—रै ।
४. प्रति 'अ'—'मतिया', ... 'वतिया' सभी तुकान्त शब्दों में नासिक्ता का अभाव

सोरठ की गुझाभ

(१९०)

पर मैं कैसें रमूं म्हारा चेतन का गुण जाय ।।टेक।।
जैसी संगति तैसो फल दे प्रगट लपो जग मांय[1] ।
अगनि लोह की संगति सेती,[2] घण को घात सहाय ।
दीपक संग कियो वत्ती नैं, सो दीपक होय[3] जाय ।
या विधि लषि गुण दोस संग तैं निज गुण मांय रनाय ।
जो दीसै सो ही पर पुद्गल कवहू[4] नां[5] ठहराय ।
'पारस' अविनासी सुपमय[6] होय पर मैं क्यूं[7] विलमाय ।

सोरठ की गुझाभ

(१९१)

सावरिया[1] स्वामी जो अव[2] मोहे त्यारो ।।टेक।।
अनंतकाल षोयो निगोद में भमियो कुगति मंझारो[3] ।
असुभ करम जब[4] हलको पड़ियो, लषियो रूप तिहारो ।
अनंत ज्ञान लक्ष्मी के सागर, परमातम[5] सुपवारो[6] ।
भव आताप नसावण जलमुच मेटो ताप हमारो ।
सत संगति तुम भक्ति दीजिये, आगम अर्थ[7] विचारो ।
पार्श्वदास की याही अरज है, कुमति कुविसन निवारो ।

---

१९० : १. प्रति 'अ'—माय । २ प्रति 'अ' करि ।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—हो । ४. प्रति 'अ'—कवहू ।
५. प्रति 'अ'—ना । ६. प्रति 'अ'—सुखमय ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—क्यों ।

१९१ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—सावरिया २. प्रति 'अ' अव ।
३. प्रति 'अ'—मझारो । ४. प्रति 'अ'—जव ।
५. प्रति 'अ'—परमामृत । ६. प्रति 'अ' सुखवारो ।
७. प्रति अ'—अरथ ।

राग सोरठ

(१९२)

थांका गुण गावां[1] म्हांका[2] प्रभु जी दरसण दीज्यो ।।टेक।।
मोह करम वसि हित नहीं पेख्यो[3] मथ्या[4] मारिग रीज्यो।
पुण्य उदै प्रभु तुम ढिग आयो, अब मिथ्यातम छीज्यो।
और न भावूं तुम ढिग चाहूं[5] मोकूं तुम सो कीज्यो।
'पारस' अरज करै त्रभुवन पति भव भव सरणो दीज्यो।

सोरठ को गुभाभ

(१९३)

जिनराज एक ही भजनां[1] दूजा क्या करनां क्या करनां ।।टेक।।
अनादि काल तैं नां जाण्यां[2] हम, कैसा देवत भजनां।
अब[3] जानें सांचे स्वामी जिनराज अन्य परिहरनां।
दोप रहित सरवज्ञ[4] जिनोत्तम वीतराग अनुसरना।
जाकी वानी[5] सुणि[6] भवि जानी जीवाजीव विवरना।
षट चालीस गुणनि करि मंडित सक्र परै निति[7] चरनां।
'पारस' प्रभु चिंतामणि पाये ये ही रहौ मम सरनां।

---

१९२ : प्रति 'त' एवं 'न'—गावा। २. प्रति 'अ'—महांका।
३. प्रति 'अ'—समझ्यों। ४. प्रति 'अ'—मिथ्या।
५. प्रति 'त'—तुम ढिग चाहूं और न भावूं।

१९३ : १. प्रति 'अ'— भजना। २. प्रति 'अ'— समझे।
३. प्रति 'अ'—अब। ४. प्रति 'अ'—सर्वज्ञ।
५. प्रति 'अ'—वानी। ६. प्रति 'अ'—सुनि।
७. प्रति 'अ'—नित।

(१९४)

अब[1] कहा रोवै रै भाई।
असुभ करम रस भोग तैं कहा रोवै रै भाई ।।टेक।।
पैली हसि हसि बंध किये तैं काणि रषी कछु[2] नांयी[3]।
श्री गुरु भाषित पंथ गह्यो नहिं, पाप करत न अघायी[4]।
पाप नाम नरपति के किंकर, विसन सात दुषदायी[5]।
नरक नगर मैं बास[6] करावै, संग तजो इन मांई।
चउ कषाय दुरगति को पोरी, इन तैं दूर रहायी[7]।
वीतराग उपदेस धारि उर स्वपर भेद दरसायी[8]।
सुष[9] दुष[10] पाप राग रिस[11] तजिये जिनवर सिक्षा पायी।
'पारस' राग द्वेष तजिबे[12] तैं होवैगो शिवरायी[13]।

राग सारंग की होली

(१९५)

निति ध्यायो करि जिन जासूं शिव[1] पासी ।।टेक।।
अष्ट करम के बंध्रन[2] तेरै आपै ही षुलता जासी।
ध्यान कियां निज रूप लषावै, स्वर्ग संपदा होय दासी।

---

१९४ : १. प्रति 'अ'—'अब' का लोप। २. प्रति 'अ'—कछू।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—नांई। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—अघाई।
५. प्रति 'अ'—दुखदायी। ६. प्रति 'अ'—वास।
७-८ प्रति 'अ'—रहाई, दरसाई, ९-१० प्रति 'अ'—सुख, दुख।
११. प्रति 'अ'—रिष। १२. प्रति 'अ'—तजिवे।
१३. प्रति 'अ'—शिवराई।

जिन ध्यावें सो शिव[3] सुप[4] पावें, आगम में सतगुर[5] गासी।
'पारस' ध्यान कियो तिनके उर ग्यान[6] जोति परगट भासी।

सारंग की होरी

(१९६)

जीया काहे कूं विसन मध आयो छै।।टेक।।[1]
जूवां तें पांडव अति जोद्धा राज आपको ठिगायो छै।
मांस पांय[2] वकराय[3] विनठ्यो,[4] निश्चय राज गमायो छै।
मदिरापान दोस जादव सुत नगर कुटंब जरायो छै।
वेस्यां[5] वसि[6] होय चारुदत्त जी विष्टा करि लपटायो छै।
विसन[7] सिकार दोस करि जग में ब्रह्मदत्त पछितायो छै।
चोरी तें शिवभूति द्विजोत्तम कुमरण करि भरमायो छै।
पर तिय राच्या[8] रावण भूपति, दोजग[9] मैं दुप पायो छै।
अैसे विसन जाणि तजि 'पारस' तब[10] तू उत्तम गायो छै।

---

१९५ : १. प्रति 'अ'—सिव। २. प्रति 'अ'—वंधन।
३. प्रति 'अ'—सिव। ४. प्रति 'अ'—सुख।
५. प्रति 'त'—सतगुर। ६. प्रति 'अ'—ज्ञान।

१९६ : १. प्रति 'अ'—में यह पंक्ति नहीं है। २. प्रति 'अ'—पाय।
३. प्रति 'अ'—वकराय। ४. प्रति 'अ'—विणठ्यो।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—वेसां। ६. प्रति 'अ'—वसि।
७. प्रति 'अ' एवं 'त'—विसन ८. प्रति 'अ' एवं 'त'—राच्यो।
९. प्रति 'अ'—एवं 'त'—दोजुग। १०. प्रति 'अ'—तब।

राग सारंग की होरी

(१९७)

कित उरझे स्याम योगिन[1] मैं।
हूं[2] तो ढूंढ[3] फिरी सेसावन मैं ॥टेक॥
ऐसा जतन कोयी[4] मोहि बतावो जो पीया[5] आवे आगन[6] मैं।
जे कोयी ल्यावे तो मैं जान न द्यूंगी,[7] प्रीति पगी मेरा मन मैं।
पार्श्वदास पिय के रंग राचि के सांग रहूंगी विजन[8] मैं।

राग सारंग की होरी

(१९८)

ध्यान धरत हूं[1] जिनवर को, दुखहर[2] को ॥टेक॥
जाके वचन सुनत पद पायो, पदमावति[3] धरणीधर[4] को।
सहज जीभ करि फणपति वरनत[5] पार न पावे गुणधर को।
कृपा धारि[6] त्यारो प्रभु 'पारस' अरज करत हूं कोंन वर को।

काफी की होरी तितालो

(१९९)

होरी को पिलय्या[1] स्याम मेरे द्वारे ही आयो ॥टेक॥
चोहा चंदन ओर अरगजा[2] पिचकारन भर ल्यायो।
सेसावन की सघन कुंज कूं पणुवन रव सुनि ध्यायो।

---

१९७ : १. प्रति 'अ'—जोगिन। २. प्रति 'अ'—हू।
३. प्रति 'अ'—ढूंढि। ४. प्रति 'अ'—कोई।
५. प्रति 'त'—एवं 'न'—पिया। ६. प्रति 'त' एवं 'न' अगन।
७. प्रति 'अ'—द्योंगी। ८. प्रति 'त'—विपन।

१९८ : १. प्रति 'अ'—हू। २. प्रति 'अ'—अघहर।
३. प्रति 'अ'—पदमावती। ४. प्रति 'अ'—धरनीधर।
५. प्रति 'अ'—वरणत। ६ प्रति 'त'—राषि।

संजम धारि गह्यो सुद्धातम मुक्ति त्रिया संगि थायो।
'पारस' धन्नि पिया संगि रजमति तप करि सुरपद पायो।

राग काफी की होरी

(२००)

मो सें प्रीति प्रभू जी नें तोरी,
एहो[1] ना जानू बिलमाये[2] कोन ।।टेक।।
हरिपित[3] चित मम द्वार पधारे, फिर कैं चले गिर ओरी[4]।
वाही के संग मेरो चित है सजनो दरस चहूं[5] उन को री।
पार्श्वदास पिय[6] के रंग रचि कें त्यागूंगी बुधि भोरी।

काफी की होरी ताल १

(२०१

जिन राज विनां दुप कोंन हरे संसार भ्रमन को ।।टेक।।
सकल जीव वसि कर्म रुलत है डुलत चतुर्गति मांय।
सहै दुख[1] जन्म मरण को।
पुण्य[2] उदै मानुप कुल उत्तम, पाय न रहौ प्रमाद,
गहौ जिन चरन सरन को।

---

१९९ : १. प्रति 'अ'—पिलैया। २. प्रति 'अ'—अरकचा।

२०० : १. प्रति 'अ'—'ए हो' शब्दों का लोप। २. प्रति 'त'—भरमाये। ३. प्रति 'अ'—हरपत। ४. प्रति 'अ'—ओरी। ५. प्रति 'अ'—चवूं। ६. प्रति 'अ'—पीव।

पसु पंछी लहि सरन भये सुर, क्यों न लहे श्रद्धान,
सहित नर मुक्ति गमन को[3]।
पार्श्वदास जाचत त्रभुवन पति निस दिन दीजिये[4] नाथ,
मोहि तुम सरन चरन को।

काफी की होरी

(२०२)

सखी री मो पै रंग न डारो, मैं तो नेम पिया संगि राची ।।टेक।।
नेम पिया संगि होरी रचि कै तपति मिटावैं सारी।
गिर परि जावै पिय[1] कूं पावं, अनंत गुनन[2] को धारी।
ग्यान[3] गुलाल दया जल भरि कैं ध्यान करूं पिचकारी।
नेम चरन[4] पैं जाय चलावूं, मोक्ष लहूं रिझवारी।
वा विनां[5] अन्य संग न सुहावै, नवमां[6] भव सैं[7] नारी।
पार्श्वदास दसवां भी भव मैं, कीनी तपस्या लारी[8]।

राग काफी

(२०३)

जिन ध्यावो जी आजि गावो प्रभू[1] के भजन।
जिन वचन[2] श्रवन या तैं विनसत है भव उदधि भ्रमन[3] ।।टेक।।
जिन ध्यावै सो सुर पद पावै, क्रम तैं करत वै[4] तो[5] मुक्ति गमन।

---

२०१ : १. प्रति 'अ'—दुःख। २. प्रति 'अ'—पुन्य।
३. प्रति 'अ'—कूं। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—दीजिए।

२०२ : १. प्रति 'अ'—पिया। २. प्रति 'अ'—गुणनि।
३. प्रति 'अ'—ज्ञान। ४. प्रति 'अ'—चरण।
५. प्रति 'अ'—विना। ६. प्रति 'अ'—नवमा।
७. प्रति 'त' और 'न'—की। ८. प्रति 'त'—संग तपस्या धारी।

जिन ध्यावै सो ही निज सुप पावै, उन तैं[६] चाहत मुक्ति रमन।
जिन ध्यावै सो धन्य जगत मैं, पारस उन कूं करत नमन।

काफी की होरी

(२०४)

लिपि भेजो पत्र इम आलो तुमारी[१] ॥टेक॥
सिद्धि सिरी[२] के कारण[३] चाले बिन लपि[४] बात[५] हमारी।
एक संदेह निवारण कीजे कोंन चूक परि[६] त्यागी,
नाथ मैं तौ दासी तुमारी[७]।
पशुवन की तुम करुणां कीनीं मेरी कछु न विचारी।
तुमरी कहाय कहावूं कौन की, मोकूं भी लीजिये लारी।
बड़ी मोये[८] आस[९] तुमारी।
माता[१०] शिवा पिता[११] समुदविजै भ्राता बलि कृष्ण बिहारी।
और सकल तुम दरसन[१२] चाहै,[१३] राज करी सुपकारी[१४]।
हाल वय है लघु थारी।
ऐसी ही जो आप विचारी, संजम की विधि[१५] धारी।
तौ हम हूं संगि संजम धरिहै, 'पारस' सोभा भारी।
नाथ[१६] संगि सोहै नारी।

---

२०३ : १. प्रति 'अ'—प्रभु। २. प्रति 'अ'—वचन।
३. प्रति 'अ'—भमन। ४. प्रति 'अ'—वे।
५. प्रति 'अ'—तो। ६. प्रति 'अ'—तैं।

२०४ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—में टेक छूट गई है। २. प्रति 'अ'—श्री।
३. प्रति 'अ'—कारिज। ४. प्रति 'अ'—लखि।
५. प्रति 'अ'—वात। ६. प्रति 'अ'—पर।
७. प्रति 'अ'—तिहारी। ८. प्रति 'अ'—मोय।
९. प्रति 'अ'—आसा। १०. प्रति 'अ'—सिवा।
११. प्रति 'त' एवं 'न'—पित। १२. प्रति 'अ'—दरसण।
१३. प्रति 'अ'—चाहत। १४. प्रति 'अ'—सुपकारी।
१५. प्रति 'अ'—विधि। १६. प्रति 'अ'—अपने पिया।

काफी की होरी

(२०७)

निज रूप निहारा, भया उर माय उजारा[1] ॥टेक॥

दरसन[2] ज्ञान मयी चिनमूरति[3] सुष वीरज है अपारा।

राग द्वेष मद मोह न जामैं, नांहीं कर्म पसारा।

समता रमता दिमकता गमकता प्रभुता परम उदारा।

सपरस[4] रस और गंध वरण गुण[5] परजायन करि न्यारा।

अनादिकाल तैं मिथ्यातम वसि निज पर भया न विचारा।

'पारस' जयवंतो[6] जिन मत रहौ याही तैं होत उधारा[7]।

राग सोरठ की होरी

(२०८)

अव[1] मैं जिनवर ओर परी, म्हारो[2] तन मन अटक्यो री ॥टेक॥

वट मैं पशु रव स्वामि सुन्यों[3] सो ही उर विचि[4] षटक्यो री।

पल मैं आय ब्रह्मरिपि[5] संस्यो, गिर प्रति सटक्यो री।

वन मैं जाय ध्याय[6] सिद्धनि कूं परिग्रह पटक्यो री।

'पारस' धन्नि[7] राजमति पिय[8] ढिग[9] निज सुप[10] गटक्यो री।

---

२०७ : १. प्रति 'त' – अनम सुप उपज्या भारा। २. प्रति 'अ'—दर्शन।
३. प्रति 'अ'—चनभूरति। ४. प्रति 'अ'—स्पपरस।
५. प्रति 'अ'—मय। ६. प्रति 'अ'—जैवन्तो।
७. प्रति 'त' एवं 'न'— उजारा।

२०८ : १. प्रति 'अ'—अव २. प्रति 'अ'—महारो।
३. प्रति 'अ'—सुन्यो। ४. प्रति 'अ'—विच।
५. प्रति 'अ'—ब्रह्मरिप। ६. प्रति 'अ'—नाय।
७. प्रति 'अ'—धन्य। ८. प्रति 'अ'—पिया।
९. प्रति 'अ'—संगि। १०. प्रति 'अ'—सुख।

राग सोरठ

(२०९)

चेतन तू तो[1] चेति रे, क्यूं अचेतन होवै रे ।।टेक।।
पर में राच्यो तू अनादि को निज नहीं जोवै रे।
मिथ्या भाव मैल आतम कै क्यों[2] नहीं धोवै रे।
चिंतामणि सम निज अनुभव करि क्यों दिन पोवै[3] रे।
सम्यक गुरु दी पाय देसनां,[4] मूरिप सोवै रे।
चेति फेर कब अवसर, जम तोय जोवै[5] रे।

राग कालिगड़ो की होरी

(२१०)

होरी को षिलय्या चेतन घर[1] आयो ।।टेक।।
आजि उजाड़ि[2] भयी कुमता घर[3] सुमता दिल सुष[4] पायो।
ग्यान[5] दान वैराग लियां संगि चारित मैं[6] उमगायो।
निज परणति सुभ रंग घुरायो, तामैं चेतन छायो।
मिथ्या भाव मैल नहि जामैं ध्यान वसन[7] पहरायो।
'पारस' धन्य भयी[8] ये होरी, निज संपति दरसायो।

---

२०९ : १. प्रति 'अ'—तौ।
२. प्रति 'अ'—क्यूं।
३. प्रति 'अ'—खोवै।
४. प्रति 'अ'—देसना।
५. प्रति 'अ'—तोवै।

२१० : १,३ प्रति 'अ'—घरि।
२. प्रति 'अ'—उजाड़।
४. प्रति 'अ'—सुख।
५. प्रति 'अ'—ज्ञान।
६. प्रति 'अ'—पैं।
७. प्रति 'त' एवं 'अ'—वसन।
८. प्रति 'अ'—भई।

कालिगड़ो की होरी

(२११)

श्री गुरु पेलें[1] होरी रं भव[2] ताप मिटावें ।।टेक।।
सम्यक ज्ञान गुलाल दया जल समता पिचकी वावें रे।
निज परणति रंग मांय रगीले शिव तिय पैं उमगावें रे।
आगम फाग मांय अति प्रीता, 'पारस' मस्तग नावें रे।

राग धमाल

(२१२)

म्हारं होरी वसी तन मन में।
होरी पेलूं साधर्मी जनन[2] में।
तत्व कथा सो गुलाल उछारूं, वीचि[3] सभा के सजन में।
मिथ्या भाव मलिनता विनसी, करुणां जल के न्हवन में।
उज्जलता जव[4] होय वहुत[5] सो. कीरति होय वुवन[6] में।
'पारस' असी होरी पेलत, टारु सकल दिघन में।

होरी आसावरी की

(२१३)

नेमीस्वर पेलें होरी सावरियो जादूपति ।।टेक।।
रजमति सी तिय छोरी, मुक्ति रमनि सूं जोरी।
चले गिर ओरी।

---

२११ : १ प्रति 'अ'—पेले। २. प्रति 'अ'—भवा।
३. प्रति 'अ'—वावैं।

२१२ : १,२ प्रति 'अ'—सापरमी जनन। ३. प्रति 'अ' एवं 'त'—वीचि।
४,५,६. प्रति 'अ'—जय, वहुत, भुवन।

अंजन को अघ भंजन कीनों, वारिषेण दुप टारो।
मर्कट स्वान सुरग[7] सुष[8] थायो, अब[9] कै हमारो है वारो[10]।
मिथ्यातम मम गयो है अनादी, सम्यक भयो है उजारो।
पार्श्वदास चरनन रो चेरो आवागमन[11] निवारो।

राग काफी

(२१६)

सो प्रभू विरले ही नर पावै।
जाकूं ज्ञान जोति श्रुत गावै[1] ।।टेक।।
केवू गिरि कानन मैं पैठे केवू भसम रमावै।
केवू जग्य होम तर्पण तिलकादिक तें शिव चावै।
केवू गावै तूर वजावै, मन माहीं[2] उमगावै।
केवू देव पूजि करि जग मैं नाम करम करवावै।
वाहिर कृयाकांड[3] कीये[4] तैं[5] पर ही पर दरसावै।
अंतर सुद्ध[6] कियें विन सव ही थोथा उड़ि उड़ि जावै।
सपरस कीयैं हाति[7] न आवै, नैनन तैं न लपावै।
'पारस' देपन जानन हारो, ताही कूं सिर नावै।

---

२१५ : १ प्रति 'अ'—है। २. प्रति 'अ'—भक्ति।
३. प्रति 'अ'—उवारो। ४. प्रति 'अ'—लो।
५. प्रति 'अ'—कीयो। ६. प्रति 'अ'—क्षमा।
७. प्रति 'अ'—स्वग। ८. प्रति 'अ'—सुख।
९,१० प्रति 'अ'—अव, वारो। ११. प्रति 'अ'—आवागवन।

२१६ : १ प्रति 'अ'—गावें। २. प्रति 'अ'—मैं।
३. प्रति 'अ'—कांडक्रिया। ४ प्रति 'अ'—करवे।
५. प्रति 'अ'—तैं। ६. प्रति 'अ'—शुद्ध।
७. प्रति 'अ'—हाथि।

राग काफी

(२१७)

पारसनाथ सुनों विनती मोरी, यह[1] वरदान दया करि पावूं ।।टेक।।
प्रात सेज तजि सुमरि तोय कूं तन सुचि करि धरि वसन सुआवूं।
सुवरण[2] कलस धारि सिर ऊपरि,[3] जल करि न्हवन करावूं।
रोग सोग आरति विस्मय सव,[4] मेटूं भव वन[5] भ्रमण हटावूं।
चरण कमल जल के सपरस तैं, तन मैं रोग एक नहिं पावूं।
अष्ट द्रव्य करि पूजन करिहूं, सुर पद पाय मिनष मैं आवूं।
तुम ढिग आव धारि मुनि के व्रत, सुद्ध रूप मेरौ मैं ध्यावूं।
'पारसदास' तुमारो दास होय अव[6] मैं दास कोंन[7] को कहावूं।
सव दुष मेटि करो तुम नम ज्यूं जन्म मरण के दुष[8] मिटावूं।

काफी मैं वधायी

(२१८)

आजि वधायो अजोध्या नगर मैं,
चलो री मिलि मंगल गावै ।।टेक।।
प्रगटे वृषभ जगभान नाभि घर लखि[1] सुरपति से नृत्य रचावै।
रूढा[2] बारा कोडि जाति के बाजा बाजत[3] एक लय लावै।
घर घर बंधत माल मोतियंदी, और मुतियन[4] तैं चौक पुरावै।
दान किम छक देत नाभि नृप, तन मन लषत हरष नहिं मावै।

---

२१७ : १. प्रति 'अ'—ये। २. प्रति 'त'—सुवरण।
३. प्रति 'त'—उपरि। ४. प्रति 'अ'—सव।
५. प्रति अ'—वन। ६ प्रति 'अ'—अव।
७. प्रति 'अ'—कौन। ८. प्रति 'अ'—दुःष।

धन्य भाग्य[५] मोरादेवी मात को, तीन लोक प्रभु कूं उपजावै।
सो उच्छव[६] जन्माभिषेक[७] को, 'पारस' देपे ही वनि[८] आवै।

*(२१९)

मोकूं नाथ दीजिए तेरा पंथ जिनचंद ।।टेक।।
इंद नरेंद खगेंद गनेंद फनेंद चहत जो अमंद।
रत्नत्रय मय प्रगटे लिपत ऋपि गहत गृही रु मुनिंद।
निश्चय अरु व्यवहार रूपमय सुगम कठिन सुपकंद।
'पारस' तुम सेवाफल जाचत पावूं पद न सुरेंद।
या तै चउं गति दुपमय संसृति के कटिहै भव्रफंद।

*(२२०)

मोह तम ह्यां सैं उड़ि जाना।
सम्य ज्ञान दिवाकर मम उर प्रगट्यो तजि थानां।
वीतराग सर्वज्ञ देव जिन निश्चै ठहरानां।
गुरु निरग्रंथ दयामय वृप, लपि दृढ़ता करि मानां।
जीव चेतनामय अजीव जड़ सप्त तत्व आनां।
दरसन ज्ञान चरणमय शिवपथ, या विन उरझानां।
तुम परसाद किये परिवर्तन अंत नहीं पाना।
'पारस' प्रभु पद पंकज सेय अव्र दुठ तोहे पहचाना।

---

२१८ : १. प्रति 'अ'—लपि। २. प्रति 'अ'—गाडा।
३. प्रति 'अ'—वजत। ४. प्रति 'अ'—मोतियन।
५. प्रति 'अ'—भाग। ६. प्रति 'त'—उच्छ।
७. प्रति 'अ'—जन्माभिसेक। ८. प्रति 'अ'—वनि।

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

*(२२१)

सुने हम बैन श्री गुरु ज्ञानी सै ।।टेक।।
सब तत्वनि मैं सार है जो आतमां ज्यों मुप ऊपरि नैन।
याहि लषै सब ही लषै जी, या विन नहीं सुप चैन।
याकी महिमा को कहै जी, जाकूं ध्यावत मुनि दिन रैन।
'पारस' ध्यावो तास कूं जी, पावो शिव भापो वच जैन।

राग आसावरी

(२२२)

धनि मुनि जिन की लगी लौ[1] शिव और नैं[2] ।।टेक।।
पंचेंद्रिय विषयन कूं तजि कै वसि कीयो चित चोर नैं।
बाहिर क्रयाकांड नहीं चूकत आराधत[3] तप घोर नैं।
रतनत्रय दश लच्छण धन करि, साधत निज वल[4] जोर नैं।
'पारस' धरि करुणां समझावत[5] संसारी जिय[6] ढोर नैं।

(२२३)

साधरमी सतसंग ही दुल्लभ संसार ।।टेक।।
तत्वारथ कथनीं करै विकथा[1] न लगार।
निज पर द्रव्य विचार मैं इनको अधिकार।
मिथ्या अलट मिटाय दे करिहै निरधार।
जैसे भानु प्रकास तैं नसिहै अंधकार।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२२२ : १. प्रति 'अ'—लौं। २. प्रति 'त'—नै।
३. प्रति 'त'—आराध। ४. प्रति 'अ'—वल।
५. प्रति 'त' एवं 'न'—समुझावत। ६. प्रति 'अ'—जीय।

सार त्रय नाटक कथा ये अमृतसार।
पीवे और फुनि पायहै करि करुणां[2] सार।
और जिते परसंग ही दोवे कुगति मभार।
पारस[1] तारनहार है सतसंग बिचार[3]।

राग आसावरी

(२२४)

जिन जी का भजन करि ये ज्ञांनी[1] ।।टेक।।
जिन जपिया[2] तिन निज सुप[3] चपिया जिन[4] न जप्या तिन के हांनी।
आतमरुप सुवारन[5] जिनकी प्रतिमां प्रतिछंदा जांनी[6]।
जिनदेवन के भजत[7] मिटै दुप शान्ति[8] रुप शिव[9] सुपदांनी।
'पारस' पास भजत है याते चाहै निज पद सुखपांनी[10]।

(२२५)

कोयी नहीं जानै सुभासुभ चाल[1] ।।टेक।।
आदीसुर[2] कूं भोजन काल, वाहु[3] कियो चक्री बेहाल[4]।
चक्रीसुत चालै बेचाल,[5] मेघेस्वर[6] की कीरति भाल।
बड़े भ्रात रघुपति वनपाल,[7] भरत विरक्त[8] भये भूपाल।

---

२२३ : १. प्रति 'म' एवं 'न'—विकथा। २. प्रति 'म'—करुणा।
३. प्रति 'त' में अन्तिम दो पंक्तियां नहीं है।

२२४ : १. प्रति 'म'—ज्ञानी। २. प्रति 'म'—जजिया।
३. प्रति 'म'—सुख। ४. प्रति 'म'—जे न।
५. प्रति 'म'—सुधारण। ६. प्रति 'म'—जानी।
७. प्रति 'म'—भजन ते। ८-९. प्रति 'म'—सान्ति, सिव।
१०. प्रति 'म'—सुखसानी।

दुरजन तौ भूलै सुषपाल,[9] सज्जन कूं करिहै पैमाल।
श्रेणिक से श्रोता सुविसाल,[10] तिन को होवै इस विधि काल।
अब[11] काटिहै[12] करम[13] को जाल, मस्तग रहो पारस प्रतिपाल।

राग आसावरी

(२२६)

वचन सुनों अनगार के इन ही मैं सार।।टेक।।
जनम मरण पाये घने तिनको नहि पार।
मिथ्या भेषी वहू[1] मिले न मिले अनगार।
कबु[2] न मिली सुभ देसनां, सुष[3] को आधार।
धन्य भाग्द[4] अब[5] ही भयो, मिलियो श्रुत सार।
हित अनहित समभयां[6] विनां, र्नमिये[7] जु अपार।
निश्चय सो समुझायसी,[8] श्रुत ही आधार।
जग मंदिर मैं जोति है वीतराग[9] वच[10] सार।
'पारस' इनही कूं चहै, शिव के दातार।

---

२२५ : १. प्रति 'अ'—टेक में 'करमा हूं दी चाल' प्रक्षिप्त है।
२. प्रति 'अ'—आदीश्वर।
३. प्रति 'अ'—वाहु।
४. प्रति 'अ'- वेहाल।
५. प्रति 'अ'—वेचाल।
६. प्रति 'अ'—मेवेसुर।
७,८. प्रति 'अ'—वनपाल, विरक्त।
९. प्रति 'अ'—सुखपाल।
१०. प्रति 'अ'—सुविसाल।
११. प्रति 'अ'—अव।
१२. प्रति 'त' एवं 'न'—काटि हूं।
१३. प्रति 'अ'—कर्म।

२२६ : १. प्रति 'अ'—वहु।
२. प्रति 'त'—कहु।
३. प्रति 'अ'—सुख।
४. प्रति 'अ'—भाग।
५. प्रति 'अ'—अव।
६. प्रति 'अ'—समझ्या।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—भ्रमियें।
८. प्रति 'अ'—समझावसो।
९,१०. प्रति 'अ'—वीतराग, वच।

राग आसावरी

(२२७)

सुनि लै रे[1] महरम तेरा जो हित दो वतियां ।।टेक।।
भोत काल विषयन संगि पोयो, अब तौ[2] छाडो[3] ये लतियां।
संग दोस[4] तें निज गुण भूले, भ्रष्ट भयी है[5] मतिया।
जिनवर भाषित धर्म गहौ रे, ज्यूं पावो सुभ गतिया।
दुरलभ[6] अवसर[7] पाय कै[8] रे भजि पारस दिन रतियां[9]।

राग बरवो

(२२८)

नेम पिया की संग मात मोहे[1] जानें दे री ।।टेक।।
असन न भावै वसन[2] न सुहावें, भावै दरस अभंग।
गिरवर जावूं पिया कूं पावूं, रांचूगी वाही कै रंग।
'पारस' घनि रजमति या वय[3] मैं, पंड्यो[4] चंड अनंग।

---

२२७ : १. प्रति 'अ'—र। २. प्रति 'अ'—तो।
३. प्रति 'अ'—तजो। ४. प्रति 'त'—दोष।
५. प्रति 'त'—सु ६ प्रति 'अ'—दुर्लभ।
७. प्रति 'अ'—अवसर। ८. प्रति 'अ'—कै।
९. प्रति 'अ'—सभी तुकान्त शब्दों 'रतियां' आदि में अनुनासिकता का लोप है।

१. प्रति 'अ'—मोये। २. प्रति 'अ'—वसन।
३. प्रति 'अ'—वय। ४. खंड्यो।

राग माढ़, आसावरी

(२२९)

सख्यां[1] जु[2] हमारे दीक्षा लै गये क्यूं करि रहूं जी घर मांय ॥टेक॥
मात पिता सूं रजमति[3] वीनवै[4] दीण दियावो संजम काज।
यो संसार असार है यामैं सार कछु[5] नांय।
देह रोग को गेह है यामैं नेह किम काज।
विनसत[6] वार[7] लगै[8] नहीं काचा घट उनिहार।
भोग सरप[9] के भोग से धर्म विनासनहार।
देत भ्रमण दुरगति विषै 'पारस' तप एक सार।

अलय्या विलावल

(२३०)

जाचतु है हम श्री जिन नायक।
अन्य कुदेव[1] न[2] देनें लायक ॥टेक॥
ज्ञानावरणादिक दुखदायक,
इन कूं जड़ तैं आप नसायक,
पर परणति तैं भ्रमत जीव जग,
सो मेटो आये तुम पायक।
अष्ट द्रव्य प्राश्रुक ले पूजूं,
अष्ट कर्म[3] नासन जगज्ञायक[4]।

---

२२९ : १. प्रति 'त'—सयां।
२. प्रति 'अ'—जु।
३. प्रति 'अ'—रजमत।
४. प्रति 'अ'—विनवै।
५. प्रति 'अ'—कछू।
६,७. प्रति 'अ'—विनसत वार।
८. प्रति 'अ'—लगैं।
९. प्रति 'अ'—सरम।

का पै जावूं तुमरो कहायक।
तुम सो करि सुनि 'पारस' बायक।

राग सारंग

(२३१)

अरज सुनो[१] जो महाराज हो जी जिनराज[२],
तुम विन[३] कोन[४] सुनै जो म्हारी ।।टेक।।
अनादि काल तैं भौत[५] भ्रमैं[६] हम, ना जान्यों[७] हित काज।
देव जानि बहुतेरे पूजे तिन मैं तुम सिरताज।
यातैं अरज करूं तुम ही तैं, औसर मिलियो आज।
अनंत चतुष्टय युक्त[८] ज्ञान घन भवदधि तरन जिहाज।
मुक्तिमार्ग[९] रतन त्रय भाप्यो, सो तो कठिन इलाज।
हीणशक्ति सहनन हीण मम क्यूं करि वनत समाज।
पुण्य उदै तुम भक्ति मिली[१०] मम संसारां वुधि पाज।
या दृढ होहु कृपानिधि जो लू, पावूं शिवपुर राज।
तुम त्रलोकपति सुरनर मुनि नुत हौ[११] सबके अधिराज।
'पारस' दास कहा कै पर कूं[१२] सेवत आवै लाज।।

---

२३० : १. प्रति 'अ'—देव। २. प्रति 'अ'—नहि।
३. प्रति 'त'—द्रव्य। ४. प्रति 'त'—जगनायक।

२३१ : १. प्रति 'अ'—सुनो। २ प्रति 'अ'—'हो जी जिनराज' की पुनरावृति।
३. प्रति 'अ'—विन।
४. प्रति 'अ'—कोनं। ५ प्रति 'अ'—भोत।
६.प्रति 'अ'—भ्रमे। ७. प्रति 'अ'—जान्यो।
८. प्रति 'अ'—जुक्त ९. प्रति 'त'—भक्ति मार्ग।
१०. प्रति 'अ'—मिलि। ११. प्रति 'अ'—तुम।
१२. प्रति 'अ'—कैं।

राग सारंग

(२३२)

हा रै तोये वरजं वांरुवार रै विसन[1] मध मति नं जाय ।।टेक।।
दुरगति दुःख सहे इन सेती हाय हाय विललाय[2] ।
अति दुल्लभ मानुष भव पायो करि[3] कछु सुगति उपाय ।
करि अनीति रावण रघुपति सूं नरक मांय पछिताय ।
तप व्रत कीनां[4] राम ज्यानकी, मुक्ति सुरग मै थाय ।
दोन्यूं भव इन सेती विगडै तन धन धरम पलाय ।
'पारस' तजो संग विसनी[5] को तप धारो शिवदाय[6] ।

राग धानी

(२३३)

जिनवांनी[1] मो मन भावै, या संसय तिमिर मिटावै जी ।।टेक।।
नव तत्त्वनि की समझि करावै, स्वपर भेद दरसावै ।
मिथ्या अलट मिटावण कारन स्यादवादमय थावै ।
चंद्रभानुमणि नांहि पठंतर वाहिर तिमर मिटावै ।
बाह्य[2] अभ्यंतर मेटै वाणी तीन लोक सिर नावै ।
तप व्रत संजम यामैं गर्भित श्री गुरु[3] श्रुत मैं गावै ।
या विन दूजो शिव[4] पथ नांई,[5] यातैं सुभ गति पावै ।

---

२३२ : १ प्रति 'अ'—विसन । २. प्रति 'अ' एवं 'त'—विललाय ।
३. प्रति 'अ'—'करि' का लोप । ४. प्रति 'अ'—कीना
५. प्रति 'अ'—विसनी । ६. प्रति 'अ'—सिवदाय ।

रत्नत्रय याही तैं मिलिहै, या विन[6] नहिं उपजावै।
'पारस' जौलूं शिव[7] नहिं होंहै[8] उर तिष्टो या चावै।

राग धानी

(२३४)

श्री चिमतकार जिन ध्यावै सो मन वंछित सिद्धि पावै ।।टेक।।
आधि व्याधि सुमरण तैं नसिहै दुप दरिद्र विनसावै।
सुप संपति सहजां ही[1] थावै, सुर धरि गुण गण गावै।
माधोपुर ढिग एक कोस पैं[2] आलणपुर दरसावै।
पौण छतीसूं के नर नारी, जात करण उमगावै।
देस देस के[3] जात्री आवै, दरसण करि सुप[4] पावै।
महिमां[5] वचन अगोचर जिनकी मुप[6] तै कहिय न जावै।
संवत उगणीसै[7] रु वीस को संस्कृत पूज[8] रचायो।
वुदि वैसाप अष्टमी 'पारस', जात्रा करणें[9] आयो।

---

२३३ : १. प्रति 'अ'—वानी। २. प्रति 'अ'—वाह्य।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—गुर। ४. प्रति 'अ'—सिव।
५. प्रति 'अ'—नायी। ६. प्रति 'त'—विन।
७. प्रति 'अ'—सिव। ८. प्रति 'अ'—होवै।

२३४ : १. प्रति 'अ'—यी। २. प्रति 'अ'—पे।
३. प्रति 'अ'—सूं। ४. प्रति 'त'—सुख।
५. प्रति 'अ'—महिमा। ६. प्रति 'अ'—मुख।
७. प्रति 'अ'—उनीसै। ८ प्रति 'अ'—पूजा।
९. प्रति 'अ'—करणे।

लोकगीत की चाल में

(२३५)

निति ध्यावूं[१] हो सांवरा थारी वांनी,[२]
शिव मघ की दरसानीं ।।टेक।।
साषि सुनि जगतरन तारनीं भवि जन कूं सुप[3] पानीं ।
स्यादवाद निरवाध अन्य तैं निज संपति की दानी ।
आपा पर को भेद लषावै, करै असुभ की हानी ।
निज रस पुष्ट करत या वांनी,[४] दया वेलि[५] नहीं[६] छांनी[७] ।
'पारस' तुम प्रसाद जाचत उर, वांनी हो शिव[८] थानी ।

करहा की चाल मैं

(२३६)

जियरा रै श्री गुर सीष सम्हारि ।।टेक।।
अनादिकाल को मोहनी रै जीया निज पद दीयो रै भुलाय ।
विषय कषाय कुफांसि[१] मैं रै जीया निरदय[२] दीयो रै फसाय ।
मात तात सुत मुतलबी[3] रै जीया उदयाधीन विचारि[४] ।
बिन[५] मुतलब[६] जग बंधु[७] है गुरु[८] करुणानिधि सुषकारि[९] ।
जा मैं दुष[१०] सुष[११] ल्हेस नहीं रै जीया तामैं रह्यो रे लुभाय ।
दुःष नाहि सुष षानि है रै जीया, तो कूं[१२] सो सुधि नांय ।
विषय भोग बहु[१3] सुरग[१४] मैं रै जीया, भोग वार[१५] अनंत ।
या भव मैं संजम बड़ो[१६] रै, जीया धारै पुरष[१७] महंत ।

---

२३५ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—ध्यावू । २. प्रति 'अ'—वानी ।
३. प्रति 'अ'—मुख । ४. प्रति 'अ'—वानी ।
५. प्रति 'अ'—वेलि । ६. प्रति 'अ'—नहि ।
७. प्रति 'अ'—छानी । ८. प्रति 'अ'—सिव ।

इन्द्र[१८] चहै या लोक कूं रे जीया, संजम कारण एक।
'पारस' पायो सहज मैं रे जीया, सो धारो तजि टेक।

करहा की चाल मैं

(२३७)

जियरा रे जिन वांणी उर धारि ।।टेक।।
मोह नांसि[१] सम्यक्त कू[२] रे जीया प्रगट करै उरमांय[३]।
सुपकारी[४] माता भली रे जीया जिन वांनी[५] अवगाहि[६]।
हित समझ्यो तू अहित कू रे जीया हित की नांहि पिछाणि।
पुण्य उदै पायो भलो रे जिया मो समभाव वाणि।
करत इंद अहमिंदया रे जीया चक्रवर्ति[७] सुपवान[८]।
वांनी[९] कल्प लता भली रे जीया चाहै सो दे दान।
सांचो[१०] सुप सो मुक्ति मैं रे जीया अविनासी[११] अविकार[१२]।
ताहि[१३] लपावै भगवती रे जीया 'पारस' तारनहार।

---

२३६ : १. प्रति 'अ' - कुफामि। २. प्रति 'अ' निरदयी।
३. प्रति 'अ'—मुनलयी। ४. प्रति 'अ'—विचारि।
५. प्रति 'अ'—विन। ६,७ प्रति 'अ'—मुनलय, वंधु।
८. प्रति 'त' एवं 'न'—गुर। ९. प्रति 'अ'—गुनवान।
१०,११. प्रति 'अ'—दुग, सुख। १२ प्रति 'अ'—कूं।
१३. प्रति 'अ'—वहु। १४. प्रति 'त'—स्वर्ग।
१५. प्रति 'अ'—वार। १६. प्रति 'अ'—वड़ो।
१७. प्रति 'अ'—पुण्य। १८. प्रति 'त'—इंद।

२३७ : १. प्रति 'अ'—नासि। २. प्रति 'अ'—कू।
३. प्रति 'अ'—माय। ४. प्रति 'अ'—सुखकारी।
५. प्रति 'अ'—वाणी। ६. प्रति 'त'—अवगाहि।
७. प्रति 'अ' एवं 'त'—चक्रवर्ति। ८. प्रति 'अ'—गुणवान।
९. प्रति 'अ'—वाणी। १०. प्रति 'त'—साचो।
११. प्रति 'अ' एवं 'न'—अवि-नासी। १२. प्रति 'अ' एवं 'न'—अविकार।
१३. प्रति 'अ'—ताप।

झूला की ढाल में

(२३८)

जीया रै जिन वांणी सुपदायनी[१] उर धारो हो।
जिन सूत्र[२] विचारि[३] आन कथा दुपदायनी।
जीया रै संबर[४] निरजरा समझि समझि उरधारो हो।
हित रूप विचारि आश्रव बंधन जानि कैं इन[५] टारो हो।
जीया रै मुक्ति त्रिया की या जु[६] सपी उर जानों हो।
स्यादवादिनी[७] माय दोय तत्व परकासिनी निति ध्यावो हो।
जीया रै[८] मिथ्यातम कूं चंद जोति सम जानों हो।
आपा पर दरसाय हेयाहेय प्रकासिनी उर धारो हो।
जीया रै जिन मुष[९] पंकज वासिनी[१०] सुषषानीं[११] हो।
'पारस' निति ध्याय भव समुद्र मैं नवका[१२] सम जिन वांणी हो।

कलाली की चाल मैं

(२३९)

शिव तिय बाला[१] जिन जी नैं जोवण दीज्यो हे ।।टेक।।
पूज्या सू होय सुख भारी, ये कुमता काली ये दुरगति हाली पूज्या सू होय सुख भारी।[२]
भव भ्रमदानी तू न रहै[३] छै छानो।
अब तोहे[४] खूब पिछांनो,[५] हे कुमता काली, ये दुरगति हाली
जिनजी नैं जोवण दीज्यो हे ।।१।।

---

२३८ : १. प्रति 'अ' एवं 'न'—सुखदायनी। २. प्रति 'त'—शूत्र।
३. प्रति 'अ'—विचारि। ४. प्रति 'अ' एवं 'त'—संवर।
५. प्रति 'अ'—इनै। ६. प्रति 'अ'—जो।
७. प्रति 'त'—स्यादवादनी। ८. प्रति 'अ'—तैं।
९. प्रति 'अ'—मुख। १०. प्रति 'अ'—वासिनी।
११. प्रति 'अ'—सुखवानी। १२. प्रति 'त' एवं 'न'—नोका।

भगनी तूं मोह मिथ्यात की हे सुमता[6] की सौकि वषांनी ।।२।।
अव[7] सुमता रस चापियो ये त्यागो[8] थारो संग कुसंगो ।।३।।
समता लपाया 'पारस' जिन लप्या है छांडी तोहे आजि कुसंगी ।

रातीजगा का गीत मैं

(२४०)

जीवा जी थे जागो जी जागो तौ जगावूं सुमति सपी रा महल मैं ।
जागो जागो चेतन सुभट सुवीर ।।टेक।।
पंहैले तो पैंडे त्यागो कुगुरु कुदेव कूं,
सातूं ही विसन निवार[1] ।
दूजै तो पैंडै जी ग्यारा प्रतिमां[2] आचरो,
त्यागो जी असंजम भाव ।
तीजै तो पैंडै जी महाव्रत धरो समति गुपति द्रढ[3] पालि ।
चौथै तो पैंडै अप्रमत्त[4] दसा धरो, सव ही प्रमाद विडारि,
पचवै तो पैंडै क्षपक श्रेणि चढो मोहनी कर्म, नसायजो[5] ।
छठै तै पैंडो जी जोग निरोधि कै मुकति धरापति थाय ।
सतवें तौ पैंडै जी 'पारस' सिद्ध भया अविनासी सुप[7]पुंज ।

---

२३९ : १. प्रति 'अ'—वारा ।
३. प्रति 'त'—रही ।
५. प्रति 'अ'—पिछा ।
७. प्रति 'अ'—अव ।
२. प्रति 'त' में यह पंक्ति नहीं है ।
४. प्रति 'अ'—तोयें ।
६. प्रति 'त'—समता ।
८. प्रति 'अ'—त्याग्यो ।

२४० : १. प्रति 'अ'—निवारि ।
३. प्रति 'अ'—श्रम ।
५. प्रति 'अ'—में यह पंक्ति छूट गई है ।
२. प्रति 'अ'—प्रतिमा ।
४. प्रति 'अ'—प्रपमत्त ।
६. प्रति 'अ'—पचवै ।
७. प्रति 'अ'—गुप्त ।

राग सोरठ, मलार

(२४१)

प्रभूजी नें जोवण चालां हे पूजन चालां हे तीन लोक[2] प्रतिपाल ।।टेक।।
वामांदेवी[3] रा लाडिला हे अस्वसेन[4] जी रा नंद।
जाकूं पूजत है इनी रै[5] ध्यावत है मुनि वृंद।
जा दरसन तैं अघ नसैहै हे, भव भव के दुष दुंद[6]।
आन देव उडगनि[7] विषै सोहत है पूनिमचंद।
'पारस' मन बिचि धारि कै हे काटो भव के फंद।

राग गौड, मलार

(२४२)

श्रावक कूं क्या क्या चय्ये, वैर विरोध नसय्ये
व्रत विन कैसे रहिये[1] भजि श्री अरहन सुनि लेहु सही[2] ।।टेक।।
हितू मितू रही सांची वोलै[3] मुष[4] तै उर मै समुझै भायी।
श्री जिनैंद कूं यादि करत रहै[5] नुति करिये गुरु पावक कूं।
दान सील तप भावना भावै, सक्ति प्रमाण छिपावै नायी[6]।
प्रतिमां ग्यारह क्रम तैं धारै, 'पारस'[7] स्वै दरसावक कूं।

---

२४१ : १. प्रति 'अ' में प्रथम पंक्ति में 'जोवण चाला हे तथा, 'तीन......प्रतिपाल' के मध्य में 'पूजन चालां हे' लुप्त है।
२. प्रति 'त' में 'लोक' के वाद 'के' प्रक्षिप्त है।
३. प्रति 'अ'—वामदेव जी।
४. प्रति 'अ'—विश्वसेन।
५. प्रति 'अ'—है।
६. प्रति 'त'—द्वंद्व।
७. प्रति 'त'—उडगन।

२४२ : १. प्रति 'त' एवं 'न'—रय्ये।
२. प्रति 'त'—सपी।
प्रति 'न'—सयी।
३. प्रति 'अ'—वोलै।
४. प्रति 'अ'—मुख।
५. प्रति 'अ'—है।
६. प्रति 'अ'—नांही।
७. प्रति 'अ'—पार।

राग मलार

*(२४३

मुनिवर वन में हरसें मेहरवा अहो वदरियां गरजि गरजि मायी
अति ही डरावै ।।टेक।।

घर गरजें घन वीज चिमक्कें, पिपिया पिय की टेर सुनावै।
कहा करूं कित जावूं सपी, इम कायर थरसें। मुनि० ।।१।।
पवन झकोरे तरु टूटत है, गिरवर भूजुत धरसें
कंप दिगंबर ममता त्यागी पर सें ।।२।।
तीनूं रुति में सहत परीसह सह करम जरं ते जर सें।
'पारस' उनके दरस कूं करत ही उर में आनंद वरसें ।।३।।

राग सोरठ, मलार

(२४४)

हे सपी वन में ठाडे घीर, मुनीस्वर जोवण चालां है, मुनीश्वर
पूजण चाला हे[1] ।।टेक।।

कड़कि कड़कि करि विजुरी चिमकें, मूसलधारा नीर।
मिथ्यातम पोवण चालां।
उमड़ि घुमड़ि करि मेहा वरसें नहचल ठाड़े वीर[2]।
दुकृतमल घोवण चालां।
'पाश्र्वदास'[3] वाईस[4] परीसह सहत लहै नहि पीर।
मुकति तिय मोहण चालां।

---

*यह पद प्रति 'अ' में नही है।

२४४ : १. प्रति 'त' में इसका पाठान्तर है—
सुपी वन में ठाड़े घीर मुनीस्वर पूजन चालां है।
२. प्रति 'अ'—धीर। ३. प्रति 'अ'—पारसदास।
४. प्रति 'अ' एवं 'त'—वावीस।

राग सोरठ, मलार

(२४५)

प्रभूजी थारा दरसन रो म्हारै चाव ।।टेक।।
या दरसन तें मिटत मिथ्यातम प्रगट होत निज भाव ।
स्व[1] पर भेद तब[2] ही नर पावत, ये[3] ही परम उछाव ।
निजानंद रस पीयतु ही तै[4] वमत अज्ञान कुभाव ।
'पारस' फिरन भ्रमत चहुं गति मैं असो दरस प्रभाव ।

राग सोरठ, मलार

(२४६)

निरग्रंथ जती उर भावै सांचो शिव[1] पंथ जचावै ।।टेक।।
विन निरग्रंथ सांच कथनी कूं चाहवान[2] किम पावे ।
जोवे चाह निग्रंथ दिगंवर सो शिव[3] पथ दरसावै ।
ज्यों कुलटा निज सुता पुत्रवधु[4] शुचि[5] मारिग न लगावै ।
त्यों ही कुगुरु भेष के धारक सम्यक पथ न लषावै[6] ।
रुधिर न धुपै रुधिर तैं कवुं ही जल तैं रुधिर धुपावै ।
या तैं द्विबिध[7] संग त्यागी रागादिक मैल जरावै ।
आपहि विषय कषाय न त्यागै[8] पर कूं कहा तजावै ।
'पारसदास' दिगंबर गुरु को कुगुरुन कूं नहिं नावै ।

---

२४५ : १. प्रति 'अ'—सु । २. प्रति 'अ'—तव ।
३. प्रति 'अ'—वो । ४. प्रति 'त' -तैं ।

२४६ : १. प्रति 'अ'—सिव । २. प्रति 'त'—आसाधर ।
३. प्रति 'अ'—सिव । ४. प्रति 'अ'—पुत्रबधू ।
५. प्रति 'अ'—सुचि । ६. प्रति 'त'—लगावै ।
७. प्रति 'अ'— द्विविध । ८. प्रति 'अ'— त्यागैं ।

राग राति की पूरियां में, धीमो तितालो

(२४७)

सुघर मनां गावो सब मिल[1] विश्वसेन सुत प्यारो ॥टेक॥
चिर, चिर जीवो माय वामा[2] को नंदन, जौ लौं धरन ध्रुवतारो।
निति प्रति ध्यावो ताय काटै सौ फंदन, पावो अनंतो सुष[3] भारो।
थिर चित मन कूं ल्याय 'पारस' वंदन, कीजे विघन[4] हरै थारो।

राग देवगिरी

(२४८)

पिया सें री[1] जाय ऐसें कहनां[2] हो ॥टेक॥
मोसी तिया[3] तुम त्यागि कें प्रीतम किन कूं करि लीना अपना जाय।
मुक्ति त्रया[4] संगि उमग तुमारै, या ही सें[5] गाहि लीनों संजम धाय।
हमहू कूं संगि लीजिये[6] प्रीतम, पारस गृह तजि देवू सेवू[7] पाय।

*(२४९)

कुमति री तू को परि करत गुमान ॥टेक॥
मोह करम की जायी गायो कलि जुग कियो है प्रधान।
हिंसा माया भैण रु भ्राता राग दोष अभिमान।

---

२४७ : १. प्रति 'अ'—मिलि। २. प्रति 'अ'—वामा।
३. प्रति 'अ'—सुख। ४. प्रति 'अ'—विघन॥

२४८ : १. प्रति 'अ'—जी। २. प्रति 'त' में "पिया" कहना के बाद "हो उनसें री ज. ऐसें कहना" प्रक्षिप्त है।
३. प्रति 'अ'—त्रिया।
४. प्रति 'अ'—त्रिया।
५. प्रति 'अ'—तें। ६. प्रति 'अ'—लिजिये।
७. प्रति 'अ'—सेवूं का लोप।

क्रोध लोभ छल दंभ कंटव करि वंध करात अमान।
सील संतोष विवेक ज्ञान सैं वैर करत न अघान।
चेतन प्रभू कूं कुगति अभावत दुप[1] दीये[2] अप्रमान।
पति कूं दुख देवत न अघावत पाप करम की थान।
तेरै जोर हंकार पुत्र को, मित्र विसन विपवान।
चौथैं वारै तोये चेतन काढी, सुमता को सुण्यो सुज्ञान।
'पारस' जिन मत जाणि तजी तोय तहु ते सुखवान।

राग गोपीचंद का दोहा में

(२५०)

श्री गुरु सिद्दा सांभलो नवदा उर मायी ।।टेक।।
मुक्ति कामिनी सहजां[1] मिलसी, सुरग संपदा दासी।
सक्री चक्री सेवा करसी, तू सव[2] परि हो जासी।
कुगुरु कुदेव कुधर्म संग तजिहै,[3] निगोद दातार।
सात विसन[4] मघ तजो दूर[5] तैं नरक नगर के द्वार।
पांच पाप दुगति[6] की पौरी, अभख[7] अन्याय चलासी।
इंद्रया प्रवल हुयी दुष द्यासी, मारग[8] छुडवासी।
जिन मारग[9] किम पासी रै भया, समिति रीति विन चलिया।
तजि परमाद समिति गति चलिया, तिनैं सिवापुर[10] मिलिया।
छ आवस्यक अदस्य ही पालो अष्मानादिक सात।
या विधि मूल गहे गुण मुनि के, पालै ते शिव जात[11]।
अट्ठाईस[12] मूल गुल पालो, सुषमय[13] सील सभालो।
सुनिये है दक्षण मैं अव भी[14] मुनि चारित को चालो।

---

*यह प्रति 'त' में नहीं है।

२४९ : १. प्रति 'अ'—दुख। २. प्रति 'अ'—दीने।

ह्वां न वर्णे मुनि चरित तृदशविध, तौ अणुव्रत ही धारो।
स्वाध्याय में लीन रहो, यूं[15] पारस होय उधारो।

*(२५१)

कब[1] ग्रह तजि कें जाय विजन में[2] मुनि होनें की भावना मन में टे०
पर संबंध[3] तजि रोकि चित्त निज रूप लीन रहूं रति तजि तन में।
आसन धारि अडोल चित्त ह्वै, सहूं परीसह तीनूं पन में।
मृग पसु[4] ठूठ जानि मोहि पुजिहै, मैं न चिगू रहूं ध्यान भवन[5] में।
'पारस' तब[6] ही सफल जन्म सो करूं प्रार्थना श्री जिनद[7] में।

राग आसावरी

*(२५२)

भया तुम चोरी त्यागो जी, विन दया मति अनुरागो जी ॥टेक॥
पांच पाप के मध्य विराजे, नाम सुन्यां[1] सुधि भाजे।
हितू मिलापी लखि[2] करि[3] लाजे, सुख[4] सुपने नहिं छाजे।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२५० : १. प्रति 'अ' – सहज ही। २. प्रति 'अ'—सब।
३. प्रति 'अ' – 'हरिहै'। ४. प्रति 'अ'—विसन।
५. प्रति 'अ'—दूरि। ६. प्रति 'अ'—दुर्गति।
७. प्रति 'न'—अगाध। ८,९. प्रति 'न'— मारिग।
१०. प्रति 'न' - शिवापुर। ११. प्रति 'त' में 'ध आपसु. शिव जात' चरण नहीं है।
१२. प्रति 'अ'—अठाईस। १४. प्रति 'अ'—धावको।
१३. प्रति 'अ'—सुसमय।
१५. प्रति 'अ'—ज्यों।

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२५१ : १. प्रति 'अ'—कब। २. प्रति 'अ'—'जाय विजन में' स्थान पर केवल 'जाव्'।
३. प्रति 'अ'—संबंध।
४. प्रति 'न'—पशु। ५. प्रति 'न'—भवन।
६. प्रति 'अ'—तब। ७. प्रति 'अ'—जिनेंद।

राजा दंडै, लोका मंडै सज्जन पंच विहंडै।
पंच भेद जुत समझि तजो ज्यूं पद्धति थारी मंडै।
प्राण समान जांणि धन पर को, मति कोयी हरण विचारो।
हिंसा तैं भी अधिक पाप यह, भाषी श्री गणधारो।
सत्यघोष[5] यातैं दुख पाये, आषर कुगति डुलाये[6]।
'पारस' त्याग किया सुप[7] पाये, दोवू लोक उजलाये।

राग झंझोटी

(२५३)

काहे गर्भ[1] करत हौ, झूंठा है संसार ।।टेक।।
धनीं होंत षिण[2] मांय दरिद्री निर्धन[3] धन[4] भंडार।
टेड़े चालत पेच सवारत ते डोलत पर द्वार।
हाथी चढ़ि चालो वा भू परि जीना हैं दिन च्यार[5]।
इक दिन ऐसा आसी जासी सव[6] तजि कै घर वार[7]।
अथिर जानि जग गर्भ त्यागि भजि 'पारस' शिव[8] दातार।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२५२ : १. प्रति 'अ'—सुनत। २. प्रति 'अ'—लखि।
३. प्रति 'अ'—करि। ४. प्रति 'अ'—सुख।
५. प्रति 'अ'—सत्यघोस। ६. प्रति 'अ'—हुलाये।
७. प्रति 'अ'—सुख।

२५३ : १. प्रति 'अ'—गरभ। २. प्रति 'अ'—खिण।
३,४. प्रति 'अ'—निरधनिया। ५. प्रति 'अ'—च्यारि।
६,७. प्रति 'अ'—सब, वार। ८. प्रति 'अ'—सिव।

राग झंझोटी

(२५४)

धनि धनि श्री गुरु प्रसाद जैन धर्म पायो ।
तिन ही को सफल जन्म ज्ञानी बतलायो ।।टेक।।
महाभाग केवू गहै चारित तेरह प्रकार,
केवू अणुसिष्या गुण समकति उर थायो[1] ।।१।।
दान सील तप सुज्ञान, भावनां गही सुजान,[2] ।
भव तिथि घटि गयो[3] है[4] जिकै इसो जोग गायो ।।२।।
सम्यक गुरु संजोग दुलभ या[5] कलि में[6] ।
'पारस' लषि सम्यक श्रुत सुसरण पाय कुगुरु संग तजायो ।।३।।

राग झंझोटी, उझाझ

(२५५)

श्री जी मैं दास तिहारो, आयो चरणां की सरन ।।टेक।।
दास तिहारो चेरो तिहारो मेरो करो निसतारो[1] ।
अष्ट करम के नासक तुम हो कीजे ज्ञान उजारो ।
'पारसदास' तिहारो निस्चै, तुम ही[2] तैं होत उधारो ।

---

२५४ : १,२. प्रति 'ठ'—दोनों पंक्तियों का लोप ।
३. प्रति 'घ'—गई ।
४. प्रति 'घ'—'है' का लोप ।
५. प्रति 'न'—भया ।
६. प्रति 'घ'—में ।

२५५ : १. प्रति 'ठ'—'कीज्यो मो निस्तारो ।
२. प्रति 'न'—ही ।

राग जंगलो, झंझोटी

(२५६)

मिला जी मोहे[1] श्री जिनवर म्हारे[2] पुण्य को उदय विसाल ।।टेक।।

वीतराग सरवज्ञ[3] जिनोतम[4] करुणानिधि रखिपाल[5] ।

भक्त होत सुरपति अभक्त नर अविनय[6] तैं पाताल ।

तिर गये नाम मंत्र तैं वहु[7] जिय विनवूं[8] कर धरि भाल ।

भक्ति मुक्तिदाता 'पारस', प्रभु मोहे दीजे निज चाल[9] ।

राग झंझोटी, वरवो

(२५७)

सुज्ञांनी जीया हो पर घर कबु मति जाय रै ।।टेक।।

क्यौं[1] परमातम जाति लजावै रै[2] ज्ञान तेज घटि जाय रै ।

चेतन नाम विगाड्यो अपनों रै क्यौं[3] जड़ संग रचाय रै ।

सुगुरु प्रसाद जाणि निज घर सदरै 'पारस' गहिये ताय रै ।

---

२५६ : १. प्रति 'अ'—महांनै । २. प्रति 'अ'—म्हांकै ।
३. प्रति 'अ'—सर्वज्ञ । ४. प्रति 'अ'—लोकपति ।
५. प्रति 'अ' – रिसिपाल । ६. प्रति 'अ'—अविनय ।
७. प्रति 'अ'—वहु । ८. प्रति 'अ'—विनवू ।
९. प्रति 'न' में पूरी पंक्ति का पाठान्तर—मुक्ति दान करिये पारस प्रभु, मोहे दीने निज चाल । प्रति 'अ' में "प्रभु ·· ·······चाल" के स्थान 'जाचै हरि वसु विधि जाल' पाठ है ।

२५७ : १,३. प्रति 'अ'—क्यों । २. प्रति 'अ'—'रै' का लोप ।

राग झंझोटी

(२५८)

पूजत जिनराज आजि पाप मम पलायो।
ध्यावत उर मांय[1] दुष्ट मोहनीं विलायो ।।टेक।।
दरसन के करत ही मिथ्या तिमिर उड़ायो।
सम्यक निज रीति लपी प्रतिमां बतलायो[2]।
वीतराग सर्वज्ञ[3] निर्दोस[4] देव पायो।
या सम नहिं देव आन पंडित[5] जन गायो।
क्रोध मान माया लोभ, पावक कूं बुझायो।
शांति[6] छवी लपत मेरे, आनंद उमगायो।
परमातम जोति[7] पाय सकल दुप[8] भुलायो।
तुम विन[9] मैं पुदगल मझि नाहक विलमायो[10]।
पूजन करि[11] बार बार 'पारस' सिर नायो।
दुष्ट कर्म हरो मेरे तातें ढिग आयो।

राग झंझोटी

(२५९)

समझि विषयां रा लोभी रे विषय तै कुगति परोगे ।।टेक।।
विषय संग तैं वहु[1] जिय बूढे दुःख भरोगे।
इन तें तृष्णा वढ़त त्याग तैं मुक्ति वरोगे[2]।
'पारस' तृषा धारि तप, जामण मरण हरोगे।

---

२५८ : १. प्रति 'म'—माय। २. प्रति 'म' एवं 'त'—बतलायो।
३. प्रति 'म'—सरवज्ञ। ४. प्रति 'म'—निरदोस।
५. प्रति 'म'—पंडत। ६. प्रति 'म'—सांति।
७. प्रति 'म'—देव। ८. प्रति 'म'—दुख।
९. प्रति 'त'—बिन। १०. प्रति 'म' एवं 'त'—बिरमायो।
११. प्रति 'त' एवं 'न'—पूजत हूं।

२५९ : १. प्रति 'म' एवं 'त'—बहु। २. प्रति 'म'—बरोगे।

राग झंझोटी

(२६०)

रसिक छवीलो वांको तलवरियो होय, रह्यो मन वार वार[1] ।।टेक।।
मोह करम वसि[2] हित न पिछानत, भ्रमत भ्रमत कीयो जिय कूं ख्वार।
उदय पाप तद्रूप होय सठ, कर्म गहत रहूं लार लार।
तुम प्रसाद तैं अव समुझयो उर, अनेकान्तमय धारि धारि।
'पारस' एक चाह निज धन की याकूं कीजिये छार छार।

राग जंगलो

(२६१)

सुद्ध रूप[1] आनंद दा मेरा मनवा श्री गुरु हरा हरा
जात रूप आनंददा ।।टेक।।
पर परणति तजि निज परणति गहि ध्यान धरै वे तौ
परा परा।
सुकल ध्यान परताप सेती, सव[2] विकलप[3] तैं टरा टरा।
'पार्श्वदास' उनको संग चाहत, ज्यूं[4] मछियां दह भरा भरा।

राग जंगलो, धानी

(२६२)

कोई मोही कूं स्याम मिलाव री ।।टेक।।
प्रतिवन हेरि सकल वन हेर्‌यो गुण मानूंगी वताव री।
एक सषी तव[1] ही उठि बोली,[2] हम पेषे ढिग जाय री।

---

२६० : १. प्रति 'अ' एवं 'त'—वार वार। २. वसि।
२६१ : १. प्रति 'अ'—जातरूप। २ प्रति 'अ'—सव।
३. प्रति 'अ' एवं 'त'—विकलप। ४. प्रति 'अ'—ज्यों।

हरषित चित तप धार्यो श्री जिन गढ गिरनारि मझाय री।
'पारस' धनि[3] रजमति[4] इम सुनि कें, तप करि कें सुरथाय री।

राग जंगलो तथा धनाश्री की धानी

(२६३

जग जिय निपट अज्ञान[1] देह मैं रमि रह्यो जी।
पांचूं इंद्री चोर यामैं इनके विषय कुजाल जीव यामैं फसि रह्यो जी ।।टेक।।
च्यार कषाय महा ठग, यांमैं रतनत्रय कूं यामैं फसि रह्योजी।
दुरगति पोरि[2] पाप करि सवला[3] अवला[4] नागनि डसि रह्यो जी।
'पारस' जांनो[5] देही आंन। ेन[6] जाणे निज रूप जगत यूं ही नसि रह्यो जी।

राग जंगलो, झंझाटी

(२६४)

वतिया[1] रसीली सुपकार, जिन तेरी गुरु नें सुनायी ।।टेक।।
सात[2] तत्व को निरणों जामैं दरपण तुल[3] उनिहार।
आपा पर को भेद लखावत,[4] मोक्ष बंध विसतार।

---

२६२ : १. प्रति 'अ'—तव। २. प्रति 'अ'—बोलो।
३. प्रति 'अ'—धन। ४. प्रति 'अ'—रजमत।

२६३ : १. प्रति 'अ'—अयान। २. प्रति 'अ'—पोरी।
३,४. प्रति 'अ'—सवला; अवला। ५. प्रति 'अ'—जानी।
६. प्रति 'अ'—विन।

अनेकान्तमय मुनिजन प्यारी, निज सुष[5] की दातार।
मेटै तिमिर अज्ञान जीव को भविजन कूं आधार।
या बिन[6] मुक्ति पंथ नहिं दूजो 'पारस' तारनहार।

राग झंझोटी

(२६५)

मोह ठग मो सिर भुरषी डारी याही तैं भयो षुवारी।
भूलि गयो जिन भूप रूप मम, पर मैं निजता धारी।
इष्ट अनिष्ट मानि धरि रति रिसि[1] वृत्ति गही अघकारी।
ताही करि[2] परिवर्तन भुगते, यादि करत भय भारी।
तुम तैं छांनो नांहि[3] लोकपति मैं कहा कहूं अनारी।
याही तैं सुर नर मुनि तुम पद सिर नमि मोह रज झारी।
'पारस' नमूं तृकाल दुष्ट तैं, गैलि छुड़ावों म्हारी।

(२६६)

ज्ञान थारो षोसि कै करि नाष्यो जड़ उनिहार,
मोह करम यो वादीलो नादिकाल[1] को लार ।।टेक।।
क्रोध लोभ मान माया, याही को परिवार।
सैं परिवार विनासीलो[2] करि जिनवाणी सूं[3] प्यार।

---

२६४ : १. प्रति 'अ'—वतियां। २. प्रति 'त'—सा।
३. प्रति 'त' एवं 'न'—तल। ४. प्रति 'त' एवं 'न'—बतावत।
५. प्रति 'अ'—सुख। ६. प्रति 'अ' एवं 'त'—विन।

२६५ : १. प्रति 'अ'—सि। २. प्रति 'अ'—तें।
३. प्रति 'अ'—नाय।

जिनवाणी हितकारणी या कल्पलता सुपकार[४]।
'पारस' त्रिविधा ध्यायीलो[५] ह्वै मोह करम की छार।

*(२६७)

विनासीक पर कर्म कुरंग रंग कहा रच्यो है अज्ञानी।
सम्यक[१] ज्ञान सास्वतो निजरंगमय होवै तव है ज्ञानी ।।टेक।।
याही रंग रंगीले तिन कूं आप वरत[२] है शिव नारी।
वसु विधि कर्म कुरंग रगे जिय दुरगति मैं भोगै ख्वारी।
या रंग रंगे नमित है सुरपति, नरपति पगपति वहुमानी।
जस तिनको गावत है मुनि पति, हम कहा थुवै अलप[३] ज्ञानी।
या में दाम लगै न वल लगै ना सहाय कोडी[४] कांनी।
"पारस" सम्यक गुरु प्रसाद तैं सहज मिलत सो सुपथानी[५]।

ठुमरी

(२६८)

जिन दरसन ते मोह कांप्यो थर रै रै रै रै रै रै ।।टेक।।
इन्द्रयां वसि करि सुधि[२] जो लगावूं, सुधि ही को लाग्यो मानूं तीर
निकस्यो सर रै रै रै रै रै रै।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।
२६६ : १. प्रति 'अ'—अनादिकाल। २. प्रति 'अ'—विनासीदो।
३. प्रति 'अ'—सें। ४. प्रति 'अ'—सुखकार।
५. प्रति 'अ'—ध्याइलो।

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।
२६७ : १. प्रति 'न'—सम्य। २. प्रति 'अ—वरत।
३. प्रति 'अ'—अल्प। ४. प्रति 'अ'—कौड़ी।
५. प्रति 'अ'—सुखखानी।

तन धन जोवन दगाबाज है, **निरणों**[10] करि लीनों योयी।
पर परणति विन निज परणति मय, वर मांगू 'पारस' द्योयी।

राग लावणी

(२७३)

दुरित सूं डरता रहौ भाई।
सत गुर साखि सुनी[1] हम नीकी पाप भलो नांई[2]।
बाल वृद्ध बनिता[3] रु तरुण नर, वृद्ध लोक मांई[4]।
षट मत वाले या ही वोलै पाप भलो नांई[5]।
तीन लोक के नाथ प्रभूजी कही वेद मांई[6]।
वेद पुराण को योही तत्व है सो सतगुर गाई[7]।
पुन्य उदै तैं पाय देवगति क्रम तैं शिव जाई[8]।
वचन अगोचर पाप उदै तैं, नरक दु:ष[9] पाई।
'पारस' दान सील तप व्रत भावनां धरो भायी।
नर भव पायो जम वसि होसी, तब[10] करसी **कांयी**[11]।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२७२ : १. प्रति 'अ'—विन। २. प्रति 'अ'—मोरो।
३. प्रति 'अ'—नवका। ४. प्रति 'अ'—विन।
५. प्रति 'अ'—भरम्यो। ६-७. प्रति 'अ'—छानी, ना।
८. प्रति 'अ'—अव। ९. प्रति 'अ'—दुख।
१०. प्रति 'न'—निर्णय।

२७३ : १. प्रति 'अ'—सुणी। २. प्रति 'अ'—नायी।
३. प्रति 'अ'—वनता। ४-८. प्रति 'अ'—में इन शब्दों में 'ई' के स्थान पर 'यी' प्रयुक्त हुआ है।
९. प्रति 'अ'—दुख। ११. प्रति 'अ'—काई।

पान पान अब नाहिं करैगे पिय[६] संगि धरिहूं[७] संजमवा।
'पार्श्वदास' धनि धन्नि[८] राजमति, तप करि तिय लिंग गालिमवा।

ठूमरी

(२७१)

अज्ञानी जीयों न मानें जी, भोत कही समझाय[१] ।।टेक।।
मैं तो कहूं करि ध्यान वावरे यो राच्यो जग मांहि[२]।
मैं तो कहूं निज रीति समझि रे आपो तजि पर मांहि[३]।
जिन विषयन[४] तें भव[५] दुष[६] पायो फिर फिर उनही मैं जाय।
तुम समरथ ऐसें भी त्यारो, हो 'पारस' जिनराय।

*(२७२)

तुम विन[१] तीन लोक मैं मेरो[२] वाली वारिस नां कोयी।
जो दीसें सो सकल विनस्वर, वसुविधि वसि दीसें वोयी ।।टेक।।
का पै जावू दीसै न कोई, पराधीनता विन जोयी।
ज्यों सागर विचि नौका[३] पंछी, परसरण विन[४] मैं सोयी।
मैं तुम विन भरमे[५] दुष भुगते, तुम तें छांनी[६] नां[७] कोयी।
अब[८] मम दुष[९] मेटो सुप दीजे, या तें सरण गहूं योयी।

---

२७० : १. प्रति 'अ'—वालम। २. प्रति 'अ'—वतना।
३. प्रति 'अ'—सालमवा। ४. प्रति 'अ'—अरकचा।
५. प्रति 'अ'—मालमवा। ६. प्रति 'अ'—पिया।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—धारे। ८. प्रति 'न'—धनि।

२७१ : १. प्रति 'त'—भोत कही समझाय अज्ञानीड़ो नै मानें जी। २. प्रति 'अ'—मांय।
३. प्रति 'अ'—परमाय।
४. प्रति 'अ'—विषयनि। ५. प्रति 'अ'—भव।
६. प्रति 'अ'—दुख।

तन धन जोवन दगावाज है, निरणों[10] करि लीनों योयी।
पर परणति विन निज परणति मय, वर मांगू 'पारस' द्योयी।

राग लावणी

(२७३)

दुरित सूं डरता रहौ भाई।
सत गुर साषि सुनो[1] हम नीकी पाप भलो नांई[2]।
बाल वृद्ध बनिता[3] रु तरुण नर, वृद्ध लोक मांई[4]।
षट मत वाले या ही वोलै पाप भलो नाई[5]।
तीन लोक के नाथ प्रभूजी कही वेद मांई[6]।
वेद पुराण को योही तत्व है सो सतगुर गाई[7]।
पुन्य उदै तै पाय देवगति क्रम तैं शिव जाई[8]।
वचन अगोचर पाप उदै तै, नरक दुःष[9] पाई।
'पारस' दान सील तप व्रत भावनां धरो भायी।
नर भव पायो जम वसि होसी, तब[10] करसी कांयी[11]।

---

*यह पद प्रति 'त' में नहीं है।

२७२ : १. प्रति 'अ'—विन। २. प्रति 'अ'—मोरो।
३. प्रति 'अ'—नवका। ४. प्रति 'अ'—विन।
५. प्रति 'अ'—भरम्यो। ६-७. प्रति 'अ'—छानी, ना।
८. प्रति 'अ'—अव। ९. प्रति 'अ'—दुख।
१०. प्रति 'न'—निर्णय।

२७३ : १. प्रति 'अ'—सुणी। २. प्रति 'अ'—नायी।
३. प्रति 'अ'—वनता। ४-८. प्रति 'अ'—में इन शब्दों में 'ई' के स्थान पर 'यी' प्रयुक्त हुआ है।
९. प्रति 'अ'—दुख। १०. प्रति 'अ'—तव। ११. प्रति 'अ'—काई।

मोह नींद तजि कवहु[४] न जाग्यो रै, तास तै अघ मघ राग्यो रै।
अवसर पाय 'पारस' अघ दाग्यो रै, जगत मैं सो ही वड़भाग्यो रै।

राग वसंत

(२७८)

वारो जी ई[१] जैन धरम की रीति नै जाग्यो म्हारो आतम भान[२] ।।टेक।।
शान्ति छवी छै श्री जिनदेव की गुर निग्रंथ प्रमान।
सव ही जीवां की जहां करुणां कही, उर मैं जचावै भेद विज्ञान।
सातूं तत्वारथ की कथनीं सुनीं, और[३] समुझावै[४] नय परमाण।
छवूं ही द्रव्यां की जी चरचा शुचि[५] भनीं वचन भणै छै दो नय वान।
पाचूं ही पाप तजावण व्रत लिपै, और छुड़ावै विसन कुज्ञान।
पुन्य उदै सू जी 'पारस' पायियो[६] दृढ उर धारू त्यागूं आन।

---

२७७ : १. प्रति 'त'—हठीला काई हठ लाग्यो रै, हठीला कांयी चालै लाग्यो रै।
२. प्रति 'म'—'चौरासी' के 'मैं' तिरि.
३. प्रति 'अ'—सुमत।
४. प्रति 'न'—कवु।

२७८ : १. प्रति 'त'—इ।
२. प्रति 'त'—में 'नै' अंश नहीं
३. प्रति 'अ'—ओर।
४. प्रति 'अ'—समझावें।
५. प्रति 'अ'—सुचि।
६. प्रति 'अ'—पाइयो।

(२७९)

अर हो विषयां रा लोभो.[1] हा रैं हो माया रा लोभी, दुल्लभ
नर भौं[2] मैं,

निज हित साधि लैं, तोय गुरु समझावै ।।टेक।।
माया तैं कुल नां मिलै जी जाति मिलै अनपांति।
माया ह्यां की ह्यां रहैगी, समझावूं वहु[3] भांति।
अंनतकाल पूरो कियो जी रुल्यो निगोद मझार।
एक सास मैं जनमियो अरु मर्यो अनंती वार।
विकल त्रय में फिर लही जी कठिन कठिन परजाय।
पंचेंद्रिय में उपजियो, पणि हुवो असैंनी आय।
तिरजंचनि मैं फिर लही जी, हिंसक की[4] परजाय।
पाप ठानि नरकां गयो जी तहां नारकी थाय।
तहां पाप हलको पड्यो जी, पायो नर परजाय।
तृष्णा वसि तप नां[5] कियो, सुर हूवौ[6] मंद कषाय[7]।
सुरपति हू शिव करणैं जी, जाचैं[8] नर परजाय।
नर भव विन तप नां वनै जी, कैसैं शिव[9] पुर जाय।
तप व्रत नर भव माय है जी, मंद करम की चाल।
'पारस' सक्ति विचारि धारि[10] तप ज्यो काटो भव जाल।

---

२७९ : १. प्रति 'अ' में 'अर......लोभी' अंश 'हारै हे माया रा लोभी' के वाद में है।
२. प्रति 'अ'—भव।
३. प्रति 'अ'—वहु।
४. प्रति 'अ'—ही।
५. प्रति 'अ'—ना।
६. प्रति 'अ'—हूवो।
७. प्रति 'अ'—कसाय।
८. प्रति 'अ'—जाचैं।
९. प्रति 'अ'—सिव।
१०. प्रति 'अ'—करि।

मोर्या की चाल में

(२८०)

जियरा रे जिन वांनी[1] कूं रचाय ले ॥टेक॥
जिन मंदिर चलि श्री गुर वोलें तो बोलें छै अमृत वानी[2] रे।
जीव अजीव को निरणो भी होवे,[3] होवे असुभ की हांनी रे।
वर्द्धमान सुप या तें होवे तो आपर[4] शिव[5] सुपदानी[6]।
याही तें उवर र उवरसी या भव तें भ्रम हानी।
'पारस' आन काज सव[7] तजि कै याही उर दृढ मानी।

लोकगीत की चाल में

(२८१)

म्हांनें[1] बीतराग[2] री वांणी प्यारी लागे जो ॥टेक॥
रागी ह्वै सो पक्षपात सूं सांची कहै न एक।
बीतराग ही पक्षपात विन[3] समझा सकै अनेक।
वस्तु सरूप न पावै रागी राग अंध सो अंध।
त्याग उपादे हित अनहित किम भार्पे[4] मुक्ति र वंध।
आपहि राग दोष मोह वसि सो पर कूं कहा वचावे[5]।
रागादिक कर्मनि कूं जीते 'पारस' सो गुरु गावै।

---

२८० : १. प्रति 'अ'—वाणी। २. प्रति 'अ'—वानी।
३. प्रति 'अ'—होहै। ४. प्रति 'अ'—आखर।
५. प्रति 'अ'—सिव। ६. प्रति 'अ'—सुखदानी।
७. प्रति 'अ'—सव।

२८१ : १. प्रति 'अ'—महानें। २. प्रति 'अ'—वीतराग।
३. प्रति 'अ'—विन। ४. प्रति 'अ'—भार्पे।
५. प्रति 'अ'—वचावें।

लोकगीत की चाल मैं

(२८२)

विसन मघ त्यागो जी थानैं श्री गुर कहै समुभाय[1] ॥टेक॥
एक एक कूं सेय कैं जी कोयी नरक निगोद्यां जाय।
सरस वेदना[2] भोगवै जो, कोयी दुषीया[3] ह्वै[4] विललाय।
रावण से राचे घणों[5] जी ज्याका दोवू लोक नसाय।
त्याग्या ते सु पाथिया[6] जी कोयी सुरगां मैं[7] सुर थाय[8]।
दुरलभ नर तन[9] पाय कैं जी मति वादि गुमावो ताय।
फिर पीछैं पछितायस्यौ[10] जी यातैं 'पारस' सीप सुनाय।

राग सोरठ

(२८३)

अब तन[1] बार[2] बार[3] समभावूं रैं चेतन कुमति संग मति जाय
अब तन[4] सुमति नारि समभावै रैं चेतन कु० ॥टेक॥
कुमति नारि संग सुष[5] नहिं पासी, क्यूं[6] करि रह्यो लुभाय।
च्यारूं गति मैं दुष तैं पाया[7] या[8] री संगति पाय।
अब तूं म्हारी[9] संगति आ जा, पासी सुष सुरगां कै[10] मांय।
अब तन सुमति[11] नारि समुभावै[12] रैं चेतन सीष[13] धरो
दिल मांय।
काम क्रोध मद लोभ मोह तैं प्रीति तजो उर मांय।

---

२८२ : १. प्रति 'अ'—समभाय। २. प्रति 'अ' एवं 'त'—वेदनां।
३. प्रति 'त'—दुखिया। ४. प्रति 'अ'—होय।
५. प्रति 'अ'—घणा। ६. प्रति 'त'—पामिया।
७,८. प्रति 'त'—मांय वसंत। ९. प्रति 'अ'—भव।
१०. प्रति 'अ'—पछितायस्यो।

हिंसा रति और राग द्वेष कूं घर तैं द्यो निकलाय।
सील संतोष विवेक[14] ज्ञान कूं, रापो घर कै माय।
क्षमां दया और सांति बुलावो जिण वाणीं र रचाय।

(२८४)

अब मैं थारै ही घर रहस्यूं हे कुमति संग[1] छिटकाय।
अब मैं थारा कह्या मैं रहस्यू हे अष्ट पहर दिन राति।
काम क्रोध मद मोह न रापूं राग दोष दुपदाय[2]।
विसन[3] दंभ हंकार त्यागस्यूं[4] मन और[5] वचन सुकाय।
अब मैं क्षमा दया घर मांय रापस्यूं जिन वांणी अपनाय।
क्यूं करि दुरगति जास्यूं प्यारी सुमति नारी सुपदाय[6]।
अब मैं सुमति[7] सपी श्रद्धा अनुप्रेक्षा रापूं प्रीति वढ़ाय।
वहुत दिनन मैं पाया[8] 'पारस' अब मैं तजस्यूं नांय।

डूंगजी भवार जी का ख्याल मैं

(२८५)

घरि लीज्यो सुगुरु[1] पुकार हीया[2] रै माई[3] ॥टेक॥
पांच पांप सूं डरता रीज्यो सातूं विसन निवार।

---

२८३ : १,४. प्रति 'अ'—तनैं।
२,३. प्रति 'अ'—वार।
५. प्रति 'अ'—सुख।
६. प्रति 'अ'—क्यों।
७. प्रति 'त'—पाम्यां।
८. प्रति 'अ'—सा।
९. प्रति 'अ'—महारी।
१०. प्रति 'त' एवं 'न'—रैं।
११. प्रति 'अ'—सुमत।
१२. प्रति 'त'—समझावूं।
१३. प्रति 'अ'—सील।
१४. प्रति 'अ'—विवेक।

२८४ : १. प्रति 'अ'—संगि।
२. प्रति 'अ'—दुखदाय।
३. प्रति 'अ'—विसन।
४. प्रति 'अ'—त्यारास्यूं।
५. प्रति 'अ'—अर।
६. प्रति 'अ'—सुखदाय।
७. प्रति 'अ'—समिति।
८. प्रति 'त'—पाम्यो।

कुगुरु[4] संग[5] करि हित नहिं समुझयो[6] अब समझण
री वार।
पर नारी सूं डरता रीज्यो ग्या लांबी तरवार[7]।
रहतै बीच को[8] बीच में[9] पहुंचन दे शिव द्वार।
तप व्रत कबहु[10] नहिं धारिया स थे हूवा बहु पुवार।
'पारस' अवसर पाय कै स थे हित समझो धरि प्यार।

राधा का बारामासयां की चाल में

(२८६)

राजुल विचार[1] करै मन मैं रे हम कूं छांडि[2] चले नेम प्यारे ।।टेक।।
सषियां किलोल करै सपियन मैं राजुल विचार करै मन मैं रे।
नेम पिया गिरनार सिधारे हम हूं द्वार तजे छिन मैं रे।
हम सैं कहा छल कीनों सांवरे, जाय चढ़े तट गिरवर के रे।
वारा भावनां भायी सांवरे जीव दया उर मैं धरि कैं रे।
द्विविध परिग्रह तजि कै सांवरे लोच कियो सेसावन मैं रे।
देव रिषी करि कैं जु प्रसंसित मुक्ति तिया[3] संगि रति धरि कैं रे।
नेम प्रभू से पायन बरिहूं[4] आन पुरुष सब पित सुत सम रे।
हम हू तप करि तिय[5] लिंग तजि कै 'पारस' थावूं निज तन मैं रे।

---

२८५ : १. प्रति 'अ'—सुगुर। २. प्रति 'अ'—हिवड़ा।
३. प्रति 'अ'—मायी। ४, प्रति 'अ'—कुगुरुन।
५. प्रति 'अ'—सेती। ६. प्रति 'अ'—समझ्यो।
७. प्रति 'अ'—तलवार। ८. प्रति 'अ'—का।
९. प्रति 'अ'—'पहुंचन' से पहले 'सया' शब्द अतिरिक्त। १०. प्रति 'त' एव 'न'—कछु।

२८६ : १. प्रति 'अ' विचार २. प्रति 'अ'—छोड़ि, प्रति 'न'—छांटि
३. प्रति 'त' एवं 'न'—त्रिया। ४. प्रति 'अ'—वरिहू। ५. प्रति 'त' एवं 'न'—तिय।

(२८७)

प्रभू जी थानैं पूजन आयो जी राजि ।।टेक।।
काम क्रोध वसि होय के जो[1] अबला[2] संगि रहंति[3] ।
असे देव बहुधा मिले,[4] पणि तुम सम्यक अरहंत ।
एक द्रव्य करि पूजिये[5] ते[6] सुरगां मांय वसंत ।
अष्ट द्रव्य जुत भाव पूज्या[7] होसी शिव के कंत ।
जे तुम कू पूजे नही ते दुरगति मांय[8] भमत ।
'पार्श्व' प्रभू कूं पूजि कै अब[9] मूरिप[10] आन नमंत ।

(२८८)

हां रे जीया कुमति त्यागद्यो रे या भव जाल मांय रपती ।।टेक।।
याके संगि भ्रमे अनादि के ज्ञान रीति नसती ।
मोह क्रोध मद लोभ पुत्र तिह राग[1] दोष वसती[2] ।
सील प्रबोध विवेक[3] सुमति सुत, इन संगि करि रसती ।
'पारस' कुमति त्यागि सुमती भजि सुगति होय ससती ।

---

२८७ : १. प्रति 'त'—जि । २. प्रति 'प'—प्रबिला ।
३. प्रति 'त'—वहंति । ४. प्रति 'प'—मर्ण ।
५. प्रति 'प'—पूजिया । ६. प्रति 'प' थानैं ।
७. प्रति 'त' एवं 'न'—भावनि सहित तें । ८. प्रति 'प'—माय ।
९. प्रति 'प'—अब ।
१०. प्रति 'प'—मूरप ।

२८८ : १. प्रति 'त'—विहराग । २. प्रति 'प'—वसती ।
३. प्रति 'प'—विवेक ।

राग गोपीचंद का दोहा की चाल में

(२८९)

जिनमत का सरधान कू ज्ञानी जन धारै, बड़े बड़े मतिवान विचारै;[1]
अजी आन मिथ्या हठ टारै[2] ॥टेक॥

जैसें फूल कड़ीर का केतगी एक सा प्यारा।
निज सुगंध सें भेद लपावत क्यों कर एक निहारा।
जैसें आक दुग्ध अरू महिषी दुग्ध स्वेत[3] विस्तारा।
आक दुग्ध प्राणनि को हारक, वो पोषक[4] सुखकारा।
पीरी रीरी होत है र पीरी, सुवर्ण की माला।
वू[5] तोला का रिप्या अठारा, वाको कौड़ी वारा।
कहा कोयल की टेर माधुरी, कहां काक की कारी।
तरुवर[6] डारि स्याम इक दीसें बोलत न्यारी न्यारी।
कहा भानु[7] तेजस्वी भारा, कहा आगिया विचारा।
प्रकृति उद्योत उदै करि इक सै, करै न सदस उजारा।
ज्यों पून्यूं का होत उजारा मावस का अंधियारा।
पंदरै दिन आवत इक सारा लखि गुण दोष[8] विचारा।
'पारस' पक्ष छांड़ि करि[9] परख्या, परखें सार असारा।
जिनमत परभत भेद इतो है, कुगति सुगति दातारा।

---

२८९ : १. प्रति 'अ'—विचारो।
२. प्रति 'अ'—टारो।
३. प्रति 'त'—भेद।
४. प्रति 'त'—पोषै।
५. प्रति 'त'—वा।
६. प्रति 'न'—तुरुवर।
७. प्रति 'अ'—भान।
८. प्रति 'अ'—दोस।
९. प्रति 'अ'—पक्षपात धरि।

प्रीति करी जिन धर्म सें जी हे जी जिनवानि सें,
ज्याका सुनों विचार ॥टेक॥
तन धन जानें छार रे भोग अग्नि की झाल।
सुत दारादिक वागुरा[1] संसार असार।
विसन[2] पाप तें यूं डरे, स्याम नाग उनिहार।
मिथ्या कुगुरु कुसंग ये दोसें विटमार[3]।
दुर्जन दुर्जनता करें तबु न कटें विकार।
सज्जन सज्जनता करें उन तें समधार।
'पारस' लक्षण जानि कें धरिये संतोस[4]।
अन्य सकल ही तें सदा तजि राग र रोष।[5]

राग पट्

(२९१)

कीनों[1] अपूर्व सुकृत तें भायी,[2] याही तें जिन धर्म मिल्यो रे ॥टेक॥
उत्तम कुल श्रावक को पायो भली भई सतसंग मिल्यो रे।
असुभ त्यागि गहि सुभ सो भी तजि उत्तम जन मन।
शुद्ध हिल्यौ रे।
'पारस' सो जाचो जिनपति सूं, रचताई मन मुख अम्रत
गिल्यौ रे।

---

२९० : १. प्रति 'अ'—वागरा। २. प्रति 'अ'—विसन।
३. प्रति 'त'—'वटपार'; प्रति 'न' विठपारं। ४. प्रति 'अ'—'धरिये संतोष' लोप
५. प्रति 'अ' में पद के अन्त में प्रक्षित है—दोस्तो कर जिन धर्म सें ... सुनो विचार'।

२९१ : १. प्रति 'न'—कीनों। २. प्रति 'न'—भयो।

भजि लैं महावीर का सरनां जा तैं भवदधि पार उतरनां ॥टेक॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष विन इन विन दूजा है ना।
जो दीसैं सो राग द्वेष मैं मोह काम वसि दीना।
सील संतोष विवेक न जिन मैं ना समतामय रहना।
दया सत्य अरु सौच न जिन मैं, जिन कै जन्म रु मरना।
नीकै सकल लषे मत हम नैं, इन विन ना है तरनां।
'पारस' जानि कामदेव सब भजि सन्मति के चरनां।

आंगड़ली की दालमैं

(२९३)

भवि भाई धरि चाव जिन वाणी ॥टेक॥
जिन वाणी भावो तौ भवि म्हारै घरि आवो।
जिन वाणी भावै तौ सुमता कै घरि आवो।
थानैं मिथ्या ही रुचै तौ कुमता कै भलि जावो।
बैठि सभा मैं इंद्र सुनावै, सुरपति फणपति मुनि ध्यावै।
स्व पर तत्व याही तैं पावै. अघ विनसावै मिथ्या भावै।
वोधि लाभ याही तैं होहै 'पारस' शिव तिय सुख दरसावै।

(२९४)

सुनि तू जीया रे, ऐसी नर परजाय पाय विरथा न गमाय ॥टेक॥
याकूं चाहै सुरपति फणपति इक संजम की चाय।
चक्रवर्त्ति तीर्थंकर तजि तजि, राज गये वन मांय ॥१॥

---

*क्रमांक २९२ से आगे सभी पद केवल एक ही प्रति 'अ' में उपलब्ध हैं।

दुर्लभ मिल्यो जाति कुल उत्तम और निरोगी काय।
सतसंगति सद्गुरु की सिख्या पायी पुण्य वसाय।
शक्ति प्रमाण धारिये संयम, सब विधि कर्म वसाय।
'पारस' औसर चूक गये ते दुरगति मैं पछिताय।

गोपीचंद का ख्याल की चाल मैं

(२९५)

थाका कदमा रो सरनों नाथ मैं अति दुल्लभ पायो ॥टेक॥
पूरो कीयो काल अनंतो, दुषित निगोद्या माय।
जनम मरण ठारा वर कीना, एक सास कै माय ॥१॥
लट चीटी भौंरो मापो तन, विकल त्रय उपजाय।
मन वच बिन कैसें दुख भापूं, अनभव भी कछू नाय।
तहां तैं भयो असैनी पसु भी, नांवु सिद्धा दाय।
सैनी पसू पाप मघ धायो, माया क्रोध वढाय ॥२॥
नार वघेरो चीतो ल्याली, सरप मगर गति पाय।
पाप ठानि नरका मैं रुलियो, सागरा मित थित थाय।
तहां पंच विधि दुप भुगते मैं, यादि करत अकुलाय।
मिनप होय भी दुख हो भुगते, यातैं करम वसाय ॥३॥
सुरगति मैं भी दास कर्म वा भुवन तृक सुर थाय।
देपि संपदा अधिक तनी मैं, सुख न लह्यो उपजाय।
मरण मास छ तैं दुप भोगे, नारक तैं अधिकार।
विन तुव दर्शन सुख न कहां ही यो ही निर्णय पाय ॥४॥
अधम उधारक नाम सुन्यो मैं या तैं सरण लहाय।
अधमन को कथनी मुनि यायी, तुझि आगम कै माय।
अब कै वारों म्हारो स्वामी, वसुविध अंग छुड़ाय।
वेर वेर विनवूं 'पारस' प्रभु कीजे निज सम राज जी ॥५॥

(२९६)

बात भली छै उर धारि लै गुरु सीप सुनावै हो,
ज्ञानवर थारा दिल में जचावै ॥टेक॥
कुगुरु कुदेव कुधर्ममय सुपनां में मति चावै हो।
आतमां रै भूलि मति चावै ॥१॥
वीतराग निरग्रंथ का वच हृदय रचावै हो।
चेतना घर सिव तिय पावै ॥२॥
स्व पर तत्व नय भंग तैं, समझि र क्यूं नैं ध्यावै।
हो आतमा निज पर दरसावै ॥३॥
ध्यावै सो पावै सही रै 'पारस' इम गावै हो।
आतमा रै चूके पछितावै ॥४॥

नणदोई की ढाल में

(२९७)

कौड़ा सूं थे आया जी चेतन जी कौडे डेरा ढाल्या, सुमता सूं
सांची कह्यो।
निगोदि सूं चलि आया, जी सुमता जी, कुमता कै डेरा ढाल्या,
विषय भोग दी षातर।
ता करि दुख उपजाया जी सुमता जी, वचोतीत दुष भोगे,
थावर गति मैं जाकरि।
सो दुख कैसैं भाषू जी सुमता जी, जियो मर्‌यो वर ठारा,
एक सांस कै मां कर।
विकल त्रय मैं आयो जी सुमता जी, सो दुख जाणै ज्ञान,
मैं भाषू मत का कर।

सैंनी पशु भयो मैं नार बघेरो माकर, नारक दुप मैं भोगे,
सप्त नरक मैं जाकर।
नरं सुरगति मैं भोगी, वसु विधि वसि ह्वै रोगी,
अब मम हित समझावो, बूझू तो ढिग आकर,
'पारस' सम घर दीज्यो, कुमता नै तजि दीज्यो,
सीप यही गहि लीज्यो, ह्वै तृभुवन को ठाकर॥

(२९८)

तू नं सुमति सुनपणी समझावं विषया मे मति जा रे॥टेक॥
या विपयां रै कारणैं तू नरक दुप भुगते,
सुख लव हेत मेर सम दुख सहि, अब तो तजि जा रे॥१॥
पराधीन पर आपर विनसत, तिहुपन मैं दुप की सेव हुआ,
ताप जीव कै इनि तैं विनसत, रहत उपजता रै॥२॥
इन मारिग लखि व्रत नैं धारे तलफत हरि प्रति हरसा रे।
'पारस' सुमति सीप धरि करि व्रत, भव समुद्र सू तिर जा रे॥३॥

हूका की चाल मैं

(२९९)

जो शिव रमणी रा प्यारा, आपरा दरसन मैं मनड़ो म्हारो
लाग्यो जी; राजि जी।
प्रभु केवल ज्ञानी, आप री सुचि वांनी भौत पियारी
लागं जी राजि॥
गणधर भाषी गुर परपाटी, चाली हम तक आय,
वानी हित उपदेश दियो म्हानं, श्री जिन दरस रचाय जी॥१॥

मुनि उर राषी तीन लोक के सकल पदारथ साथ,
दीप सिषा सम है परकासक, ध्यावूं अह निसि ताय जी ॥२॥
सांत छवी या लखत फटत मनु, वसुविधि गिर के व्रात,
'पारस' या रस मगन भये ते, जगत पूज्य विष्यात ॥३॥

(३००)

थांका वार वार गुण गावां नाथ म्हांनैं त्यार्या ही सरै।
शिवानंदन जिनराज सांवरा, तुम विन करुणा कौन करै ॥टेक॥
कर्म मोहनी वड़ो दुष्ट मोय, दुरगति मांय धरै।
ज्ञानादिक गुण लूटि हमारा, जड़वत अज्ञ करै।
तुम ही कृपा दृष्टि विन संजम, धरि धरि नाहिं तिरै।
तुम पद जतन विचार तें, मीड़क सुर तिय जाय वरै।
भव दुखहर तुम विरद जानि कै, 'पारस' तोय सुमरै।
पंडित मरण दीजिये अव कै ज्यौं भव भ्रमण टरै॥

(३०१)

देह मैं कायी रै लुभायी काया मैं कायी रै।
जीया साथि नाहीं रै थारी लार नांयी रै॥टेक॥
मात पिता रज वीरज सूं उपनी मय सात कुधात।
दस द्वारनि करि श्रवत पूति नित वमत पित्त कफ वात।
रोगनि की ढेरी देह तेरी, सो भी नाहिं रहात।
धन्नि दिगंवर तप करिया तैं सुखमय मुक्ति लहात।
या उपगार एक नहिं मानत, पोषी दुरगति द्यात।
सोषी शिव देया तैं 'पारस' तप व्रत पथ्य उदात

(३०२)

जिनमत ना लह्यो रे या तैं डुल्यो चतुर्गति माय।
दया दया मुख सुक ज्यू भाष्यो दया भेद नहिं जान्यो।
स्व पर तत्त्व पहचानि विना किम दुविध दया पहचान्यो।
झूठ बोलवा को व्रत लीनों, झूठ भेद नहिं चीनो।
सांच झूठ के भेद समझि विन, वृथा पेद हो कीना।
चोरी तजे कुशील परिग्रह, जिन आगम उर आनो।
'पारस' जिन आगम विन सब ये नृत्य मयूर बखानो।

(३०३)

या मन की गति रोकी ना रुकै ।।टेक।।
समझायो समझै नहिं फिर फिर विषयन माय झुकै।
पाप काज में आंधो होहै, शुभ में नाय ढुकै।
तुम ढिग पग न धरत मृति भय तें, या तें सकल छुपै।
'पारस' चहै अतिंद्रिय सुख कूं, ता तें तोय जुपै।

राग जंगलो, झंझोटी

(

तेरा वे मेरा मैनूं ले चलो ।।टेक।।
दूर दिशा नास्यों री वे तुमकूं न जाणा।
मैंडे बिना ह्यां अपना नहीं साजना।
दया तजो न मोरी वे, तुम हो पूं कीया मैनूं लिया,
ह्या अपना धाह्व गाज नां।

भया करो पै गोरी वे 'पारस' कदमू सरना लीया,

गह्या। जम तुमरा भना।

राग माढ

(३०५)

हो परमात्मा जिनंद।

कोई थाकै म्हांकै करमा ही रो आंटो हो।।टेक।।

जाति लाभ कुल रूप सब तुम हम एकामेक।

व्यक्त सक्ति करि भेद द्वै कीने कर्म अनेक।।

अधम उधारक विड़द सुनि 'पारस' सरन गहीन।

वत्ती दीप समान प्रभु मोहि आप सम कीन।।

राग परज, कालिंगडो

(३०६)

सुमरि सुमरि मन श्री नौकार।।टेक।।

जिन सुमरे तिन ही सुख पायो उतरे भवदधि पार।

अंजन अंजन सुमरत भयो, तिरज स्वान सिंघ मजार।

और सुनें आगमैं बहु जिय सुमरण ही आधार।

विन सुमरण भरमण ही करिहै, रुलिहै भवदधि ष्यार।

'पारस' सुमरण सार एक है या संसार मझार।

(३०७)

गुरु उपदेश दियो रै वाकूं, धार्या सुख ह्वै मीत।।टेक।।

प्रथम विसन मिथ्यात तजो जी, और अभक्ष अनीति।

मन वच तन करि आठ मूलगुण, धरि सुख होइ अचित।
बारा व्रत सामायक प्रोषध, त्यागो वस्तु सचित्त।
दिवा फुकुनि ब्रह्मचर्य आरंभ परिग्रह त्यक्त।
गुरन अनुमति तजि उद्दंडविहारी श्रावक व्रत इम गीत।
'पारस' या भव पूजित पद होय, पर भव सुख पवित्त।

(३०८)

खूब तहकीक किया हमनें,
इन बानू सें दुख गलिहै सुख मिलिहै ॥टेक॥
पंच परम पद सुमरण करिये, हरिये विसदस नें।
स्यात्पदचिह्नित बानी उर धरि, हरि विकथादिक नें।
सास्त्राभ्यास साधर्मिक संगति, भावो निज पर नें।
तजो कुसंग कुविद्या कुमता, जोवो निज घर नें।
विषय कषाय त्यागि भजि निज, चावो निज सुख सम्यक नें।
'पारस' वर्तमान सुखिया ह्वै, पर भव पावो शिव नें।

(३०९)

आजि हम चेतना लखाई।
लखत ही आनंद उर न मात, मानू भूली निधि पाई।
अनादि काल के गुरु नियोग, विन निजता पर भायी।
मानि मानि चउगति भरमाये, अब समता आई।
जिन बानी सिव पथ दरसानी, मेरे मन भाई।
या प्रसाद मिथ्या पर परणति, तजी विषमतायी।
या उर वसियो सम्यक् गुण धी, अंत समय ताई।
'पारस' करै प्रार्थना प्रभु सूं, और कछु न काई।

राग झंझोटी

(३१०)

जिनंद जी थायी को दरसन निति पावूं जब लूं
भव वास बसावूं ।।टेक।।
थायी को दरसन, थाई को अरचन थांही के गुण गावूं ।
थाही के पूरब भव को कथन सुणि, सो ही में रीति रचावूं ।
थाहो की वानी सिव सुखदानी, दिढ उर माय जचावूं ।
तुमरो कथित वृप द्विविध धारि कै, रुचि धरि सुनहु सुनावूं ।
'पारस' यही प्रार्थना करिहूं, और कहां नहि जावूं ।
तुम विन आन देव वृप भेषी, सुपनें हू न लपावूं ।

राग कानड़ो

(३११)

सावरे नें कोई आनि कै मिलावै ।।टेक।।
तोरन तैं रथ फेरि चले गढ गिरनारी तैं मुड़ावै ।
सुनिहै सेसावन जाय कै देवरिषी वैराग दिढावै ।
पंच महाव्रत धारन कीनें मुक्ति तिया पैं उमगावैं ।
हम हू तिन संगि संजम धरि कै, आवागमन मिटावै ।
'पारस' धनि रजमति की ये मति, तप करि सुरपति थावै ।

(३१२)

श्री जिनवानि पियारी रै उर धारि हितकारी ।।टेक।।
सात तत्व को निरणों यामैं नय प्रमाण सवारी रै ।

चउ अनुयोग रूप विस्तारी, याकी महिमा भारी रे।
राज संपदा त्यागि होय मुनि, या ही कूं दृढ धारी।
या के बिन उधरे न उधरसी, यो भव जलनिधि प्वारी।
भव आताप मिटावण जलमुच, अमृत वरपाकारी।
याही भवनिधि तारनहारी, मिथ्या रीति निवारी।
'पारस' तीन लोक मंदिर विचि, दीप सिपा उनिहारी।

राग सोरठ

(३१३)

विपयनि संग त्यागो जी श्री गुरु सिक्षा सांभलो।
इन ही तैं चौरासी भुगति करि करि अनुरागो जी।
निज निधि भूलि हेत इन ही के क्यों भयो कांगो जी।
तीन लोक को ठाकुर ह्वै चाकर ह्वै भागो जी।
निज गुण भूलि मोह वसि सूते अब तो जागो जी।
वड़े वड़े बुद्धि के भाजन तजियो सागो जी।
भजियो संग दिगंवर को क्यों काढ़ो आगो जी।
पुण्य उदै यो जोग मिल्यो विपयनि कूं दागो जी।
'पारस' धरि करुणा गुरु गायो तो पग लागो जी।

(३१४)

रमि गही हो मो मनि श्री जिनवानि ।।टेक।।
आन काम सब फीके लागत, मीठे जिन वच कान।
आन वैन न सुहावत मोकूं, भावै जिन गुन गान।
'पार्श्वदास' जिन वच रस रसिया, पावै केवल ज्ञान।

---

(३१५)

सतगुरु की सीप सुनोज्यो जी नर भव लाहा लीज्यो ।।टेक।।
षट मत सुर गुर वृप भापैं, विन समझि पच्छ ही रापैं,
थे कु गुरु कु देव कुधर्म कुनर को, परसंग ही तजि दीज्यो ।
तजि सातूं विसन गलीज्यो, फुनि पांचू पाप टलीज्यो ।
या भव पैठि उपद्रव विनसै, पर भव सुषमय रीज्यो ।
पर निंदा निज गुण संसा तजि, निज सम लखिर इरसा
स्वाध्याय माय रत्त रीज्यो ।
'पारस' या सोष सुनाई, धनि नर जे सुनी सुनाई, ज्ञानामृत पी
चिर जीज्यो ।

(३१६)

लैरा लगी मैं थारी मोहे लीज्यो लारी ।।टेक।।
विषय भोग मोहे कछू न सुहावत, भासै भव भयकारी ।
जैसीं संयम तुम नैं धार्यो, सोही रीति हमारी ।
'पारस' धनि रजमति मति श्रैसी भव तन प्रीति विडारी ।

(३१७)

हे काया तोये मुतलवनि जानी ।।टेक।।
भक्ष अभक्ष षात न अघावत दोष जीव सिर ठानी ।
ताके उदै कुगत मैं चेतन, दुष भुगतैं विविधानी ।
जनम समय तूं तन उपजत, ताकी सुनहु कहानी ।
गर्भ मास नव जोनी संकट, भुगते चेतन ज्ञानी ।
तप संजम हित धरै जीव तव, असन तजत विलषानी ।
'पारस' धन्नि दिगंवर यातैं, तप करि शिव उपजानी ।

(३१८)

जिया थे हिंसा त्यागो जी, दया कै मारग लागो जी ।।टेक।।
हिंसा पाप दया वृष, सब मतवारे भाषैं याही।
लच्छण भेद जाति कुल काय, जीव के समझा नांयी।
इतनो स्वर्चा म्है तुमारी, जो नहीं तो रहस्य वतावूं भाई।
तुमै बुरी सोई तजि पर प्रति वटकायन कै मायी।
रतन स्वर्ण ग्रत भूमिदान इक जीव दया सम नाहीं।
'पारस' मूल उतर गुण भाषे याही हेत घुसाई।

(३१९)

जिया थे झूठ त्यागद्यो जी सत्य वच मुख तैं वोलो जी ।।टेक।।
ज्ञानी अज्ञ अधर्मी धरमी नीच ऊंच सतसंगी।
वोल्या होत परष मानुष की, कामी एक अनंगी।
यातैं वैर घुपैं सुघरैं गति दोऊ लोक सुचिया तैं।
जा तैं भये त्रिलोकनाथ जिन वोलि सत्य वच यातैं।
नांय तालवो कटै जीभ मुख ना वन छीजै जामैं।
'पारस' सुजस वढै अपजस हर सत्य समझ हिरदा मैं।

(३२०)

जीया थे शील धारिल्यो जी कुसील नर संगति तजिद्यो जी ।।टेक।।
विद्या मंत्रौषधि साघन मैं, करामाति सव याकी।
माता आदि सील फल पायो, महिमा प्रगटी जाकी।
रावण गयो नरक याके विन, धर्‌या देव गति ताकी।

कुल अरु जाति उच्चता गुण सब, पैठि बढ़त है वाकी ।
मिनष जनम को मंडन जानौं, मिल रतन यूं मानो ।
'पारस' दुरलभ मिल्यो धारि दृढ़ रत्न अमोलिक जानो ।

(३२१)

जिया थे संग त्यागद्यो जी दिगंवर भेष मांडल्यो जी ।।टेक।।
सब पापनि को बाप संग है, कलेस करत तिहूंपन मैं ।
उपजत रषत विनास होत भी समझि लेहु निज मन मैं ।
या जुत काज सधै नहिं था तैं तज्यो तीर्थंकर छिन मैं ।
कामदेव हलधरु चक्रधरु, त्यागिर गये विजन मैं ।
'पारस' धनि जे द्विविध संग हरि, जो न जोगता विधि को ।
करि परिणाम त्यागि तृष्णा हो कह्यो उपाय सिद्धि को ।

(३२२)

धनि जीवनि है तिनका सुचिया रुचिया जिनवानी की ।।टेक।।
मोह तिमिर विघटै प्रगटै चिद्‌ज्योति सुज्ञानी की ।
पर परणति छुड़वाय करै, निज परणति ध्यानी की ।
वहिरातमता तजि अंतर कै परमातम दानी की ।
वरतमान वरतैं स्वभाव तजि उदै परानी की ।
'पारस' सेवा फल ये जाचूं चाह न आनी की ।

(३२३)

महारी सजनी आजि तौ चेतन घरि आसी ।
आसी आसी ज्ञानामृत रस पासी ।।टेक।।
कुमता सौकनि कूं छुटकासो, पर परणति भी तजासो ।

धरि गलबाह संवेग धूपजुत, संजम सहित हुलासी।
सील मित्र जुत लखि कै सुमता निज परणति उमगासी।
जिन वानी सब मेल मिलाया, अनुभव सुत उपजासी।
ये मिलाप महाभाग्य लपत है, जनम सफल करवासी।
मोहादिक की संगति तजि कै 'पारस' धन्य कहासी।

राग माढ़

(३२४)

त्यारो महारा प्रभुजी त्यारो हे म्हारा सावरिया जिनजी त्यारो
त्यारो जिन जी ।।टेक।।
कीचक से त्यारे अधम और अजन से चोर।
उनहूं तैं कहा पातगी, झांको म्हारी ओर।
नाम तुमारो कान सुणि, पशु पछी तिरजात।
मैं ध्यावूं अनुभव सहित, क्यों न कटै अघ व्रात।
अधम उधारक विड़द तुम, त्यारे अधम अनेक।
विरद विगाड़ोगे कहा, मोहि टारि कै एक।
मोह उदं भरम्यो जगत, जान्यों तोय न मोय।
अब त्यारो औसर मिल्यो, 'पारस' विनवै तोय।

(३२५)

थे राग द्वेष तजि दीज्यो थे आकुलता तजि दीज्यो जी
सुनि वीतराग रा वैन ।।टेक।।
आकुलता करि भरत बाहुबलि दुखिया हुवे अैन।

अर्ककीर्ति मेघेश्वर याके वध्यां कियो जुद्ध गहैन।
वलि नारायण पांडव जोधा, राग धारि दुष लैन।
तृष्णा वसि दुषिया कोटीध्वज, कहिं भी सुखिया ह्वै न।
तीन लोक के सुरपति नरपति रागी सुषिया है न।
वीतराग लषिहै दलद्र हू मैं उनकै सुख चैन।
'पारस' धारी वीतरागता, राज त्यागि प्रभु जैन।
सुख चाहो तो राग त्यागि रहो वीतरागता लैन।

(३२६)

प्याला पिलाया वाणी ज्ञान का ज्ञानी जन छकियां ।।टेक।।
वेष वरी भई परभावनि की निज रस मैं मतवाला।
आनदकंद आतम रस पीन, अदीन भये गुण वाला।
या तैं छके जात नहिं वाहिर, मिट गये आल जंजाला।
अदभुत आनंद मगन ध्यानमय भविजन हाल सभाला।
या अवसर के सुख की महिमा, जाणैं ज्ञान विसाला।
'पारस' जन्म सफल भया तिनका पिया ज्ञान का प्याला।

राग आसावरी

(३२७)

अव थे क्यों दुष पावो म्हारा जीवरा इम सुखिया हो जावो रै।
क्रोध लोभ छल मान मोह मद, धरि नाहक दुष पावो रै।
इनकूं तजो भजो समता उर, जीवन मुक्त कहावो रै।
बड़े बड़े वुद्धि के धारक, कहा कीयो उर लावो रै।

या मैं तन घन वल न चहै कछु, आगम सार चितावो रे।
श्री जिन गुर श्रुत मंत्र सुनायो, 'पारस' उर मैं रवावो रे।
आलवाल जग के कोलाहल, अब मति सुनों सुनावो रे।

सारंग की होरी

(३२८)

होरी पेलै सम्यकवान भव आताप मिटै ।।टेक।।
जल विवेक करि नादि काल को चित चिवर का राग
मिथ्या मैल कटै।
निज परणति सो सुगंधित केसरि निज रतिमयी गुलाल,
सुंदर रंग घुटै।
ज्ञान ध्यान अबीर अरगजा समता पिचकीदान,
फवारा धार छुटै।
'पारस' रचो जिकै या होरी, मुक्ति कामिनी संग,
क्यूं नहिं प्रीति जुटै।

(३२९)

जिन मंदिर चलि सुभ उपजावें, अघ विनसावें ।।टेक।।
छ सूनां के पाप मिटावें, पोटा विकलप टलि जावें।
आवस्यक षट् कर्म सधै जहां, वहु श्रुती संग मिलि जावे।
कलह हास्य कौतक निद्रा सब, अयूं आप ही रुकि जावें,
'पारस' निज हित सहज वनत जहां, ज्ञान ध्यान रंग वढि जावें।

{

(३३०)

भाग्य उदै अब आया भला तैं जिनतम पाया ।।टेक।।
मद्य मांस मधु पंच उदंवर जनमत ही न चपाया ।
विन छाण्या जल राति का भोजन, आरभ गमन घटाया ।
घिरत न चष्या विन ताया ।।१।।
हिंसा रूप व्योपार न यामैं कुल की रीति लहाया,
साधरमिन की संगति सेती तत्वारथ समझाया,
ज्ञान सम्यक दरसाया ।।२।।
दोष रहित सम्यक्त धारि अब कीज्यो मंद कषाया,
'पारस' धरि समता ममता तजि नर भव सफल कराया,
चूक्या तेही पछिताया ।।३।।

(३३१)

अरजी करहूं सकास ठाड़ो जिनवर सैं ।।टेक।।
मोह करम अैंचि खैंचि काढत निज घर सैं ।
निज परणति सुख निधान ताय हरी जर सैं ।
अप्रमाण काल भ्रम्यो परणति भई पर सैं ।
सुख को न ल्हेस कही दुख ही दुख भरसैं ।
जो तुम मोहादि नास रहित भये पर सैं ।
तैसैं अब मोहि करो रहित मोह कर सैं ।
'पार्श्वदास' अरज करत पारस जिनवर सैं ।
अरज करत सरम आत, तुमरे

राग वरवो

(३३२)

सुनि जिया रे जिनवानी निधानी गुण रतननि की या पावनी ॥टे
रतन दीप नर भव विषै, या रतनन की है खानी।
रतन त्रय यातें पाय कै रे, परनी सिव रानी ॥१॥
व्रत संयम यम ज्ञान ध्यान तप रतन घनेरे।
एक एक ही पाय गये तेही मुखित भये रे ॥२॥
इन रतनन के दाम पटं सुरग मुकति कै मायी,
या भव मैं इण मोल जोग्य सो पदारथ नांयी,
याके सेवक सेयहै, तिहूं जगपति करि कै,
'पारस' सेवा आचरी, तन मन सुध धरि कै।

राग आसावरी

(३३३)

जीव तोय शिव नारी परणावू रे,
भवातति कुमारि सो तजावू रे ॥टेक॥
सात प्रकृति उपसमवाद्य करि समता करू कढाई रे।
पंच परम पद सरण विनायक, अजपा गान गवावू रे,
स्वाध्याय पंच वरणीं मिठाई, भीमूं और भिमावू रे।
रतन त्रय सिर सेहरा भी धरि कै, सील वसन पहरावू रे,
अष्ट करम फुलवाद लुटावूं, अैसी निकासी कढावू रे।
शुक्ल ध्यान अग्नि विचि, मन वच तन घृत होम करावू रे,
केवल ज्ञान दान करि 'पारस' सिव तिय सुख विलसावू रे।

राग सोरठ

(३३४)

मैं तो कीनों यो निरधार सार मत जैन है ।।टेक।।
अष्टादश दोषन विन जिन प्रभु गुण अनंत भंडार।
गुर निरग्रंथ मुक्ति पद साधक धर्म दया आधार।
षट् कायन की दया प्ररुपै, न करै काहू को विगार।
दुष्ट जाणि मध्यस्थ भाव धरि, गुणवंता सुषकार।
जो कोई करै विगार तास परि, आप करै उपकार।
चंदनादि लखि उदाहरण उर, कबहु न धरै विकार।
आदि अंत अविरुद्ध देसना, न तजै सूत्राधार।
'पारस' विनवै जवलौं शिव, मम राचो शिव दातार।

(३३५)

श्री गुरु वीतराग करुणा धरि हित समभावै सो उर धरि लै रे ।।टेक।।
वहिरातम तजि नादि काल की अंतर ह्वै परमातम भजि लै ।।१।।
या मैं कछु नहिं पराधीनता सो तो मैं तू ही आचरि लै ।।२।।
ग्रह तजि मुनि वन मैं जो करिहै, यो ही काज तू इहां करि लै ।।३।।
'पारस' आन काज सव तजि यूं साधि सहज मैं शिव तिय वर लै ।।४।।

गोपीचंद का दोहा की चाल मैं

(३३६)

जिन वाणी-माता निज पुर मैं वास कराय दे ।।टेक।।
निकसि निगोद भ्रमे वहु धरि करि तृस थावर के भेस।

नर सुर पसु नारक चउगति मैं, लह्यो न सुख को ल्हेस।
दुख ही दुख भुगते मैं माता, कबु नहिं मिट्यो क्लेस।
सुखकारी दुखकारी लपि तोय, कदमां आयो ऐस।
मोह हर्यो मम ज्ञान तास करि, स्वपर भेद नहिं पायो।
ता करि करी बंध को करणी, अनहित हित दरसायो।
विषय कषाय जाणि सुखदायक, तरु धतूर उगायो।
थारो दरसण मिल्यो न माता, याही तें भरमायो।
कल्पलता तू जै करि माता, कृपा दृष्टि करि झांकै।
इंद्र विभव निःसार लपत सो, साचो सुख है वाकै।
थारी महिमा कौन कहि सकै, सहस जीभ करि थाकै।
अव तौ सरणो आनि लह्यो मैं पुण्य उदय भयो म्हाकै।
काल हीन अर सहनन हीना, ना गुरु मिले अदीना।
ना सहाय हित चरण करण प्रति, ना कछु लंबा जीनां।
थारो जोग मिल्यो अव 'पारस' या तें सरण गहीना।
अपनो सुजस जाणि वर दीजे, पंडित मरण प्रवीना।

(३३७)

हेली चिद प्रीतम कव ग्रह आसी।
तदि भव भ्रमण मिटासी ।।टेक।।
सुभ अरु असुभ निमित पय वांधि सुभासुभ कर्म।
भाव सुभासुभ होत यूं नाहि' गहत; निज धर्म।
कुमति नारि वसि वहु भ्रम्यो, बिना सुमति के संग।
सुमत संग धारत जिके सुखित भये सरवंग।
'पारस' याही के बढ़े सुद्ध होत उपयोग।
तदि वसुविधि नसिहै सही, बनत मुक्ति को जोग।

(३३८)

मुक्तिवाला जिनवर जतिया ।।टेक।।
मेटि दिया अज्ञान अंधेरा, और विनास्या भव वन फेरा।
तप संजम की रीति बढावत, असुभ करम का करत नमेरा।
'पारस' आवत ताय लखावत, सूधो मारग सिवपुर केरा।

लावणी

(३३९)

अथिरता मानी धन जोवन की,
धन्नि दिगंवर तप करि जारी गति बसुकर्मनि की ।।टेक।।
कामदेव चक्री हरि हलधर और देवगन की।
दीसत है विजुरी सम सब ही थिरता नहिं किनकी ।।
'पारस' पद पूजत तिनका लति ग्रही तपोवन की।
मो कूं सो वर देहु जिनोतम वांछा मो धन की ।।

सारंग की होरी

(३४०)

चिद नृप घरि आजि मची होरी ।।टेक।।
समकति सुचि जल माट भराया, ज्ञान गुलाल रंग घोरी।
आठू ध्यान गुलाल के गोटा, समता मय पिचकी छोरी।
निजरसिमयी डोलच्या भरि भरि, वावत है सुमता गोरी।
अनुभव रूप अरगजा महकत ममता अरु संका तोरी।

गुर वच ढोल प्रतीति वासुरी, उहापोह ताल जोरी।
तप मोचिंग स्वाध्याय मिठाई, निज परणति पुष्पनि झोरी।
महाभाग्य लपत है 'पारस' पावै सिव पोरी।

राग सारंग

(३४१)

साधरमी खेलत या होरी ।।टेक।।
सातूं प्रकृति उपारत जर सूं ज्ञान अग्नि करि परि ज्वारी।
मोह को धूरि उड़ावत सारी, मिथ्या रजनी निरवारी।
तत्व प्रतीति तोय पिचकारी, आपस मैं भरि भरि डारी।
उज्जल दयामयी चादर परि सत्य तमोल वहुत भारी।।
तप मेवा स्वाध्याय मिठाई, वाटत है भरि भरि थारी।
या होरी न लपत संसारी, 'पारस' संतन कूं प्यारी।।

(३४२

सुज्ञानीडा रै गुरु दी सीप सम्हारि रै।टेक।।
अनंत काल जग भरमत वीत्यो, अब निज हित अवधारि।
अविरत जोग प्रमाद कषायां, और मिथ्यात विडारि रै।
व्रत अरु समिति गुप्ति अनुप्रेक्षा, दश विध धर्म विचार।
'पारस' इण विधि सीप सम्हारो, शिव पावो अनिवार रै।

(३४३)

भजन इक मानुष भव को सार ।।टेक।।
षट् मत वाले याही भाषत या तैं उतरै पार।
भजन विना संसार भ्रमत है च्यारू कुगति मझार।
सुनिये है आगम मैं भी यह नाहि भजन उनिहार।
भजि भगवंत सुखित होवु 'पारस' है सिवफल दातार।

(३४४)

निर्णय करि गहि लीनी या सैली मुक्ति पुरी की गली ।।टेक।।
देव धर्म गुरु को जहां निरणो, नाहि रीति अघ मैली।
दिगंवरन की देसना वरतत जहान कु लिषी फैली।
या ही को उपगार लष्यो अव, सुधरे विसनी धैली।
या के रचत मिथ्यातम विघटै, सम्यक सरधा ह्वैली।
'पारस' भाषत साधरमनि[1] सूं, या सरधान अहैली।
या प्रताप फिर नर भव धरिकै निश्चै मुकति उपजैली।

लावणी

(३४५)

जीव सतसंगति मैं रहनां।
मिथ्याती पायी विसनी संगि भूलि न रति करनां ।।टेक।।
जैसैं अगनि लोह की संगति, घन का घात सहनां।
पुष्प संग करि तृण सिर ऊपरि देव मिनख धरना।

---

३४४ : १. प्रति 'अ'—साधरनि।

चांडाल मुनि की संगति करि छत्र चमर ढुरना।
जीवक संग पाय सुर उपज्यो, स्वान शास्त्र भननां।
'पारस' इम गुण दोष जानि, सतसंगति अनुसरना।
तजि कुसंग मानुष भव दुर्लभ, मिल्यो सफल करना।

(३४६)

श्री जिनदेव सुगुरु सारदा पूजवा चालां हे ।।टेक।।
दोष अठारा रहित सहित गुण षट् चालीस विराजै,
है अनंत गुण जुत त्रभुवन पति पूजित पद नित जजो।
मूल उत्तर गुण घरे दिगंवर सव पर महिमा छाजै,
रत्नत्रय धारक गुरुपद[1] सकल इण विना तजो।
सप्तभंग करि वस्तुरूप दरसक मिथ्यातम भाजै,
जाकै सुनें होत भवि ज्ञानी, निस दिन ता रस रजो।
नादि काल के मिथ्या त्रय भजि, भ्रमे चतुर गति मांय,
'पारस' पय[2] सार्धमिक संग, अव तौ मिथ्या तजि[3] लजो।

(३४७)

जिन मत कै भायी तिन लिंग वरनन किया ।।टेक।।
प्रथम लिंग मुनिवर को भाष्यो श्री जिन मुद्रा धारी।
द्विविघ संग त्यागी अनगारी, जातिरूप अविकारी।
दूजो लिंग उदंड विहारी ज्ञारा प्रतिभा धारी।

---

३४६ : १. प्रति 'अ'—गुरु प। २. प्रति 'अ'—पय।
३. प्रति 'अ'—जजि।

खंड वस्त्र कोपीन पात्र एक इन विन सव संग छारी।
तीजो लिंग अर्जिका सतो को एक वस्त्र तन धारी।
तीनूं असन तजै उद्देस्यो राग द्वेष मोह जारी।
सुरपति नरपति खगपति पूजै, आप तिरै जग त्यारी।
प्रथम नमोस्तु इछामि दूसरा तथा वंदनाकारी।
इन विन उदर भरण की जानों सव ही दुकांदारी।
'पारस' लखि कलजुग की महिमा तजि रति द्वेष असागी।

राग सोरठ, उझाझ

(३४८)

तेरे हित दी वातडी सुनि लीजे रे भाई ॥टेक॥
अति दुर्लभ नर भव तैं पायो, जाय चहै सुररायी।
उत्तम कुल जिन धर्म पाय, संग रचो सुखदाई।
पाच पाय अरु विसन कषाया, मद मिथ्यथा तत जायी।
वै ही नर सुरगति सुख पैहै, संत जिके गुण गायी।
रावणादि विसनादिक राचे, गये नरक के मांयी।
'पारस' सुपथ चलो सुख पावो अब चूक्या पछितायी।

राग सोरठ, उझाझ

(३४९)

नर भव पाय भवि सुरग मुकति को कीज्यो जी सामो ॥टेक॥
कुगुरु कुदेव कुधर्म तजो ये निश्चय सिव सुख पामो।

करि प्रमाद बहु जिय पछितैहै, उद्यम करि हित कामो।
आलस तजि 'पारस' प्रभु सुमरो. अष्ट पहर दिन यामो।

गोपीचंद का दोहा की चाल में

(३५०)

मारो वसुविध कर्म कूं योही दुख देहै ।।टेक।।
नार वघेरा दुष्ट नृपति अरि साकनि डाकनि मारी।
रोग सोग विसमय याही के बल करिहै दुपकारी।
नारक तिरजंच दुपी दलद्री रचि रचि कोईपुवारी।
मनु परजाय पाय अव सभलो, याहि हतन की वारी।
अरि मिता सुभ असुभ कर्म यूं जानत है मतिधारी।
सिंघ वृत्ति गहि तजै स्वान वृति याकूं धरै अनारी।
याकूं हत्यो दिगंवर जग मैं व्रत संजम तपधारी।
'पारस' रीति देस तैं धारो त्यौं सुख ह्वै अविकारी।

राग पट्

(३५१)

वीतराग सर्वज्ञ जिनोतम तेरी महिमा को मुख कहिए
निर आयुध विन क्रोध हते, वसुविधि प्रचंड अरि शिवपुर लहि
तुमरी भक्ति करत है जे नर, ते सुरपति होय सुख तैं रहि
जे अभक्त विपरीति तुही ते, ते कुगतिन मैं दुप करि दहि
असन वसन भूपरण तजिये, तवू समवशरण संपति करि सहि

जप तप संजम भी आचरिया, सो भी सफल फलै ना ।
जग की सब विद्या अभ्यासी सम्यक ज्ञान फुरै ना ।
द्रव्य लिंग धरि धरि सुर उपज्यौ, करमा के बंध जरै ना ।
'पारस' दरस मरण लूं जानत, फिर जनमै न मरै ना ।

(३५७)

बरज्यौ नहिं मानत मानी, कुमता के घरि जाय ।।टेक।।
या कुमता म्हारी जनम को वैरन मोहि लियो पीव ज्ञानी ।
याकूं विषयनि संगि लपटानी ।।१।।
चौरासी के दुख भुगताये तौ हु न दिल बिचि आनी ।
या तौ है दुरगति दुखदानी ।।२।।
'पारस' सीप सुमति की सिपिये, तजि कुमता दुखदानी रे ।
या तैं पावोगे सिवरानी ।।३।।

राग पमावच की ठुमरी

(३५८)

निपट पटन मोह हठ भीनो हे सय्या वार वार समझावूं ।।टेक।।
देव धरम गुरु पयानै परत है, मिथ्या मघ न तजावत ।
मोह की जायी कुमता सगि रायी, पायी मो घर आवत लजावत ।
या संगि सहे पंच परिवर्त्तन मो घर गुरु समझावत ।
'पारस' एक महूरत थावै, तौ शिवपुर सुख पावत ।

---

३५६ : १. प्रति 'अ'—कीजे ।

(३५४)

श्री समुदविजै जी रा ललना पलना मैं झूलै री ।।टेक।।
धनद रचित रतनन रो पलना रेसम डोरि लगाई।
सक्र सचीजुत विनय देव गन होड़ाहोड़ झुलाई।
मात तात उर हरष न मावत, उठि उठि लेत बलायी।
वस्त्राभूषण अंगन सोभा, मुख तैं बरनी न जाई।
तीन लोक की लच्छमी मिलि मानूं याही घर चलि आई।
जा घर जन्म लियो त्रैलोकपति, 'पारस' तहाई आई।

(३५५)

दीनानाथ मेरी सुनाई करो नां।
हा हा पाय तोरे पयां परत हूं, अजहू कान परी ना ।।टेक।।
तुम नें त्यारे अधम घनेरे, तिनकी संख्या भई ना।
तुमारी भक्ति विना मुनिवर भी, तप करि मुक्ति वरी ना।
मैं तृसंधि रति धरि ढिग आयो, तो भी सार धरी ना।
असी पोलि सुणी न कवी हम घर त्रैलोक्य पती ना।
अब तो गहो तुम चरना की सरना आन की सरना परी नां।
'पारस' वसु विधि सक्ति नासि नृप दीजे[१] मुक्तिपुरी ना।

(३५६)

हो जिन स्वामी दरस मोय देना ।।टेक।।
तुमरे दरस विर जग भरम्यो सो तो भ्रमण टरै ना।
विषय कसाय जाल मधि फसियो, सोभी जाल जरै ना।

---

३५५ : १. प्रति 'अ'—कीजे।

जप तप संजम भी आचरिया,
जग की सब विद्या अभ्यासी
द्रव्य लिंग धरि धरि सुर उपज्यो,
'पारस' दरस मरण लूं जाचत,

(३५

वरज्यो नहिं मानत मानी, कुमता
या कुमता म्हारी जनम को वैर
याकूं
चौरासी के दुख भुगताये तौ
या
'पारस' सीष सुमति की सिषिये,
या

राग षमावच की ठुमरी

(

निपट षटन मोह हठ भीनो
देव धरम गुरु पयानै
मोह की जायी कुमता संगि
या संगि सहे पंच
'पारस' एक महूरत

---

३५६ : १. प्रति 'अ'—कीजे ।

द्रव्यानुयोग की वात न भावैं, करता सूं रिस ल्यावैं।
सूत्र सुनावैं दाम कमावैं, ज्ञानी लपि रोस वढावैं।
'पारस' लखि इन कूं मति वोलो, रति रिस दोवू तजावो।
कलिजुग की महिमा चित धारि सौं, घर जिन संगि रचावो।

राग वरवो

(३६४)

सुनि जीया रे निज अवलोको अनादि काल सूं ॥ टेक ॥
तुझ घर मैं नव निधि धरी, अनंत चतुष्टय भारी।
सो तोकूं न पवरि परी, तू क्यूं भ्रमैं है विपारी।
रागादिक काची कामली, करि भोगी पुवारी।
वीतराग गुरु करुणा धरि हरि लपवायो।
'पारस' समता आचरो, तजि ममता दुखकारी।
याही तैं सिव पायहैं, पायी आवैं अगारी।

(३६५)

विधि दुख नाना परकार देत जिन मानो तो सही।
या कूं विनासि सिव देहु नाथ चर,'तुम पद सरन गयी ॥टेक॥
थावर की परजाय मोय कूं जड़ उनिहार दयो।
विकल त्रय मैं छिन्न भिन्न घसो, प्रो कोयी नहीं दया लयी।
तिरजंचनि मैं भूप प्यास दुख मुख नैं जात पयी।
तात मात नहिं राज पंच माही जणि पाय गयी ॥२॥
देव नरक के दुख नाना विधि छानीं तुम तैं नहीं।
नर भव पाय वीनवैं 'पारस' अवसर भलो ययो।

उत्तम नर तप करि सिव पाई, मध्यम सुरपुर जायी।
अधम कुज्ञानी कुगति परत है, यूं समझो दिल मायी ॥३॥
'पारस' धरि समता ममता तजि, विषय कषाय घटायी।
श्री जिनेंद पद सरण धारि, अधर्म की रीति द्यो तजायी ॥४॥

(३६२)

वस्तु स्वरूप सो ही श्री जिनमत,
याही तैं अनादी अकर्तृम कहिये ॥टेक॥
मोहजनित अज्ञान तास करि, जग जन लपत न हेरत रहिये।
तीन लोक तिहुकाल माय सो, रागादिक परणति तन कहिये।
श्रावक अरु मुनिभेष भेष सब, ताही साध के साधन गहिए।
निश्चय अरु व्यवहार रूप सो, जिन आगम ही तैं सो पये।
धर्म अनंत वस्तु मैं गर्भित, नय प्रमाण करि सुचि मति रहिये।
'पार्श्वदास' जब लौ सिव होवै, तव लौं सरन जिन मत ही चहिये।

(३६३)

जिनमत मैं भेषी भया कलिजुग कै जोरै ॥टेक॥
कपडा रंग सुरंग पहरैगै, गैणा भी घडवावै।
गाय भैंसि रषि तुरंग पालकी, ज्यां परि चढै चढावै।
देत उधारा व्याज फलावै, जागां नई चुणावै।
टौणा टामण वैद्य सजोतिस, राति मसाण जगावै।
नीच देव की करै उपासनां, मिथ्या देव पुजावै।
संदृष्टी सद्व्रतधारी, श्रावक सूं नमन करावै।

[illegible] ॥ [illegible] ।
[illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ।
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]

([illegible])

[illegible]
[illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।
[illegible]
[illegible] ।

([illegible])

[illegible] ॥ [illegible] ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ [illegible] ॥

राग पट्

(३६६)

सात विसन प्रय व्रात मति कीज्यो जी ।। टेक ।।
द्यूत विसन तैं पांडव नरपति डोलत फिरे विषारी ।
मास खाय वकराय विराठ्यो, कथा पुराण मझारी ।
सूरापान दोस तैं जादव, सुत द्वारिका प्रजारी ।
चारुदत्त वेस्यां वसि भोगे, दुख नाना परकारी ।
व्रह्मदत्त नृप हू सिकार तैं, सुख संपति विगारी ।
सत्यघोष चोरी तैं वूडयो, विपदा सही अनारी ।
पर नारी संकल्प धारि, रावण डूब्यो मझधारी ।
'पारस' जानि पाप घर सातूं, तजि परणों सिवनारी ।

गोपीचंद का दोहा मैं

त्यागो त्यागो जी अनुराग आजि परभाव सैं ।। टेक ।।
मोह कै उदै पिछाणि भई नहिं पर ही पर मैं जान्यो ।
अव मैं मैं पर पर सव ही थये, यूं निश्चय उर ठान्यो ।
भ्रमे वहुत वहिरातम होय कै, अंतरातम न पिछान्यो ।
सैलो के परताप लष्यो प्रभु, सुख नै जात वषान्यो ।
'पारस' प्रभु सू याही जाचत, मरण समय परवानों ।
ज्ञान भाव मम रहो सास्वतो, निश्चै भ्रम तम भान्यो ।

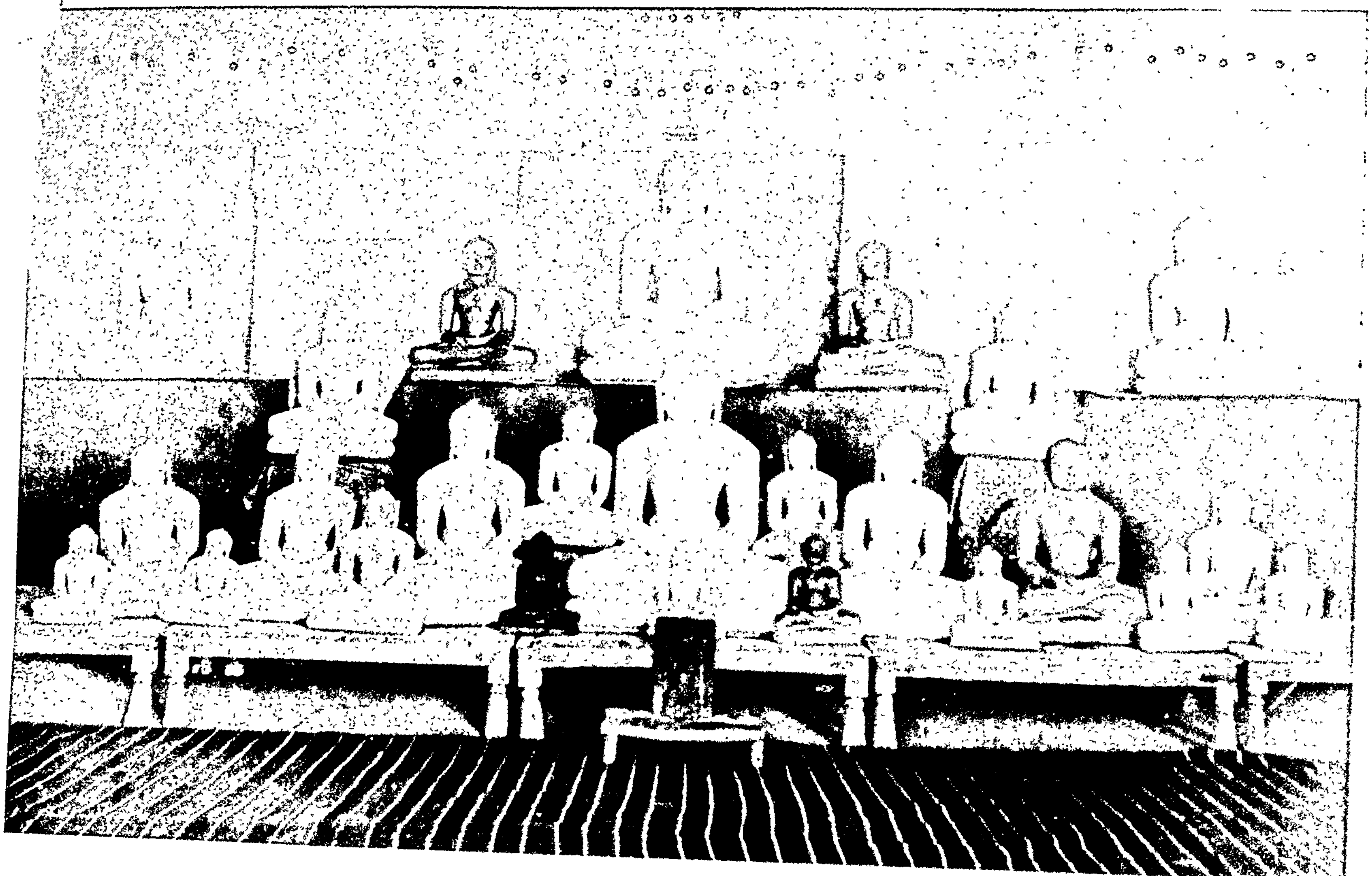
पूरत पूरत गलत तवू पूरण का तजत न सासा।
वीती आयु चलने की भई त्यारी, ताका फिकर न मांसा ॥ २ ॥
असुभ उदै दुख भुगत ता समय कोउ करि सकै न दिलासा।
तन धन की गुमरी मैं करत अघ, दिल मैं धारि हुलासा ॥ ३ ॥
या ही दोष तैं नव नारायण करत नरक मैं वासा।
'पारस' नव वलभद्र भए शिव करि विस्वास विनासा ॥ ४ ॥

(३७१)

हा रै हो सुज्ञांनी जीवरा कुगुरा संगि मति जाय रै ॥ टेक ॥
सम्यक श्रधा लूटिसी थारी, खोटी तर्क सुनाय।
ज्ञान गाठि को खोयसी थारै, मिथ्या ज्ञान थपाय ॥ १ ॥
संजम व्रत थारा सीथल होयगा मिथ्या रीति रचाय,
कुगुरु कुदेव उपासनां करि, कुगति परोगे जाय।
काज सुधारो आपनों सावरमिन संग रहाय।
विसन पाप मिथ्यात तजि यूं 'पारस' सिव दरसाय।

(३७२)

सुभ गति नर भव की भारी,
सुरपति चहै पाय कव सिव ह्वै सो तैनें धारी ॥ टेक ॥
वालपणूं खेलन मैं खोयो, भयो अघ संचारी।
ज्वान पणे मैं काम सतायो, नगिनी थारी म्हारी।
मध वय मैं ग्रहभार वह्यो, परखी तृष्णा नारी।
वृद्धपणै अंग सिथल बुद्धि वल रोगनि तैं ख्वारी।



टोंक में भूगर्भ से प्राप्त २६ तीर्थङ्कर प्रतिमायें

यू पन पोय जाय दुरगति यें मूढन की त्यारी।
ज्ञानवंत की रीति सुनों अब सो तारनहारी।
वालपणे विद्या अभ्यासैं, जोवन तपचारी।
मध वय श्रुत सन्यास अंत 'पारस' वरैं सिवप्यारी।

(३७३)

मत लखियो नारि विरानो रे,
या तौ विप की छुरी समानी रे ॥टेक॥
छुरी तो अंग कै छिप्या प्राण ले, याकूं लपत मरत जग प्रानी रे
आगम अनुभव [illegible]नी
रावण आदिक सुने शास्त्र मैं, लखत भये विपपानी
या तैं हो गये नरक [illegible]नी
'पारस' दुरलभ नरगति गानी, याहि तज्या सफलानी रे
पावो पंचम गति [illegible]नी

पद चौवीसी*

राग काफी

(१)

अजित जिनेस[1] अजित करि मोय।
नृप जित शत्रुक[2] वर तृभुवनपति ॥टेक॥
तुम वसु[3] कर्म विनासि जगत मैं प्रगट्यो[4] कोवु नहिं जीतै

---

*भगवान ऋपभदेव, पार्श्वनाथ और महावीर तीन तीर्थंकरों से [illegible] पद क्रमशः क्रमसंख्या ८७, २६ एवं १०३ पर [illegible] जा चुके हैं।

राग द्वेष हत सब[५] कुदेव लषि, क्रोध करि लुटि गये सोय।
वीतराग सर्वज्ञ[६] अजित तुम, 'पारस' पूजैं संका षोय।

राग झंझोटी

(२)

संभव जिनपद प्रसाद सम्यक भव होयी ।।टेक।।
आन देव सेये तैं हित न सध्यो क्यों यी।
ज्ञान गयो गांठि को कुजोनि[१] भ्रम्यों योंयी।
अब[२] जिन बचन[३] श्रवन पाय पर परणति षोयी।
'पारस' निज परणति गही,[४] चनमूरति[५] जोयी।

राग काफी

(३)

अभिनंदन पद मैं चित दीनों।
जनम[१] होत तिहुँ जग आनंद्यो, ता तैं नाम अभिनंदन कीनों।
जा प्रसाद निज आतम चीनों, आनंद घन दुख[२] रहित प्रवीनों।
पारस अैसे देव सिरोमणि, पाय न रूचत आन सुर हीनों।

---

१ : १. प्रति 'अ'—जिनेश। २. प्रति 'अ'—सन्तुक।
३. प्रति 'अ'—वसु। ४. प्रति 'अ'—प्रगटे।
५. प्रति 'अ'—सब। ६. प्रति 'अ'—सरवज्ञ।
२ : १. प्रति 'अ'—कुजोन। २. प्रति 'अ'—अब।
३. प्रति 'अ'—वचन। ४. प्रति 'अ'—गहि।
५. प्रति 'अ'—मूरति।
३ : १. प्रति 'अ'—जन्म। २. प्रति 'अ'—दुख।

राग विलावल

(४)

सुमतिनाथ को सुमरूं नाम. कुमति विनासक[१] सुमति प्रकासक॥टे
इन्द्र[२] सुरेंद्र[३] नरेंद्र[४] नमित पद हित दरसावक जोति
वड़े[५] वड़े[६] गणपति रिषि वंदत[७] गावत ध्यायत आठूं ज
जिनकी मति ढिग सब[८] मतवारे, पारस त्यागे परपि नि

राग धनाश्री

(५)

सुमरूं[१] पदम प्रभ जिनराजं[२] ।
लोकोतम लपमीं के नायक लजि तृलोकपति लाजें ।
समवश्रुति विचि तीन पीठ परि अंतरीक जिन छाजें[३] ।
कोटि भानु[४] करि जो नहिं विनसत, सो तम लपत[५] ही भाजें ।
'पारस' असो लपि प्रभु अतिसय, अपनों साधो काज[६] ।

---

४ : १. प्रति 'अ'—विनाशक । २-४. प्रति 'अ न' इन्द, सुरेंद, नरें
५-६. प्रति 'अ'—वडे, वड़े । ७. प्रति 'अ'—वदित ।
८. प्रति 'अ'—सब ।

५ : १. प्रति 'न'—टेक के प्रारम्भ में 'मे' अतिरिक्त ।
२. प्रति 'अ'—जिनराज । ३. प्रति 'न'—साजें ।
४. प्रति 'अ'—मान । ५. प्रति 'अ'—लखत ।
६. प्रति 'अ'—कारज ।

राग धनाश्री

(६)

श्री सुपास[1] जिनंद पूजो[2], सुप्रतिष्ठ नृप को नंद ।। टेक ।।
इष्वाक कुल मैं चंद उग्यो, पृथ्वीदे सुषकंद[3] ।
वाणारसी मैं भये उच्छव, नचत सुरपति वृंद ।
बाजे[4] बजे तिहुं लोक मैं, सुर कीयो[5] हरष अमंद ।
पांचू कल्याणक सुमरि, पारस मिटै भव दुष[6] दुंद ।

राग लावणी

(७)

चंद जिन भवाताप मेटै,
या कारण सुर नर मुनि सब मिलि, चरण कमल भेटै ।। टेक ।।
तीन लोक त्रिजयी[1] कोवु जाकै, पड़ि न सकै षेटै ।
अैसो मोह महातम जिनकै, आप भयो हेटै ।
अघ हम हरो अज्ञान तिमिर वहु, काल रह्यो पेटै ।
'पारस' वड़ो भाग्य जिन पाये, चंद चरण सेटै ।

राग धनाश्री

(८)

भजि मन पुष्पदंत जिन सायी ।
जा तैं[1] शिव जाचै मुनिरायी[2] ।। टेक ।।
जाकूं चितवत मिटत भवातप, सांत भाव हुलसायी ।

---

६ : १. प्रति 'अ'—सुपार्श्व । २. प्रति 'अ'—सुमरो ।
३. प्रति 'अ'— सुखकंद । ४. प्रति 'अ'—वाजे ।
५. प्रति 'अ'—कियो । ६ प्रति 'अ'—दुख ।
७ : १. प्रति 'न'—विजइ ।

श्री सुग्रीवराय कुल द्योतक, पूजो मन वच[3] कायी।
पारस कूं सेवा फल दीजे, एक समाधि दरसायी[4]।

राग धनाश्री

(९)

श्री सीतल जिनचंद लोकपति सुनों हमारी अरज सुनने की ॥ टेक
भावाताप मिटि सीतलता मम तुम पद नुति बिन[1] नहिं वनने[2] की
तुमरो सहाय पाय बहु सुरझे, तुम विन[3] सक्ति न विधि हनने की
अब तुम भक्ति पाय मम उपज्यो, जो सुप[4] सो न सक्ति भनने की
'पारस' सीतलनाथ देव मम[5], हरियो व्यथा मरण जननें की

राग लावणी

(१०)

श्रेय श्रेयांसनाथ देव[1], इंद, नरेंद, सुरेंद, गणेंद, पगेंद पाय सेवें
श्रेय कियो जनमत ही[2] जग में श्रेय नाम लेवें।
अन्य देव रागादिक वसि[3] सब[4] बंध[5] उदय घेवें[6]।
उनके सेयें श्रेय न मिलिहै, मूढ लोक ध्येवें।
'पारस' पाय श्रेय जिनवर भजि त्यागि सकल एवें[7]।

---

८ : १. प्रति 'न'—में। २ प्रति 'म'—मुनिराई।
३. प्रति 'म'—वच। ४. प्रति 'म'—दशायी।

९ : १.३. प्रति 'म'—विन। २. प्रति 'म'—वनने की।
४. प्रति 'म'—सुख। ५. प्रति 'म'—मम।

१० : १. प्रति 'म' में देवं से पहले 'नाथ' शब्द का अतिरिक्त प्रयोग। २. प्रति 'म'—हि।
३-५ प्रति 'म'—वसि, सब, बं
६ प्रति 'म'—वेवें। ७ प्रति 'म'—एव।

लावणी

(११)

ध्यान धरि वासुपूज्य[1] जिन को ।
तीन लोक तिहुं काल मांय नहिं तारक इन विन[2] को ।
हरिहरादि मद[3] भांजि लोकजयी, मदन नस्यो तिनको ।
सुष[4] अनंत गुण षानि जानि जस, गान करो विनको ॥ १ ॥
गणाधर से गुण कहत थके, पायो न अन्त गुण को ।
गुण लषि धारि ईरषा मानूं, दोष तजे इनको ॥ २ ॥
नृप वसुपूज्य कुमार मारजित सुमरण इक छिन को ।
शिव सुषदायक[5] 'पारस' जाचत ध्यावत[6] उस दिन को ।

विहाग

(१२)

विमल जिनेश्वर पूजियां[1] निरमल[2] पद धारो ॥ टेक ॥
निर्मल गुण करि जुक्त है, वसुविधि मल टारो ।
ध्यायां[3] बसु[4] बिधि[5] मल हरै, ह्वै निज सुष सारो ।
जो निज भाव बिसुद्ध सो गत राग निहारो ।
रागादिक जुत मलिन सो, किम लागै प्यारो ।

---

११ : १. प्रति 'अ' — वासुपूज्य ।
२. प्रति 'अ'—विन ।
३. प्रति 'अ'—प्रद ।
४ प्रति 'अ'—सुख ।
५. प्रति 'अ'—सुखदायक ।
६. प्रति 'अ' में ध्यावत शब्द का अभाव ।

विमल विमल गुण देय है, करि ध्यान प्रचारो।
'पारस' पाय विमल प्रभू मिथ्या मल झारो।

राग काफी

(१३)

अनंत जिनेस भजो मन मेरे ॥ टेक ॥
अनंत नाम इनही प्रभु पायो पूजत सुरनर जो मन मेरे ॥ १ ॥
अनंत ज्ञान सुप वीरज जाके, उत्तम गुणमय जो।
'पारस' सार्थवाह शिवपुर को, इनें भजि आन तजो।

(१४)

जनमें धर्मनाथ जिनंद।
भानु नृप सुप्रभा माता, कुल गगन मधि चंद ॥ टेक ॥
धर्म धर्म पट मत रटत पै[1], न काटिहै भवफंद।
भव फद पंद निकंद समरथ वृप कह्यो जिनचंद।
धर्मनाथ जिनेद ध्यावत, कटत है भव दुंद।
पार्स[2] पंच कल्याण मांयी, नमें तृजगत इंद।

---

१२ : १. प्रति 'म'—पूजिया। २. प्रति 'म'—निर्मल।
३. प्रति 'म'—ध्याया। ४,५. प्रति 'म'—यगु, विधि।
६. प्रति 'म'—सुख।

१४ : १. प्रति 'म'—रें। २. प्रति 'म'—पार्श्व।

राग काफी

(१५)

मेटो सांति[1] जिनेस जी भवदाह ज्वर कूं, परकृत उपजी ॥ टेक ॥
पंच विषय आमासय सेती, तप संजम नहिं ल्हेस जी ।
वाही प्यास वधि रही मेटो ।
तुम ही वैद्य सिरोमणि जग मैं तपति हरो निरसेस ।
'पारसदास' की अरज ये ही है, कुरु मम हृदय प्रवेस,
नहि वैदन कौ वस मेटो ॥

राग काफी

(१६)

धर्म सुनायो सांचो कुंथु[1] जिनेस ॥टेक॥
नय निश्चय व्यवहार भेद करि, तत्व बतायो[2] वेस ।
कोटि ग्रंथ को सार एक है, दृढ़ चरिये उपदेस[3] ।
पारस अंदर निःकसायता वाहिर दया प्रबेस[4] ।

(१७)

श्री अरनाथ देव भजिये ।
अन्य सदोस कुज्ञान विमोहित, मन बच तन तजिये ।

---

१५ : १. प्रति 'अ'—शान्ति ।

१६ : १. प्रति 'अ'—कुंथ । २. प्रति 'अ'—वतायो ।
३. प्रति 'अ'—उपदेश । ४. प्रति 'अ'—प्रवेश ।

क्षुधा[1] तृष्णादि दोस[2] करि, दूसित स्वपर भेद रहिये।
तिन के सेयें दुप[3] किम विनसैं, चहु[4] गति मैं भमिये।
दोप रहित सरवज्ञ जिनोत्तम, हित लपि[5] अनुसरिये।
'पारस' पावो अविनासी[6] सुप स्वर्ग मुक्ति चलिये।

राग पट्

(१८)

मल्लिनाथ पद भजि मन मेरा।
सवही काज सरैं ज्यूं तेरा ।।टेक।।
मेटैं सकल अज्ञान अधेरा।
काम मतंगज हरि सम हेरा।
सक्ति भक्ति जुत रहिये नेरा।
ज्यूं होवै भव भ्रमण न मेरा।
'पारस' तप संजम न वनें[1] तो[2],
श्री जिन भक्ति मिटाय देगो फेरा।

राग काफी

(१९)

पूजो भवि नुनि सुव्रत जिन कूं ।।टेक।।
राय सुमित्र मात सोमां घर तृभुवनपति उपजे हैं .

---

१७ : १. प्रति 'अ' एवं 'न'—त्रुटित। २. प्रति 'अ—दोप।
३. प्रति 'अ'—सुख। ४. प्रति 'अ'—चउ।
५. प्रति 'अ'—लखि। ६. प्रति 'अ'—अविनाशी।
१८ : १. प्रति 'त'—वनैं। २. प्रति 'अ'—तौ।

जिन प्रसाद मुनि जन व्रत धारे, मुक्ति मिली वसु विधि हरि विनकूं ।
जो भवि श्रावक धरत देस[1] व्रत, वसि करि के इंद्रिय अरु मन कूं ।
'पारस' सो ही सुरपति होवै, क्रम तैं पावत है निज धन कूं ।

राग बिलावल

(२०)

श्री नमिनाथ जिनेश्वर पाय, सुमर्‌यां काज सिद्ध होय मेरा ।।टेक।।
रागी देव अनेक वंदिये, तिन तैं कछु भी सर्‌यो न उपाय ।
राग तैं बंध[1] बंध तैं संसृति[2], वीतरागता मुक्ति सधाय ।
'पारस' वीतराग प्रभु नमि भजि[3], ज्यूं होवै निश्चै शिवराय ।

राग सोरठ

(२१)

रांणी रजमति रा भरतार नेमजी; थार्‌यां[1] ही सरै ।
थारा वेर वेर गुण गांवा जिनजी०[2] ।।टेक।।
सेवा नंदन जिनराज सावरा तुम विन करुणां कौन करै ।
वसु विधि मेरे असे कीजे, फेरन ज्ञान हरै ।
तुम विन दुर्गति दुष मैं भोगे, सो अब[3] क्यौं न टरै ।
तुमरो नाम सुनत पर सेती पशु[4] प्राणी उधरै ।
'पारस' दृढ श्रद्धा धरि भजिहै[5] क्यूं नहिं मुक्ति वरै ।

---

१६ : १. प्रति 'अ'—देश ।

२० : १. प्रति 'अ'—वंध । २. प्रति 'अ'—संश्रृत ।
३. प्रति 'अ'—भनि ।

२१ : १. प्रति 'अ'—त्यारया । २. प्रति 'अ'—सांवरा ।
३. प्रति 'अ'—अव । ४. प्रति 'अ'—पसु ।
५. प्रति 'न'—भजि तोकूं ।

उणतीस पद

राग आसावरी

(१)

सम्यक दर्शन शुद्धता शिव की दातार ।।टेक।।
याही तैं पावै सही निज ब्रह्म विचार।
या विन पर परणति भयो भरमे संसार ।।१।।
कारो नागनि समान है, सव विपय विकार।
ताप वुझावण मेघ है, आताप निवार ।।२।।
संकादिक मल त्यागि कैं, धरिल्यो अविकार।
भक्ति[1] मुक्ति दाता रहै, तृभुवन मैं सार ।।३।।
अनंत काल या विना भ्रमे, च्यारुं कुगति मझार।
'पारस' पंचम गति करै, सायो निरधार ।।४।।

राग जंगलो

(२)

विनय धर्म सुभ भावना विन आतम हित नहिं चीना रे ।।टेक।।
परकर्मनि तें जग मांही फसि, उत्तम तैं भयो हीना रे।
दर्शन ज्ञान चारित उद्धारक, इनका विनय न कीना रे।
तन धन सुत दारा संग रचि कै, हुवा आप मलीना रे।
मान अग्नि तें मति जलि जीयरा, विन या रस मृत रस पीना रे
'पारस' विनय धर्‌या अति सोहै, ज्यों सुवरण मैं मीनां रे।

---

१ : १. प्रति 'ग्र' – मुक्ति।

२ : १. प्रति 'ग्र'—तद्धारक।

राग आसावरी

(३)

निरती चार शील व्रत धारि, च्यारि प्रकारी तजि कै नारि।
या कूं जो धरै सोई, चउगति तजि शिव तिय वरै ।।टेक।।
तप व्रत संयम को यो जीव, है अविनासी सुख की नीव।
मन वच तन उपदेस न देय, लखि कुसील सुसंग हरेय।
'पारस' तीन लोक मैं सार, कुछ भी नाय शील उनिहार।
वाल वृद्धि तरुणी तिय जेम, पुत्री मात वहण लखि तेम।
सील प्रताप नमैं पद देव सक्री[1] चक्री करिहै सेव।

राग आसावरी

(४

ज्ञान[1] विना भरमाया रै अज्ञानी ज्ञान ।।टेक।।
या विन परिवर्तन हू निज पर भेद न आया।
चारित हू विन ज्ञान निरर्थक, यूं सतगुर फुरमाया रै।
दोवू लोक सुचि याही तैं होय, या विन वहु दुख पाया।
ज्ञानोपयोग निरंतर धरिये, याकूं सुर सिर नाया रै।
या मैं तन धन छीजै नायी, सुख की खानि बताया।
है जग पूज्य मुक्ति को दाता, ध्यायें मन उमगाया रै।
ज्ञान वृद्ध सव ही तैं उत्तम, या विन सव अकुलाया।
'पारस' सम्यक ज्ञान रचे नर, तिन कूं संत सराया रै।

---

३ : १. प्रति 'अ'—चक्री।

४ : १. प्रति 'अ'—ज्ञानी।

राग आसावरी

(५)

श्री संवेग भावना सार। आत्मीक सुख की दातार।
याकूं जो धरै सो ही, अविनासी सुख अनुसरै ॥टेक॥
देह भोग संसार असार, इम जानों सवेग विचार।
दश विध धर्म तथा फल सार। इनके भेदाभेद विचार।
पर कूं तजि निज तत्व प्रचार। 'पारस' धार्‌यां ह्वै सिरदार।

राग शुभाभ

(६)

सक्तितस्तप दृढ भावना अवधारो रे भाई ॥टेक॥
विषय कषाय मैल कूं जारो, करि उज्जलता मांयी।
तप ही अगिन जरावै असुभ सब, या विन नहिं उजरायी।
देव नरक पसु गति मैं नाही, सो या नर भव मायी।
'पारस' सक्ति सम्हारि धारि तप, चूक्या फिर पछितायी।

राग आसावरी

(७)

साधु समाधि घ्यान को नाम, या विन वहु भरमे संसार।
याकूं जो धरै सोही जनम मरण दुख कूं टरै ॥टेक॥
तीन जगत गुरु तैं जहां प्रीति, उत्तम जन की याही रीति।

क्लेश नाय जिन चरण विचार, षरच असुभ क्षय है निरधार।
एक महूरत मनवा ध्याय[1] सिव सुख फल ह्वै आगम साखि।
'पारस' नीके करो विचार, कछु नहि कष्ट समाधि मझार।

राग दादरो

(८)

मूरख मन विषया रो लोभी वैयावृत्य नहिं चीना रे ।।टेक।।
संकित निःकांक्षित या मैं, निर्विचकित्स प्रवीना रे।
उपगूहन थितिकरण वत्सता, या मैं सव गुण वीना रे।
सुत दारा ग्रह की तजि सेवा, भव भव मैं बहु कीना रे।
रत्नत्रय धारक नहिं सेये, याही तैं भये हीना रे।
वैयावृत्य करण जग दुल्लभ, धारे विधि होय छीना रे।
'पारस' याहि धर्‍यां अति सोहै, भूप मुकट सिर दीना रे।

राग विलावल

(९)

श्री अरहंत भक्ति एक सार, या मानुष भव रतन दीप मैं ।।टेक।।
पाप विनासै पुण्य प्रकासैं, भवसागर तैं करत उधार।
नाम मात्र रुचि तैं सुनि उधरे, कथा लिषी है पुराण मझार।
'पारस' भक्ति धरै ते होहै, निश्चै मुक्ति तृया भरतार।

---

७ : १. प्रति 'अ'—त्रुटित।

राग विलावल

१०)

श्री आचार्य भक्ति मैं भाव कवु नहिं कीनों अव करि भायी ।।
एक वार मन वच तन कीयां, फेर न भ्रमैं निठ मिल्यो
श्री आचार्य प्रत्यच्च न दीसैं, तो धरि उनके वन मैं -
आचारिज गुण कोंन कहि सके, वेगहि करैं मुक्ति को
'पारस' जग मैं आचारिज वच, विन को करतो कुगति व

(११)

भक्ति चहूं सुखदायी ।।टेक।।
मिथ्या अलट मिटावण कारण सरधा दिव्य कराई।
स्वपर तत्व देव गुरु आगम, मिथ्या सत दे लषाई।
'पारस' इक वहुश्रुती भक्तिमय, हूज्यो मन वच काई।

राग झंझोटी

(१२)

प्रवचन भक्ति सम्हारि रे सुज्ञानीड़ा रे।
या तैं सकल पदार्थ पिछानैं, होवैं स्वपर विचार रे।
या विन उरझि सुरझि किम भासैं, या विन होत विगार रे।
'पारस' प्रवचन दीप दिखावैं, सूधो शिव घर द्वार रे।

राग बिलावल

(१३)

आवश्यक परिहाणिन की इन मैं हाणि हुवा तुम हारे ॥टेक॥
जप तप संजम ज्ञान सील व्रत, इन ही के सब साधन चीन।
मूल हरे सब हरे जानि कैं, इन में रहो निरंतर लीन।
'पारस' सधै साध्य इन ही तैं याय[1] सध्यां जानों परवीन।

राग आसावरी

(१४)

धनि जिनमार्ग प्रभावना जे धरै सुज्ञान ॥टेक॥
समंतभद्र स्वामी भये, अकलंक प्रधान।
कुंदकुंद इत्यादि के, सुचि वचन प्रमान।
सेठ सुदर्शन जू भये, धार्‍यो सील महान।
असैं ही दृढ़ धारिये तप व्रत श्रुतदान।
सात विसन तजि दीजिये, फुनि पाप कुज्ञान।
निंद्य काज नहिं कीजिये, जिनमत सुचि मान।
जै विधि जिन मारग दिपैं, सो करो सुजान।
'पारस' जिनमत धारि कैं, रहिये अमलान।

---

१३ : १. प्रति 'अ' – त्रुटित।

राग बिलावल

(१५)

प्रवचन वत्सलता अवधारि, भव भव सुत दारा संगि राचे
प्रवचन जिन आगम कू कहिये, याही तैं ह्वै दुःख निवा।
अति दुल्लभ जिन आगम पायो, पाय न रापि प्रमाद लगा।
स्व पर तत्व निश्चै करि 'पारस' फेर कब मिलै शिव दाता।

(१६)

उत्तम पिमा धर्म है सार, तृभुवन के सुख की दातार।
याकूं जो धरै सो ही निश्चै शिव नारी वरै।।टेक।।
क्रोध उपाधि कहै दुखकार, याहि तज्या सुख होत अपार।
समरथ होय करै न कसाय तिनकै उत्तम पिमा विचार।
आतम रूप पिमा है सार, 'पारस' भजि ल्यो तजो विकार।

राग झुंझाझ

(१७)

मार्दव धर्म गहो, सुनो सुज्ञानी जीया।।टेक।।
आठू मद ज्ञानी न करत है मिथ्या जानि जहो।
कामदेव चक्री हरि हलधर, कोवू थिर न रहो।
सब संजोग वियोग सहित लखि, पर कूं काय चहो।
'पारस' मान करै ते भोरे आप में आप रहो।

राग गुभाभ

(१८)

आर्जव धर्म गहौ, अजि हो सुज्ञानी जीया ।।टेक।।
मन मैं जैसो चितवन करिहौ सोही पर कूं कहो ।
जो कहणों सो ही कारिज भलि, आर्जव भाव रहो ।
मात तात मंत्री सुत भ्राता, सेवक स्वामी वहौ ।
मायावान कूं कालो भाषत, ताय तज्या विसास वहौ ।
तिरजंच गति को वंध करत है, मायाचार जहौ ।
'पारस' या जुत मुनि पद निंदित याहि तज्यां सूं सुगति लहौ ।

राग गुभाभ

(१९)

बोलो जी सुज्ञानी जीया, सत्य वचन सुखदाय ।।टेक।।
सुरनर मुनि श्रुत सत्य सराहत, सत्य ही सुभगति दाय ।
झूठ तैं वसु नृप सिंहासण भरि, दुर्गति मांय पराय ।
मित्र कलत्र स्वामी सुत वांधव, सत्य विना अकुलात ।
आपहु पर तैं सत्य चहत निंति, सव ही जन कूं सुहाय ।
या के बोले दोष मिटे नृप, सब विसवास कराय ।
या तैं सर्प माल विष अमृत, सत्रु मित्र हो जाय ।
नर देही मैं सार सत्य इक, सुर नर ताय न माय ।
'पारस' वचन विगारत तिनके, दोऊ लोक नसाय ।

राग गुभाफ

(२०)

समझि गहु ज   शौच कह्यो जिनराय ॥टेक॥
धर्म ही उज्जल पाप मलिन है. भाषी पट्मत मांहि
धर्म को लक्षण दया कहत सब, हिंसा कोवू न सराय।
जल ही तैं उज्जलता मानत, ते नर मूरिषराय।
जल नहिं सपरस करत जीव कूं, कैसें सोधित ताय।
जाकूं जल परसत सो देही, सब कूं मलिन कराय।
सो कैसें सुचि मलिन होत पनि, जल तैं पाप वनाय।
जप तप ज्ञान ध्यान संजम यम, समझि गहे मुनिराय।
'पारस' पाप मैल धोय सुचि हो, सांचो यो ही है उपाय।

राग आसावरी

(२१

संजम धरहु सुजाण थे सो दुविध प्रकार ॥टेक॥
पंचेंद्रिय वसि कीजिये तजि चित्त विकार।
छवूं काय प्राणया तणी, करुणां उर धारि।
देव नरक पशु गति विर्षे, धरि सके न लगार।
सो या नर भव मैं मिल्यो, धरि सुभ आचार।
पहर महूरत मास को, धरि कैं जु विचार।
'पारस' गहौ प्रमाद तजि पावो शिव सार।

राग आसावरी

(२२)

उत्तम तप धरि जीवरा शिव को दातार ।।टेक।।
सक्ति न लंघि छिपायिये, द्वादश परकार।
तिहु गति मैं न मिल्यो कवी, निठ मिल्यो न अवार।
सर्व थको न वनें कवी, धरि देश विचार।
परंपराय शिव सौख्य ह्वै, भाषी श्रुत सार।

राग विलावल

(२३)

जिन कै भव तिथि अंत भयी, ते उत्तम त्याग धरै तजि राग ।।टेक।।
अंतर वाह्य परिग्रह तजि कै नासैं वसुविधि अष्ट विभाग।
पर परणति तजि निज परणति गहि, स्वस्वरुप मैं राषैं जाग।
'पारस' सो पद कब मम मिलिहै, तब ही हम होहै वड़ भाग।

राग विलावल

(२४)

पर परणति तें बहु दुख भोगे, आकिंचन्य धर्म दृढ धारि ।।टेक।।
तू उपयोग रूप चिनमूरति, पर संजोग सकल दुखकार।
निज परणति मैं अतीन्द्रिय सुख ह्वै, ता सुष हू को नहिं पार।
जव लों निज सरूप नहिं जान्यो, तबलूं व्रथा भ्रमे संसार।
'पारस' सुगुरु प्रसाद लख्यो प्रभु, घट मैं कोंन भ्रमैं पर द्वार।

राग गुभाभ

(२५)

ब्रह्मचर्य बहु मोल्य रतन संगि वारो रै भाई ।।टेक।।
नर भव रतन दीप है या मैं, या संगि दूजो नांई।
महाभाग्य कै ग्रहण होत यह, तुछ पुण्य न लखायी।
सेठ सुदर्शन सीतां सोमा, या तैं महिमा पाई।
नरपति सुरपति पूजित पद होय, क्रम तैं शिवपुर जाई।
तीन खंड को राजा रावण, या विन कुगति भ्रमाई।
मंत्र जप ज्ञान ध्यान सुचि, याहीं तैं श्रुत गाई।
याकी महिमा कोटि जीभ करि, कहि न सकै सुररायी।
दोफ लोक सुधारण कारण, 'पारस' जाचत याही।

राग आसावरी

(२६)

रत्नत्रय सम है नाहि जीव को हितकार ।।टेक।।
घनि वनिता संगि राचि कै, बूडे मझधार।
रत्नत्रय समझे नहि, जातैं भ्रमें अपार।
तीनलोक तिहुकाल मैं, या समान नहि सार।
या विन तिरे न तिर सकै, यो ही तारनहार।
या की महिमा को कहै, भव हर सुखकार।
तीर्थंकर भी या विना, सीझे न लगार।
'पारस' भव तिथि नाशिहै, शिव को दातार।
दृढ़ रत्नत्रय धारिये, त्यागो अन्य विकार।

(२७)

षोडस कारण जंत्र कूं पूजो तिरकाल ।।टेक।।
एक एक भावना विषैं, चित धरि अविकार।
अष्ट द्रूजा गिणि दीजिये, सुचि अर्ध सुधार।
णमो णमो जयमाल कूं, पढ़ते मुख द्वार।
मधुर वजावत गावते, पर दिषण त्रिवार।
कनक रकावी धारि कै, वैभव अनुसार।
'पारस' पूजै व्रत धरै, ते ह्वै सिरदार।

अष्टपद्यां

(१)

साधर्मी[1] सतसंग हो करिये सुखदाय ।।टेक।।
सब[2] संदेह मिटाय दे श्रद्धान[3] कराय।
सम्यक ज्ञान लहै[4] सही, शिव पंथ पराय[5]।
सारत्रय नाटक बिनां,[6] किम संसय जाय।
इन ग्रंथिन[7] के अर्थ कूं दे सुगम कराय।
बरष[8] वढ़े[9] न वड़े कहे, गुण तैं[10] जु कहाय।
गुण करि वड़े सेयिये, भाषीं जिनराय।
जिन तैं आतम हित,[11] सधै[12] सो[13] गुण है भाय।
आतम काज करै नहीं, ते गुण अगुणाय।
दोस छुड़ावै जीव तैं, फुनि गुण उपजाय।

आध्यातम वांचे कहै साधरमी राय।
सकलकीर्ति भट्टारकां, भापी श्रुत माय।
वृद्ध सुसंगत कीजिये, वहु गुण उपजाय।
इनकी महिमा कहन[14] कूं हम समरथ नांय।
मुक्तिमहल की नींव है, कछु संसय नाय।
'पारस' जाचत है सही, श्री तृभुवनराय।
मोकूं सो[15] निर्विघ्न द्यो, भव भव कै मांय।

(२)

साधरमी सतसंग ही कलि मैं एक सार।।टेक।।
नाहि अबै श्रुत केवली, नहीं केवल धार।
नाहि अवधि उपजै कहो, इस क्षेत्र मझार।
सुनिये है दक्षण विषै, है सुगुरु प्रचार।
इस षेतर मैं नाय है, अज्ञान निवार।
संसय किन सें बूझिये, कोऊ दीसै न अवार।
साधरमी इक है सही, वहु श्रुत के धार।
इन ही तैं पहचानि[1] ह्वै,[2] ये देव कुदेव।
सम्यक गुरू मिथ्या गुरू[3] फुनि धर्म विचार।

---

१ : १. प्रति 'अ'—साधरमी। २. प्रति 'अ'—सव।
३. प्रति 'अ'—सरधान। ४. प्रति 'अ'—करै।
५. प्रति 'त'—पंथू पराय। ६. प्रति 'अ'—विना।
७. प्रति 'अ'—अंथन। ८. प्रति 'अ'—वरए।
९. प्रति 'अ'—वढे। १०. प्रति 'अ'—तै।
११. प्रति 'अ'—काज। १२. प्रति 'अ'—सर्धं।
१३. प्रति 'अ'—ते। १४. प्रति 'त'—कारण।
१५. प्रति 'अ'—लोप।

जीव अजीव पदार्थ हैं द्व[4] गुण परजय हार।
तिन मैं समझि कराय दे, इनको उपगार।
नय प्रमाण तैं जानि कै, निश्चै व्यवहार।
कठिन ग्रंथ भाषा किये वांचो[5] बुद्धि[6] विसार[7]।
भेष धारि कपटी घणे, है विषय विकार।
वीतरागता नाय है, तिनकै जुलगार।
मिथ्या गुरु वहकायिये, भरमे जु अपार।
'पारस' इन ही तैं मिट्यो, अज्ञान विकार।

(३)

वचन[1] गहौ अनगार के इन ही मै सार ।।टेक।।
बिषय[2] कषाय तजै नहीं जिनकै न आचार।
तिनके बचन[3] प्रमाण तैं, बूड़े[4] मझधार ।।१।।
जिन मंदिर मैं मेलि कै, पूजै विटपार।
मिथ्या देव थपाय कै, ऐसी मति ख्वार ।।२।।
दया धर्म मुख तैं[5] रटै, नहिं दया लगार।
रात्रि विषैं पूजा करै वहु, आरंभ लार ।।३।।
सरद करै बत्यां जुपै, पुष्पनि के द्वार।
कैसैं दया सधी कहौ, पक्षपात निवार ।।४।।
जनम[6] मरण पाये घणे, तिनको नहिं पार।
मिथ्या भेषी बहु मिले न मिले अनगार ।।५।।

---

२ : १.२. प्रति 'अ'—पहिचानिये। ३. प्रति 'अ'—गुरू।
४. प्रति 'त'—लोप। ५.७. प्रति 'अ'—वांचो, वुद्धि, विसार।

कहु न मिली सुभ देसना, सुख की आधार।
धन्य भाग अव ही भयो, मिलिये श्रुत सार ॥६॥
हित अनहित समभया विनां, भमिये जु अपार।
निश्चै सो समझावसी श्रुत ही आधार ॥७॥
जग मंदिर मैं जोति इक, वीतराग[7] वच[8] सार।
'पारस' इन ही कूं चहै, शिव के दातार ॥८॥

गोपीचंद की ढाल मैं

(४)

अरै सुज्ञांनी उड़ता तौ दीसैं वादल धूम्र का।
तैसैं जगवासो रह्या न दीसै रै जमी परि कोई ॥१॥
अरै सुज्ञानी कंचन काया थारो सुधारि लै,
विषयां[1] में मति जाय।
फिर यो अवसर रै कबहु[2] नहिं होई जी ॥२॥
अरै सुज्ञानी भरत[3] सरी[4] सा नरपति चलि गये,
पृथ्वी का भोगी थिर न रह्या छै रै तू किम सोयी जी ॥३॥
अरै सुज्ञानी या काया को गरभ न कीजिये, निज कारिज करि लै,
जल वलि[5] होयगी,[6] पेह कहां तैं धोयी जी० ॥४॥
अरै सुज्ञानी सुख संपति तौ थारो रूप है,
पर मैं क्यूं वहक्यो पर वसि होय कैं रै,
निज संपति पोयी जी ॥५॥

---

३ : १.३. प्रति 'अ'—वचन। २, प्रति 'अ'—विषय।
४. प्रति 'अ'—बूडे। ५. प्रति 'अ'—तै।
६. प्रति 'अ'—जन्म। ७.८. प्रति 'अ'—वीतराग, वच

अरै सुज्ञानी मरण कियां तै वार अनंत ही,[7]
न समाधि कियो छै,
समाधि को अब रै अवसर योयी जी ॥६॥
अरै सुज्ञानी सुरपति चाहै कारण मोक्ष[8] कै, मानुष कब होवै,
अब तैं पायो रै सहज मैं सोयी जी ॥७॥
और सुज्ञानी आतम ध्यावो ध्यांन लगाय कै, च्यारूं आराधो,
'पारस' या तै ही संत शिव जोई[9] ॥८॥

---

४ : १. प्रति 'त'—विषयूं ।
२. प्रति 'अ'—कवू ।
३. प्रति 'अ'—भरथ ।
४. प्रति 'अ'—सिरो ।
५. प्रति 'अ'—वलि जल ।
६. प्रति 'अ'—होगी ।
७. प्रति 'त'—अनही ।
८. प्रति 'त'—मुक्ति ।
९. प्रति 'त'—मुक्ति अबलोई जी ।

—:०:—

पार्श्वदास पदावली

अनुक्रमणिका

क्रमांक पद

(अ)

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
२०.	अधिक सुहावै मोकूं वेशां ती छवियां	७४
२१.	अनुभव कीया सैं जी पावै प्रभु परम	७४
२२.	अरज सुनों जी महाराज, हो जी जिनराज	१२९
२३.	अरजी करहूं सकास ठाड़ो जिनवर सैं	१८०
२४.	अपनां धरम धारिल्यो रै	१५३
२५.	अज्ञांनी कांयी चालै लाग्यौ रै	१५४
२६.	अज्ञांनी जीयो न मांनै जी	१५१
२७.	अविनाशी सुख कारण जीया क्यौं न सजै रै	१९०
२८.	अजित जिनेस अजित करि मोय	१९९
२९.	अभिनंदन पद मैं चित दीनों	२००
३०.	अनंत जिनेस भजो मन मेरे	२०५
३१.	अरै सुज्ञानी उड़ता तो दीसै बादल धूम्र का	२२३
३२.	अथिरता मानी धन जोवन की	१८४
३३.	अर हो विषयां रा लोभी, हा रै हो माया रा लोभी	१५६
३४.	अंतर दा पट षोलो जी जीया मोरा	६७

(आ)

३५.	आदीश्वर तोहे पूजन आयो	२
३६.	आजि वीर जिन मुक्ति पधारे	१२
३७	आजि रो दिन रूड़ो छै	१५
३८.	आकिंचन धरम धरि भायी	२२
३९	आजि तो जन्मे श्री महावीर छत्रधारी	२९
४०.	आयो नी मैं तैडे मिदरवा	४२
४१.	आदि जिनेस ऋषभ जिनेस राजि रो दरस प्यारो लागै छै	४९
४२.	आतम कथा विनां सब व्रथा	७२
४३.	आली मोरा जीया की न पीया सुनता गया	७५
४४.	आजि वधायी अजोध्या नगर मैं	१२२
४५.	आजि हम चेतना लषायी	१७१
४६.	आर्जव धर्म गहौ अजि हो सुज्ञानी जीया	२१६

४७. आवश्यक परिहाणिन की इन मैं हाणि हुवा तुम हारे

(उ)

४८. उत्तम त्याग सुधर्म कूं, अवधारो रे भाई
४९ उत्तम छिमा धर्म है सार
५०. उत्तम तप धरि जीवरा, शिव को दातार
५१. उजरो पथ है शिव ओरी को

(ए, ऐ)

५२. ए रे मन मेरे तू घनेरे सुख चाहै तो
५३. एकहि जीव वस्तु के नाम हैं
५४. ऐसें ध्यायो आतमराम
५५. ऐसा तेरा रूप अनूपा जी

(क)

५६. कब ऐसा दिन आवैगा
५७. कयक वार कही रे जिया तोसें
५८. कहूं देखे हो नहि रामा
५९. करि लै जिया मैं तू सांचो ही सुमरन
६०. कपट राखि जिनमत गह्यौ
६१. कब ग्रह तजि कैं जाय विजन मैं
६२. कांयी कांयी कहु समझावां
६३. काहे गर्भ करत हो झूंठा है संसार
६४. काय समझि करि थिरता मांडी नर भव मांयी
६५. किण रे सानाखें प्रभुजी नें है हो जी
६६. कित उरझे श्याम योगिन मैं
६७. कीनों अपूर्व सुकृत तै भायी
६८. कुमति का संग तजियो नर मोर

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
६९.	कुमति री तू की परि करत गुमान	१३९
७०.	कुमति तो मैं या छै वड़ी कुवाणि	११७
७१.	कैसा जादू डारा मोह मेरे कान	५२
७२.	कोवू कछू कहौ सव त्यागा रे	१८
७३.	कोयी नहि जानै सुभासुभ चाल	१२५
७४.	कोई मोही कूं स्याम मिलाव री	१४६
७५.	कौड़ा सूं थे आया जो चेतन जी	१६६

(ख)

७६.	पूव तहकीक किया हम नैं	१७१

(ग)

७७.	गहला है रे नर गहला है	९
७८.	गयी गयी जी मिथ्या मम नींद	३६
७९.	गिरनारी मोरा सांवरिया	५८
८०.	गिर पैं सची आजि धूम मची है	१२०
८१.	गुरा म्हानैं जातरूप तुमरा पद रूड़ो लागै	७५
८२.	गुरू उपदेस दियो रे वाकूं धार्या सुख ह्वै मीत	१७०

(घ)

८३.	घर आवो जी जीवा जी सुष माणवानै	९२

(च)

८४.	चलने की वेरियां क्यं विसरि गयो	२५
८५.	चालो सषी देषन जय्ये नवल	१८
८६.	चालो सय्यो हे नेम जी बांनी सुनावै	३५
८७.	चिद नृप घरि आजि मची होरी	१८४

क्रमांक	पद	पृष्ठांक

क्रमांक	पद
१४४.	जीया सीप सुगुरु दी मानि रै
१४५.	जीया तू दग ज्ञान सयी रै
१४६	जीया तू चेतता क्यूं नहिं रै
१४७.	जीया काहे कूं विसन मध आयो छै
१४८.	जीवा जो थे जागो जी
१४९.	जीव तोय शिव नारी परणावू रै
१५०.	जीव सतसंगति मैं रहनां
१५१.	जै जैन वानी जगत को तरानी
१५२.	जो मैं रिझावूं मेरे प्रभु कूं

(त)

१५३.	तजो जीया पर परणति दुखदानी
१५४.	तत्व की प्रतीति भयी तोरे ढिग आय कैं
१५५.	तजो मान गुणवाला हो
१५६.	त्यागो त्यागो जी अनुराग आजि परभाव सैं
१५७.	त्यारो महारा प्रभुजी त्यारो हे
१५८.	तारना वे जनम जलधि की धारा
१५९.	तुम सुप करण दुप हरण
१६०.	तुम गरीब के निवाज मैं गरीब तेरो
१६१.	तुम विन को तारै जिनराज
१६२.	तुम विन तीन लोक मैं मेरो
१६३.	तुमारी इन्तजारी मैं बहुत दिन वितीत भये
१६४.	तूं नैं सुमति सुलपणी समझावै
१६५.	ते नर जाणि दिगंबर जतियां
१६६.	तेरे हित दी वातड़ी सुनि लीजे रै भाई

(थ)

१६७.	थांका गुण गावां म्हांकां प्रभुजी दरसण दीज्यो
१६८.	थांका कदम रो सरनों नाथ मैं अति दुल्लभ पायो

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
१६९.	थांका वार वार गुण गावां	१६८
१७०.	थे राग द्वेष तजि दीज्यो	१७७

(द)

१७१.	दिढ़ता अपनाई अब मैं	८३
१७२.	दीनानाथ मेरी सुनाई करी नां	१९१
१७३.	दुल्लभ नर भव पाय कै मत षोवै रे भाई	८८
१७४.	दुरित सूं डरता रहौ भाई	१५२
१७५.	देषो सेवादेवी सुत राजै छै	५०
१७६.	देषो री नेमोस्वर स्वामी	६०
१७७.	देह मैं कायी रे लुभायो	१६८

(ध)

१७८.	ध्यान धरो परमातम को	२
१७९.	ध्यान धरत हूं जिनवर को	११२
१८०.	ध्यान धरि बासुपूज्य जिन को	२०४
१८१.	ध्यायो रे जीया हो ध्यायो	११६
१८२.	धर्म धर्यां सुष पावै सुज्ञांनी जीया	६४
१८३.	धर्म बिना दुष पाया अज्ञानी जीया	६४
१८४.	धर्भ सुनायो सांचो कुंथु जिनेस	२०६
१८५.	धनि जिन मार्ग प्रभावना जे धरै सुज्ञान	२१४
१८६.	धनि जीवनि है तिनका सुचिया रुचिया जिनवानी की	१७६
१८७.	धनि मुनि जिन की लगी लौ शिव ओर नैं	१२४
१८८.	धनि धनि श्री गुरु प्रसाद जैन धरम पायो	१४३
१८९.	धरि लीज्यो सुगुर पुकार हीया रै भाई	१५९
१९०.	नमो नमो संसार तारायण	१३
१९१.	नमूं हे नमूं हे नमूं हे नमूं	३९
१९२.	नर भव पाय भवि सुरग मुकति को कीज्यों जी सामो	१८८
१९३.	नाटक त्रय सुनतां उर फाटिक सो षुलिहै	५८

क्रमांक	पद	पृष्ठांक

(व)

(भ)

२९७. रांणी रजमति रा भरतार नेमजी
२९८. रूप पिछाणों जी चेतनां गुणधारी को
२९९. रे मन भजिले श्री जिन नाम
३००. रे मन श्री जिनराज भजो रे

(ल)

३०१. लगनि जिनराज सूं लागी
३०२. ला पं वेर यां जीया कू समझायो जो
३०३. लिपि भेजो पत्र इम आली हमारी
३०४. लैरा वे लैरा मैंनू ले चलो
३०५. लैरा लगी मैं थारी मोहे लीज्यो लारी

(व)

३०६. वटोहीड़ा नें क्यों भूरो रै भाई
३०७. वस्तु स्वरूप सो ही श्री जिनमत
३०८. वचन गहौ अनगार के
३०९. वरज्यो नहीं मानत मानी
३१०. वचन सुनो अनगार के
३११. वारी जी ई जैन धर्म की रीति नें
३१२ विमल जिनेश्वर पूजियां
३१३. विनासीक पर कर्म कुरग रंग
३१४. विसन मघ त्यागो जी
३१५. विपयनि सगि त्यागो जो
३१६ विधि दुप नाना परकार देत
३१७. विनय धर्म सुभ भावना विन आतम हित नहि चीना रै
३१८. वीतराग देव हो राजि म्हे ध्यास्यां जी
३१९. वीतराग सर्वज्ञ जिनोत्तम

(श)

३२०. शिव सें जोरि प्रभु हम सें न तोरो

क्रमांक	पद	पृष्ठांक
३७७.	सुज्ञांनी जीया हो पर घर कवुं मत जाय रै	१८४
३७८.	सुद्ध रूप आनंद दा मेरा मनवा	१८६
३७९	सुज्ञानी जी कैं असुमन वंध परसी	१४४
३८०.	सुनि तू जीया रैं	१६४
३८१.	सुमरि सुमरि मन श्री नौकार	१७०
३८२.	सुज्ञानीड़ा रै गुरु दी सीप सम्हारि रै	१८५
३८३.	सुने हम वैन श्री गुर ज्ञानी सैं	१२४
३८४.	सुनि जिया रै जिनवानी	१८१
३८५	सुनि जीया रै निज अवलोको	१९५
३८६.	सुभ गति नर भव की भारी	१९८
३८७.	सुमरु पदम प्रभु जिनराजै	२०१
३८८.	सुमतिनाथ को सुमरू नाम	२०१
३८९.	सुनों सुनों जिन जी कैसें कटै गति करमनि की	५५
३९०.	सुमति कहै घर आवो पिया	६०
३९१.	सुनि लै रे महरम तेरा जो हित दी वतियां	१२७
३९२.	सुघर मनां गावो सब मिल	१३९
३९३.	सो प्रभू विरले ही नरं पावै	१२१
३९४.	संभव जिनपद प्रसाद सम्यक भव होयी	२००
३९५.	संजम गहहु सुजाण थे	२१७

(ह)

३९६.	हमारे अघ क्यूं न हरो	९१
३९७.	हां रै भायी समझि करो मन मायी	१५
६९८.	हां रे ज्ञानवारे जरा मेरी सुनते जय्यो	१९
३९९.	हां जी पर पुद्गल कौ कांयी पतियारो	९५
४००.	हां जि शिव कामिनी नैं राजि जादू कोता वे	९७
४०१.	हां रै तोये वरजूं वारूंवार	१३०
४०२.	हां रै जीया कुमति त्यागद्यो रे	१६१
४०३.	हां रै हो सुज्ञानी जीवरा	१९८

पार्श्वदास पदावली में प्रयुक्त

समस्त राग

१. अडाणो	२. अलय्या विलावल	३. आसावरी
४. ईमन	५. ईमन कल्याण	६. कल्याण
७. काफी	८. कानड़ो	९. कालिंगड़ो
१०. केदार	११. खट्	१२. खमावच
१३. गौड़	१४. गौड़ी	१५. चैती गौड़ी
१६. जंगलो	१७. झंझोटी	१८. टोडी
१९. धनाश्री	२०. धानी	२१. परज
२२. पूरिया	२३. पूर्वी	२४. भीमपलासी
२५. भैरवी	२६. भैरू	२७. भोपाली
२८. मलार	२९. माढ	३०. मालकोश
३१. रामकली	३२. ललित	३३. वरवो
३४. वसंत	३५. विभास	३६. विलावल
३७. विहाग	३८. सारंग	३९. सिन्दूर्यो
३०. सोरठि	४१. सोहनी	४२. हमीर

पार्श्वदास पदावली में प्रयुक्त

राजस्थानी लोक धुनें

१. करहा	२. कलाली	३. गणगौरि
४. गोपीचंद का ख्याल	५. गंधीका	६. डूंग जी झवार
७. नणदोई	८. भागड़ली	९. मोर्‍या
१०. रातिजगा	. राधा का बारहमास्या	१२. हींदा
१३. हूका		

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	स्थल	अशुद्धियां	शुद्धियां
१.	पद १/पंक्ति ५	भक्तया	भक्त्या
३	५/१	चरणों	चरणां
७.	१२/७	विचारिसंज	विचारि
७.	१४/२	उर भेरा	उरभेरा
८, १५.	१५/४, २८/८२	प्रव्य, कायी	द्रव्य, का
१६, २१.	३५/१, ३६/६	अवंवारी, हचि	अव घारी,
२१, ३०.	३६/७. ५५/१	अराजिका, नम	अरजिका,
३१.	५५/४, ५६/७	छुड़वाव किरण	छुड़वावं, ...
३३, ३५.	५८/४. ६३/४	नारी, सभवशरण	भारी, .. .
४१.	७३/७	तासुध्यात	तासु ध्यात
४४, ४५.	७८/१०, ८०/३	प्रामना, संदेह	प्रमाना, संदे
४६, ५१.	८२/१, ८६/१०	नया, सुति	भया, सुनि
५५, ६२.	६६/३, १११/८	जापि, सहयि	जपि, सह.
६६, ७१.	१२४/२, १२७/३	दुल्लभ, अव	दुल्लभ, ..
७८, ७६.	१४२/३, १२	वंघु, भंठा	वंघु, भूंठा
८३.	१४८/१, २	ह, ज, मिथ्यातम	हो, जु, मि
६२.	१६३/१०	सारवान	सारवानं
१००, ११६.	१७८, ५, २११/२	काप, वाव	का पै, वावे
१३२, १३३.	२३६/८, २३७/५	भोग, समभाव	भोगं, समभा
१४०, १५४.	२५०/१२, २७६, ८	गुल, शव	गुण, शिव

१६२, १६६. २८६/१६, २९७/१	परभत, सुभता	परमत, सुमता
१७०. ३०४/७, ३०६/५	जम, ब्यार	संजम, ब्वार
१८०, १८१. ३३०/१, ३३३/२	जिनमत, कुमारि	जिनमत, कुनारि
१८६. ३४४/१, ४, ३४५/२	गली, सु, पायो	कै गैली, सुवरे, पापी
१८७, १८८. ३४७/२, ३४८/४	ाष्यो, मिथ्यथा	भाष्यो, मिथ्या
१९१, २०२. ३५६/२, ८/१	विर, मजि	विन, भजि
२०७, २०८. १९/१, २०/४	नुनि, निश्यै,	मुनि, निश्चै
२०९, २१०. २/५, ३/४	रसमृत, सुसंग	रसामृत, कुसंग
२१०, २१६. ४/२, १९/४	हू वांधव	हू भुगते, वांधव
२१९, २२२. २५/९ २/१५	दोफ, जुलगार	दोऊ, जु लगार
९. टिप्पणी, पद १७/७	लषि तू	तू लषि
३७, टिप्पणी, पद ६५/८	कोष	षांनि